GOVERNMENT OF INDIA.
NATIONAL LIBRARY, CALCUTTA.

Class No 181Sb.
Book No 89.8.
N. L. 38.
MGIPC—S8—16 LNL/53—12-1-54—25,000.

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

आठवां भाग।

सम्पादक

श्यामसुन्दर दास बी॰ ए॰

काशी नागरीप्रचारिणी सभा
द्वारा प्रकाशित।

BENARES
Printed at the Madical Hall Press,

सूचीपत्र ।

(१) मनोविज्ञान—पण्डित गणपत जानकीराम दूबे बी० ए० लिखित (१ से ९५ तक)

(२) श्रीरामचन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र कौन था?—पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या लिखित (९६ से १०९ तक)

(३) लखनऊ ज़िले का इतिहास—पण्डित रुक्मिनी नन्दन शर्म्मा लिखित (११० से १४४ तक)

(४) गोरखपुर ज़िले का संक्षिप्त वृत्तान्त—पण्डित नरेश प्रसाद मिश्र लिखित (१४५ से १९९ तक)

। ये बड़े विद्वान और कवि थे। इन्होंने हिन्दी भाषा में गद्यपद्य ग्रं
हुत से ग्रंथ, अनेक हिन्दी नाटक, विश्वेश्वरवाटिका नामक
पने वंश का इतिहास और बहुत कुछ लिखा है। इनके ग्रंथ खड्ग-
लास प्रेस, बांकीपुर में छपे और मिलते हैं। सन् १८५७ के उपद्रव
सर्कार की ओर रहने से पयना आदि ग्राम पारितोषिक में इस वं
। मिला है।

॥ इति ॥

गरीप्रचारिणी पत्रिका ।

नवां भाग ।

सम्पादक

श्यामसुन्दर दास बी० ए०

सहकारी सम्पादक

किशोरीलाल गोस्वामी

काशी नागरीप्रचारिणी सभा

द्वारा प्रकाशित ।

नागरीप्रचारिणी पत्रिका।

नवां भाग।

धम्मपद।

(ठाकुर सूर्यकुमार वर्मा लिखित।)

परिचय।

जो बौद्ध धर्म एक दिन सारे भारतवर्ष में व्याप्त हो रहा था आज वही कराल काल की गति से इस देश से प्रायः बिलकुल लुप्त हो गया है। यह धर्म ही इस देश से लुप्त नहीं हुआ वरन् इस धर्म के तत्त्व भी अब बहुत ही कम लोगों को ज्ञात हैं। जो पाली भाषा एक दिन इस देश की राष्ट्र भाषा समझी जाती थी और जिसमें बौद्ध धर्म के तत्त्व लिखे हुए हैं आज शायद ही किसी व्यक्ति को उसका ज्ञान हो। जिस भाषा में इस धर्म के धर्मग्रंथ हैं जब वही भाषा प्रायः नष्ट हो गई है तो उसमें लिखे ग्रंथों का नष्ट हो जाना कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। इस देश से निकल कर इस धर्म ने चीन, जापान, स्याम, ब्रह्मा इत्यादि देशों में अपना प्रभुत्व जमाया; जहाँ अब भी उसका विकृत स्वरूप दिखाई देता है। यूरोपीय विद्वानों को धन्य है कि जो बड़े परिश्रम और खोज के बाद इस मृत भाषा का अभ्यास, उसके धर्म-नीति ग्रंथों का संग्रह और अनुवाद करके सर्व साधारण में उनका प्रचार कर रहे हैं। यह इन्हीं महानुभावों के अनुग्रह का फल है कि जिसके द्वारा आज हम भी बौद्ध धर्म के तत्त्व पाठकों को बताने में समर्थ हुए। भारतवर्ष में बहुत ही कम लोगों को बौद्ध धर्म के तत्त्व प्रगट हैं, इसी कारण हम आज आपको कुछ थोड़ा सा उस धर्म का परिचय देना चाहते हैं।

यह बात तो अधिकांश लोगों को ज्ञात है कि इस धर्म का प्रवर्त्तक गौतम नामी एक क्षत्रिय राजा का पुत्र था। उसके जीवन चरित बताने की हमें इस समय कुछ आवश्यकता नहीं जान पड़ती, क्योंकि इसी पत्रिका के गत किसी भाग में बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० द्वारा लिखित उस महात्मा की जीवनी प्रकाशित हो चुकी है जिसके देखने से उक्त महात्मा के जीवन का बहुत कुछ हाल प्रगट हो सकता है। परन्तु हम इस समय यहां केवल यह बताना ही ठीक समझते हैं कि इस प्राचीन धर्म के मुख्य मूल तत्त्व क्या हैं जिस से पाठकों को उसके धर्म की असलियत प्रगट हो जाय। बौद्धों का सुगत देव बुद्ध भगवान पूजनीय देव और जगत क्षणभंगुर, आर्य पुरुष और आर्या स्त्री तथा तत्वों की आख्या संज्ञादि ये चार प्रसिद्ध तत्व बौद्धों में मंतव्य पदार्थ हैं। बौद्ध लोगों का मुख्य सिद्धान्त यह है कि "बुद्ध्या निर्वर्तते स बौद्धः" अर्थात जो बुद्धि से सिद्ध हो उसीको माने और जो बुद्धि में न आवे उसको न माने। परन्तु काल की गति से महात्मा गौतम के बाद बौद्ध धर्म की चार शाखायें हो गईं अर्थात माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक। माध्यमिक लोग सर्व शून्य मानते हैं, अर्थात जितने पदार्थ हैं वे सब शून्य अर्थात आदि में नहीं होते, अन्त में नहीं रहते, मध्यम में जो प्रतीत होते हैं वे भी प्रतीत समय में रहते हैं पश्चात शून्य हो जाते हैं इस लिये शून्य ही एक तत्त्व है। 'योगाचार' लोग बाह्य शून्य मानते हैं अर्थात पदार्थ भीतर ज्ञान में भासते हैं बाहर नहीं, घटज्ञान आत्मा में है तभी मनुष्य कहता है कि यह घट है, जो भीतर ज्ञान न हो तो नहीं कह सकता कि यह घट है या क्या वस्तु है। 'सौत्रांतिक' लोग बाहर अर्थ का अनुमान मानते हैं क्योंकि बाहर कोई पदार्थ साङ्गोपाङ्ग प्रत्यक्ष नहीं होता, किन्तु एक देश प्रत्यक्ष होने से शेष में अनुमान किया जाता है। 'वैभाषिक' लोगों का मत है कि बाहर पदार्थ प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे, 'नील घट' इस प्रतीति में नील युक्त घटाकृति बाहर प्रतीत होती है। यह चार शाखायें चार शिष्यों में भिन्न भिन्न मत होने के कारण हो गईं, यद्यपि इनका गुरु एक ही गौतम था। सारे मनुष्यों की बुद्धि एक सरीखी नहीं होती, आपस में एक दूसरे से कुछ न कुछ भेद भाव अवश्य होता है, इसी कारण से

हर एक मत में कई एक शाखायें अवश्यमेव हो जाती हैं। आज कल संसार में जितने मत प्रचलित हैं उन सबों में भी शाखान्तर देखने में आते हैं।

जिस प्रकार वैद्य या डाक्टर रोगी को देख कर पहिले पहिल रोग का निदान करता है पश्चात औषधि इत्यादि का प्रयोग कराता है उसी प्रकार बौद्ध धर्म में द्वादश निदान लिखे हैं। वे निदान ये हैं, [१] अविद्या [२] संस्कार [३] विज्ञान [४] नामरूप [५] षड यन्त [६] स्पर्श [७] वेदना [८] तृष्णा [९] भव (१०] उपादान [११] जाति [१२] जरामरण।

इसके पश्चात चार महा सत्य माने हैं। उन चार महा सत्यों के नाम ये हैं–(१) दुःख (२) दुःख की उत्पत्ति (३) दुःख का नाश (४) और दुःख नाश का उपाय। तदनन्तर दुःखनिवृत्ति के आठ आर्य मार्ग बतलाए हैं। वे अष्टाङ्ग मार्ग ये हैं,–

[१] सम्यक् दृष्टि [२] सम्यक् संकल्प [३] सम्यक् वाक्य [४] सम्यक् कर्मान्त [५] सम्यक् जीव [६] सम्यग् व्यायाम [७] सम्यक् स्मृति और [८] सम्यक् समाधि।

अब यदि यहां पर इन हर एक बातों की अलग अलग व्याख्या की जाय तो यह भूमिका ही स्वत: एक स्वतंत्र पुस्तक हो जायगी। इस कारण यहां केवल दिग्दर्शन मात्र दिया जाता है। यदि ईश्वर ने सहायता की और मुझे अवकाश मिला तो मैं "बौद्ध धर्म और उसका रहस्य" नामक एक स्वतंत्र पुस्तक लिखकर उसमें बौद्ध धर्म की पूरी पूरी व्याख्या और समालोचना करके उसे किसी समय पाठकों की भेंट कर सकूंगा। इस समय केवल इतनाही परिचय देकर पाठकों को सन्तुष्ट करना चाहता हूं। बौद्ध धर्म में हर एक गृहस्थ के लिये पांच अनुशासन प्रतिपालन करने की आज्ञा है। वे पांच अनुशासन इस प्रकार हैं,–[१] हिंसा न करना [२] चोरी न करना [३] व्यभिचार न करना [४] मिथ्या न बोलना और [५] सुरापान न करना।

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह स्पष्ट विदित होता है कि ये पाँच आज्ञायें बौद्धधर्मानुयायी गृहस्थों को ही प्रति-

पालन न करनी चाहिएं वरन संसार के सारे गृहस्थों के लिये ये आज्ञायें शिरोधार्य होनी चाहिए क्योंकि जितने बुरे व्यसन और यावत् पाप हैं वे सब इन्ही पाँच आज्ञायों के उल्लघन करने से उत्पन्न होते हैं। सारे पापों की जड़ हिंसा, चोरी, व्यभिचार, असत्य-भाषण और मद्यपान हैं। जो गृहस्थ इन कुव्यसनों को परित्याग कर दे वह अवश्यमेव सुखी रह सकता है, चाहे वह गृहस्थ बौद्ध, आर्य, मुसलमान और ईसाई कोई क्यों न हो।

बहुत से लोगों का सिद्धान्त है कि बौद्धधर्मानुयायी या बौद्धधर्म के आचार्य महात्मा गौतम ईश्वर अथवा आत्मा को नहीं मानते; वे केवल शून्यवादी हैं। यथार्थ में बौद्ध दार्शनिक शून्य वादी अवश्य हैं परन्तु शून्यवाद का तात्पर्य समझने में बहुत से लोग भूल करते हैं। जिन्होंने उत्तम प्रकार से शून्यवाद निरूपण किया है उन्होंने [१] ईश्वर है या नहीं [२] आत्मा नित्य है या अनित्य इत्यादि प्रश्नों को ही नहीं उठाया और न इस विषय पर उन्होंने अपना विचार या मत स्पष्ट रूप से प्रगट किया है। तब हम कैसे कह सकते हैं कि वे ईश्वरवादी हैं या नहीं, आत्मा नित्य है या अनित्य इसको मानते हैं या नहीं। बौद्ध दार्शनिक लोगों का मत है कि अविद्या और अस्मद् येही दोनों उत्पत्ति के कारण हैं। अविद्या से अहं और संसार और इन्हीं दोनों से जन्म होता है। अविद्या के नाश से अहं और संसार दोनों का नाश हो जाता है। अब यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि अहं और संसार के उच्छेद हो जाने से बाक़ी क्या रहा? अहं और संसार के उच्छेद हो जाने से जो बाक़ी रहा वही 'है' और 'नहीं' दोनों ही अतीत। यही 'अस्ति' और 'नास्ति' अतीतपदार्थ, निर्वाण और शून्यता है। यही पदार्थ भाव (Positive) भी नहीं और अभाव (Negative) भी नहीं है। भाव और अभाव दोनों अनित्य हैं। इसी कारण बौद्ध लोग निर्वाण अथवा शून्यता को भावाभाव अतिरिक्त वर्णन करते हैं। उन लोगों का ऐसा विश्वास है कि उस निर्वाणावस्था में न सुख है, न दुःख, न प्रकाश है न अंधकार और न वह अवस्था परिवर्तनशील है। उन लोगों का

कथन है कि यह निर्वाणशून्यता क्या पदार्थ है इसको हम वाक्य द्वारा नहीं बतला सकते। पाठक महोदयगण! अब हमने बौद्ध धर्म के मुख्य मुख्य सिद्धान्त आपके सम्मुख निवेदन कर दिए। अब हम आपकी सेवा में धम्मपद पुस्तक के विषय में जो बौद्धधर्म के उपदेशों का एक मुख्य ग्रंथ है और जिसका अनुवाद आगे के पृष्ठों में आपकी सेवा में प्रस्तुत किया जाता है, निवेदन करना चाहते हैं। महात्मा गौतम के मरने के पश्चात बौद्धधर्मानुयायियों की एक वृहत् सभा ईसा से ४७७ वर्ष पूर्व (अथवा ४८५ वर्ष पूर्व, कारण कि समयनिर्णय में लोगों का मतभेद है) हुई। इस सभा के मुख्याधिकारी तीन महापुरुष-काश्यप, आनन्द और उपाली थे। इन महात्माओं में से महात्मा कश्यप ने 'बुद्धसूत्र' लिखकर उसका नाम 'धम्मपद' रक्खा।

धम्मपद इस शब्द के अर्थ 'धर्ममार्ग' धर्मसूत्र, सदाचार की राह इत्यादि अनेक हो सकते हैं। पाली भाषा में धर्म को धम्म कहते हैं और सूत्र को पद। प्राचीन काल में इस ग्रन्थ के अनेक अनुवाद संस्कृत, चीनी, जापानी, तिब्बती, ब्रह्मी और मंगोली इत्यादि अनेक भाषाओं में हुए। परन्तु आजकल पश्चिमी विद्वानों की कृपा से इस बौद्धधर्म ग्रन्थ के अनुवाद लेटिन, ग्रीक, अँग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन और डेन इत्यादि अनेक भाषाओं में हुए और हो रहे हैं। जब इस ग्रन्थ का आदर संसार में इस प्रकार हो रहा है तब हमने भी अपने हिन्दी रसिक पाठकों के लिये इसका अनुवाद करना निश्चय किया। यह मूल ग्रन्थ पाली भाषा में है। प्रोफेसर मोक्षमूलर ने इसका अनुवाद अँग्रेज़ी भाषा में किया है और उसका मराठी अनुवाद यादवशंकर वावीकर ने करके ग्रन्थमाला नामक मासिक पुस्तक में प्रकाशित कराया। उसी अनुवाद के आधार पर से हमने भी यह अनुवाद किया है। मूल भाषा पाली न जानने और मोक्षमूलर कृत अँगरेज़ी अनुवाद बहुत कुछ खोज करने पर भी यहाँ न मिल सकने से केवल इसी पुस्तक के आधार से यह लेख लिखना पड़ा। इस ग्रन्थ में ४२२ श्लोक अर्थात् पद हैं। कई भाषाओं के अनुवादान्तर यह अनुवाद हुआ है अर्थात् मोक्षमूलर ने किसी

दूसरी पुस्तक पर से अनुवाद किया होगा और उस पर से मराठी में और मराठी से हमने किया। सम्भव है कि इसके शब्दविन्यास और शब्दयोजना मे मूल ग्रंथ से कुछ भेद पड़ गया हो परन्तु हमारे विचार से ऐसा होने पर भी इसके उपदेश हर एक बालक, युवा, वृद्ध नर नारी सबके जानने और मनन करने योग्य हैं। अब मैं इस भूमिका को यहीं समाप्त करके 'धम्मपद' अर्थात बौद्ध धर्म उपदेश रत्न-माला, पाठकों के सादर भेट करता हूं। पाठक गण! यदि इसमें कहीं किसी प्रकार की त्रुटि हो तो वह कृपा करके सुधार लीजिए या मुझे सूचना मिलने पर मैं उसे उचित संशोधन करके दूसरे संस्करण में सुधार दूंगा, क्योंकि मनुष्य से अल्पज्ञ होने के कारण भूल हो जाना सम्भव है।

धम्म पद

अर्थात्

बौद्ध-धर्म-उपदेश-रत्न-माला।

१—यम वर्ग।

१-हमारी वर्तमान स्थिति हमारे पूर्व विचारों के अनुसार है, उसका अवलम्बन हमारे मन पर है, उसका आरम्भ हमारे मन से होता है। जिस प्रकार रथ के पहिये बैलों के पीछे पीछे चलते हैं उसी प्रकार जो मनुष्य कुबुद्धि से बोलता या काम करता है उसके पीछे पीछे दुःख चलता है।

२-हमारी वर्तमान स्थिति हमारे ही पूर्व विचारों का फल है। उसका अवलम्बन हमारे मन पर हैं. उसका आरम्भ हमारे मन से होता है। मन में शुभ आशय अथवा सुविचार होने से मनुष्य उसी के अनुसार बोलता और करता है और समय के अनुसार सुख सदैव उसके पीछे साथ साथ चलता है।

३ इसने हमारा अपमान किया, इसने हमें मारा, इसने हमको विजय किया, इसने हमारा नाश किया—ऐसे विचार जिसके मन में आते हैं उसका उस मनुष्य से वैर कभी नहीं जाता।

४—इसने हमारा अपमान किया, इसने हमें मारा, इसने हमको हरा दिया, इसने हमारा नाश किया—ऐसे विचार जिसके मन में नहीं आते उसका उस मनुष्य से वैर कभी नहीं होता।

५—कारण वैर से वैर कभी नहीं जाता, वह प्रेम से नष्ट होता है, ऐसा प्राचीन सिद्धान्त है।

६—हम यहीं मरेंगे, यह बात साधारण लोगों के मन में नहीं आती, परन्तु जिनके मन में यह विचार आता है उनका लड़ना झगड़ना तुरन्त मिट जाता है।

७ जो सुख की ही चाहना करता है, जो इन्द्रियसंयम नहीं करता, जो मितभोजी नहीं होता, जो आलसी और दुर्बलेन्द्रिय है उसको कामदेव इस प्रकार पटक देता है जिस प्रकार आँधी कम ज़ोर पेड़ को पृथ्वी पर जड़ से उखाड़ देती है।

८–जिस तरह पहाड़ को पानी बहा नहीं सकता उसी तरह जो सुख की ही चाहना नहीं करते, जिन्होंने इन्द्रियों को अपने आधीन कर लिया है, जो मितभोजी है, जो श्रद्धावान और गम्भीर हैं उनको काम देव कभी नहीं हरा सकता।

९-पापों का मल बिना धोये हुए जो पीले वस्त्र पहिरने की इच्छा करता है, वह इन्द्रियनिग्रह से दूर होने के कारण पीले वस्त्र पहिरने के बिलकुल अयोग्य है।

१०-परन्तु अन्तःकरण का मल जिसने धोडाला है, सद्गुण जिसके शरीर में पूर्ण रूप से विराजमान है, जिसने इन्द्रिय निग्रह कर लिया है, वह पीले वस्त्र पहरने के योग्य है।

११–जिनको असार सार सा मालूम देता है और सार असार सा प्रतीत होता है, उनमें असत्य वासनायें भरी होने के कारण उनको सार कभी नहीं प्राप्त होगा।

१२–जिनको सार सार ही मालूम देता है और असार असार ही प्रतीत होता है, उनमें सत्य विचार होने के कारण उनको सार की प्राप्ति होती हैं।

१३–जिस प्रकार कच्चे मकान में पानी आता है उसी प्रकार अविवेकी मन में विकार आते है।

१४–जिस प्रकार पक्के मकान में पानी नहीं आता उसी प्रकार विवेकी मन में विकार नहीं आने पाते।

१५–पापी मनुष्य इस लोक में भी क्लेश पाता है और परलोक में भी क्लेश पाता है; दोनों लोकों में क्लेश पाता है। अपने कर्म देख कर उसको दुःख होता है, उसे (पीछे) शोक होता है।

१६ सदाचारी मनुष्य को इस लोक में आनन्द प्राप्त होता है और परलोक में भी आनन्द मिलता है, दोनों लोक में उसे सुख

प्राप्त होता है। अपने शुद्ध कर्मों को देखकर उसको सन्तोष और आनन्द मालूम होता है।

१७—दुराचारी मनुष्य इस लोक में कष्ट पाता है और परलोक में भी कष्ट पाता है, दोनों लोकों में कष्ट पाता है। अपने किए हुए दुराचरणों को देखकर उसको दुःख होता है, और दुराचारण में प्रवृत्ति होते समय उसको अधिक दुःख होता है।

१८—सदाचारी मनुष्य इस लोक में सुख पाता है और परलोक में भी उसे सुख मिलता है; उसे दोनों लोक में सुख प्राप्त होता है। अपना सदाचार देखकर उसको आनन्द होता है और जब वह सन्मार्ग में प्रवृत्त होता है तब उसको और भी अधिक आनन्द मिलता है।

१९—प्रमत्त मनुष्य बौद्ध (धर्म)शास्त्र को अधिक पढ़ा हो परन्तु उसके अनुकूल आचरण न करता हो तो जिस प्रकार दूसरे की गौओं को गिननेवाले ग्वाले को वे गौएं प्राप्त नहीं होतीं उसी तरह उस को श्रवणपना (आचार्यत्व) नहीं प्राप्त होता।

२०—जिसने विषय वासना, वैर और मोह को त्याग दिया, जिस को सत्य ज्ञान और मनःशान्ति प्राप्त हो गई, जो इस लोक और परलोक सम्बन्धी किसी विषय की चिन्ता नहीं करता—ऐसे शास्त्राज्ञानुसार चलनेवाला मनुष्य यदि शास्त्र को थोड़ा भी पढ़ा हो तो उसको श्रवणत्व (आचार्यत्व) प्राप्त होता है।

यमवर्ग समाप्त।

२—अप्रमाद वर्ग।

२१—अप्रमाद अर्थात् सावधानता यह निर्वाण (अमरत्व) का मार्ग है। प्रमाद अर्थात् असावधानता यह मृत्यु का मार्ग है। जो सावधान रहते हैं वे कभी नहीं मरते; जो असावधान रहते हैं उनको मृत्यु आ दबाती है।

२२—जो अच्छी तरह सावधान रहकर उसके रहस्य को जानते

हैं वे उसीमें रत रहकर श्रेष्ठ लोगों के तुल्य ज्ञान प्राप्त करके आनन्द पाते हैं।

२३–जो ज्ञानी नित्य ध्यान करते हैं और श्रेष्ठ मार्ग पर नित्य आलस्य रहित चलते हैं उनको सर्वोत्तम सुख –निर्वाण– प्राप्त होता है।

२४–जो मनुष्य सदैव सावधान रहते हैं, जिनके आचरण शुद्ध, जो विचारपूर्वक काम करते हैं, और इन्द्रियसंयम करके धर्माज्ञानुकूल चलते हैं, ऐसे पुरुषों की यशवृद्धि होती है।

२५–उद्योगनिरतता, मनोयोग और इन्द्रियसंयम इनके सहारे से जो बुद्धिमान पुरुष अपने लिए द्वीप तय्यार करता है वह द्वीप जल प्रलय होने पर भी नहीं डूबता।

२६–मूर्ख लोग अहंकार करते हैं, अविद्वानों के दास बनते हैं। बुद्धिमान मनुष्य उद्योगरूपी मूल्यवान रत्न को अपने पास रखते हैं। वे लोग अहंकार नहीं करते। माया और विषय सुख में नहीं फँसते। जो उद्योगी और विचारशील हैं उनको अधिक सुख प्राप्त होता है।

२७–२८ जब ज्ञानी मनुष्य उद्योग के सहारे से आलस्य को परित्याग करता है तब वह ज्ञानरूपी क़िले की सब से ऊंची चोटी पर जाकर असानारूढ होता है। जिस प्रकार पहाड़ पर बैठा हुआ मनुष्य नीचेवालों को देखता है उसी प्रकार (ज्ञानी मनुष्य) स्थिर चित्त हो कर मूढ़जन समूह को देखता है।

२९–आलसी मनुष्यों में आलस्य रहित, निद्रित मनुष्यों में जाग्रत–ऐसे बुद्धिमान–मनुष्य इस प्रकार हैं जिस प्रकार कोई उत्तम घोड़ा टट्टी को शर्त बांधने पर गिराकर सब से पहिले उसे फांद जाता है। तात्पर्य यह है कि वह मनुष्य आलसी और निद्रित मनुष्यों को पीछे छोड़ जाता है और अपने आप उस उत्तम घोड़े की तरह आगे बढ़कर बाज़ी जीत लेता है।

३० उद्योग के सहारे से मघवा (इन्द्र) सब देवताओं का राजा हुआ। लोग उद्योगी की स्तुति करते हैं और आलसी निरुद्योगी की सदैव निन्दा करते हैं।

३१-जो सन्यासी उद्योगरत रहकर आलस्य से डरता है वह अग्निवत् अपने सारे संचित कर्मों को भस्म कर डालता है।

३२-जो सन्यासी उद्योगरत रहकर आलस्य से डरता हैं वह अपनी पूर्व स्थिति से च्युत नहीं होता, वह निर्वाण पद के समीप पहुंच जाता है।

अप्रमाद वर्ग समाप्त।

३-चित्त वर्ग।

३३-जिस प्रकार लुहार भालों को सीधा करता है उसी प्रकार पण्डित अस्थिर, चंचल, और चपल-जिसको स्वाधीन रखना अति कठिन है-ऐसे अपने चित्त को स्थिर करते हैं।

३४ यदि मछली को पानी से निकालकर बाहर ज़मीन पर डाल दें तो वह बहुत तड़फड़ाती है उसी प्रकार अपना चित्त काम देव के संकट से छूटने को तड़फड़ाता है।

३५-स्वाधीन रखना, कठिन, चंचल और वेगगामी ऐसे मन को वश में करना उत्तम है। वश होने पर मन से सुख प्राप्ति होती है।

३६-चंचल, वेगगामी और जिसका वश में रहना अति कठिन है ऐसे मन को बुद्धिमान अपने आधीन रखते हैं। मन वश होने पर सुख प्राप्ति होती है।

३७-वायुरूप, वेगगामी, इधर उधर घूमनेवाले और अन्तः-करणरूपी गुफा में रहनेवाले-ऐसे मन को जो पुरुष अपने वश में रखता है वह मोहपाश से मुक्त हो जाता है।

३८-जिनका मन अस्थिर, जिनको सत् शास्त्र का ज्ञान नहीं, जिनका मन अशान्त है, उनको पूर्ण ज्ञान कभी नहीं प्राप्त होता।

३९-जिनका मन स्थिर, विषय रहित, पाप पुण्य रहित (?) और सावधान है उनको किसी का भय नहीं है।

४०-घड़े के तुल्य यह शरीर क्षणभंगुर है तो भी क़िले की

तरह मन को दृढ़ करके ज्ञानरूपी शास्त्र द्वारा इस पर धावा करना चाहिए। इसमें किसी प्रकार की भूल न होने देनी चाहिए।

४१–हाय हाय! थोड़े ही समय में यह शरीर निरुपयोगी काष्टवत् अचेतन होकर पृथ्वी पर पड़ा रह जायगा।

४२–वैरी वैरी की अर्थात् शत्रु शत्रु की जितनी हानि करता है उसकी अपेक्षा कुमार्ग में लगा हुआ मन अधिक हानि पहुंचाता है।

४३–सन्मार्ग में लगा हुआ मन जितना भला करता है उतना भला मां बाप या अन्य सम्बन्धी लोग नहीं कर सकते।

चित्त वर्ग समाप्त।

४–पुष्प वर्ग।

४४–इस पृथ्वी को देवता और राक्षसों में से कौन जीतता है? जिस प्रकार चतुर मनुष्य उत्तम पुष्पों को ढूंढ़ लाता है उसी प्रकार सदाचरण का सरल और दृढ़ मार्ग कौन ढूंढ़ निकालता है?

४५–इस पृथ्वी को देवता और राक्षसों में जो साधक अर्थात् क्रियावान हैं वे ही जीतते हैं। जिस प्रकार चतुर मनुष्य उत्तम पुष्पों को तलाश कर लेता है उसी प्रकार साधक, उद्योगी, पुरुष सदाचरण का सरल परन्तु दृढ़ मार्ग ढूंढ़ निकालता है।

४६–जो ऐसा जानता है कि यह शरीर पानी के बुलबुले के समान है और मृगतृष्णावत् असत्य है, वह कामदेव के बाणों से छेदा नहीं जासकता और न उसे यम का द्वार देखना पड़ता है।

४७–जिस प्रकार निद्रित गांव को नदी की बाढ़ बहा ले जाती है उसी प्रकार सांसारिक सौन्दर्य में लिप्त मनुष्य को मृत्यु आकर बहा ले जाती है।

४८–सांसारिक सुख सौन्दर्य मे व्यग्र मनुष्य पर उसकी वासना पूरी होने से पहिले मृत्यु आकर अपना अधिकार जमा लेती है।

४९–जिस प्रकार भौंरा फूलों को बिना तोड़े, बिना उसके रंग

रूप सुगंध को नष्ट किए उससे पराग इकट्ठा करता है, उसी प्रकार साधू को अपने घर में रहना चाहिए।

५०—दूसरे का दोष अथवा पाप देखने की अपेक्षा साधू को अपने बुरे कर्म और आलस्य की ओर देखना चाहिए।

५१—जिस तरह सुन्दर तरह तरह के फूलों में यदि सुगंधि न हो तो वे व्यर्थ हैं उसी तरह जो जैसा बोलता है और वैसा करता नहीं उसके शब्द मधुर भी हों तो भी निष्फल होते हैं।

५२—परन्तु जिस प्रकार उत्तम भांति भांति के सुन्दर और सुगंधित फूल अच्छे लगते हैं उसी प्रकार जो मनुष्य जैसा बोलता और उसीके अनुसार आचरण करता है उसके शब्द मधुर, अच्छे और सुफल होते हैं।

५३—जिस प्रकार फूलों के ढेर में से फूल लेकर अनेक प्रकार की माला माली तय्यार करते हैं उसी प्रकार एक बेर मनुष्य जन्म पाया तो उसको अधिक सत्कर्म में लगाना चाहिए।

५४—फूलों की सुगंधि वायु के प्रतिकूल नहीं जाती। चन्दन, तगर, बेला, चमेली इसकी भी सुगंधि जिस ओर वायु नहीं चलती उस ओर नहीं जाती। परन्तु जो लोग सज्जन हैं उनकी कीर्ति रूपी सुगंधि वायु के प्रतिकूल भी चलती है। मनुष्य के सदाचरणों का सब ओर संचार होता है।

५५—चन्दन अथवा तगर, कमल अथवा खस इन सब की अपेक्षा सद्गुणी पुरुष की सुगंधि अपूर्व होती है।

५६—चन्दन अथवा तगर की सुगंधि हलकी होती है, परन्तु जो सद्गुणी हैं उनकी सुगंधि अधिक और मधुर होती है, जो देवताओं पर भी अपना असर डालती है।

५७—जो सद्गुणी और विचारशील हैं सत्य ज्ञान द्वारा जो मुक्त हुए हैं, ऐसों के मार्ग में कामदेव आकर विघ्न नहीं डालता।

५८-५९—एक छोटे से ताल में यदि कमल पैदा हुआ तो भी वह मधुर सुगंधि देनेवाला और सब को लुभानेवाला होता है। तद्वत् एक छोटे ताल के तुल्य नीच और अज्ञान में फँसे हुए घराने में स्वप्रकाशित बुद्ध का शिष्य अपने ज्ञान द्वारा शोभा पाता है।

पुष्प वर्ग समाप्त

५–बाल वर्ग ।

६०–जो जागता है उसको रात अधिक है, जो थका है उसको कोस बड़े हैं; जिसको सत्यधर्म नहीं मालूम है, ऐसे मूर्ख को संसार भयंकर मालूम होता है ।

६१–प्रवासी को अपने से अच्छा अथवा अपने तुल्य प्रवासी न मिले तो उसको धैर्य के साथ अकेलेही राह चलना चाहिए परन्तु मूर्ख के साथ चलना अच्छा नहीं है ।

६२– ये पुत्र मेरे हैं, यह धन मेरा है, ऐसे विचार मूर्खों के मन में आते हैं–वह स्वतः अपनाही नहीं हैं, तो फिर लड़के और सम्पत्ति उसकी कैसे होगी?

६३–मूर्ख को अपना मूर्खपना मालूम होने पर वह अन्त में होशियार होजाता है, परन्तु जो मूर्ख अपने को होशियार समझता है वह यथार्थ में मूर्ख है ।

६४–जिस प्रकार चमचे को वस्तु का स्वाद नहीं जान पड़ता, उसी प्रकार यदि मूर्ख जन्म पर्यन्त किसी ज्ञानी के साथ रहे तो भी सत्य उसके ध्यान में कभी नहीं आवेगा ।

६५–जिस प्रकार जीभ को वस्तु का स्वाद आता है, उसी प्रकार यदि बुद्धिमान पुरुष का ज्ञानी के साथ कुछ थोड़ा बहुत भी समागम रहे तो भी सत्य उसके ध्यान में आजाता है ।

६६–जिसको बुद्धि नहीं हैं वह मूर्ख अपनाही शत्रु है क्योंकि वह जो बुरे कर्म करता है उसके बुरे फल वह जल्दी पाता है ।

६७–जिससे भविष्यत में पश्चात्ताप हो, जिसका फल रो रोकर भोगना पड़े, ऐसा काम करना अच्छा नहीं है ।

६८–परन्तु, जिस कर्म के करने से पीछे पछताना न पड़े और जिसका फल आनन्द और सन्तोषदायक हो, ऐसा काम करना अच्छा है ।

६९–बुरे कर्मों का फल जब तक नहीं मिलता तब तक मूर्ख को वह मधु सरीखा मीठा प्रतीत होता है परन्तु जब उसे उसका फल मिलता है तब उस फल से उसे दुःख प्राप्त होता है।

७०–किसी मूर्ख ने यती के तुल्य कई मास तक बराबर पत्तों पर भोजन किया और किसी अन्य पुरुष ने अच्छे प्रकार शास्त्र मनन किया। तो पहिला इस दूसरे के सामने पासँग भी नहीं है।

७१–जिस प्रकार तुरन्त का दुहा हुआ दूध तुरन्तही नहीं फट जाता, उसी प्रकार बुरे कर्मों का बुरा फल तुरन्तही नहीं मिलता। बुरे कर्मों की बुराई तुरन्तही समझ में नहीं आती। परन्तु राख में दबी आग के तुल्य वह मूर्ख का पीछा नहीं छोड़ती।

७२–बुरे कर्म प्रगट हो जाने पर मूर्ख को दुःख होता है उसकी प्रतिष्ठा नहीं रहती, इतनाही नहीं वरन् वे उसके भाग्य को भी दूषित करदेते हैं।

७३–सन्यासियों में अग्रगण्य होने, मठ अथवा देवालयों में मुख्याधिकारी होने और लोगों से अपने पुजाने की वृथा अभिलाषा इत्यादि कीर्तियों की चाहना मूर्ख लोग करते हैं।

७४–यह मैंने किया, वह मैंने किया, ऐसा गृहस्थ और सन्यासियों को मालूम होता है। जो कोई कुछ करना धरता हो वह मेरे कहने के अनुसार करे ऐसा मूर्ख चाहता है। इस कारण उसकी तृष्णा और अहंकार नित्य प्रति बढ़ता जाता है।

७५–सम्पत्ति मिलने का एक अलग मार्ग है और निर्वाणप्राप्ति का दूसरा मार्ग है। जो सन्यासी बुद्ध का शिष्य है उसे सांसारिक विषय वासनाओं का परित्याग करना चाहिए और उनसे बचने का प्रयत्न करना चाहिए।

बाल वर्ग समाप्त।

६–पण्डित वर्ग।

७६–सत्य का ख़ज़ाना कहां मिलता है यह मैं तुम से कहता हूं, किस का त्याग किसका ग्रहण करना चाहिए यह भी मैं तुमको

बतलाता हूं। यदि कोई ऐसा बुद्धिमान पुरुष तुमको मिले जो तुम्हें सावधान कर सके तो तुम उसकी बात को अवश्य ध्यान देकर सुनो। जो कोई उसकी बात सुनेगा उससे उसका भला ही होगा उससे उसका बुरा कभी न होगा।

७७-उसे सावधान कर दो, उसे उपदेश दो, जो ठीक नहीं है उसका निषेध करो, ऐसा करने से सज्जन को अच्छा लगेगा परन्तु दुर्जन उसका तिरस्कार करेंगे।

७८-दुष्ट लोगों से मित्रता न करो, नीच लोगों का साथ मत दो, सज्जनों से मित्रता करो, जो सतपुरुष हैं उनका साथ दो।

७९-जो लोग धर्म का सेवन करते हैं वे आनन्दित और शान्त रहते हैं। आर्य (श्रेष्ठ) पुरुषों के धर्मोपदेश द्वारा सिद्ध पुरुषों को निरन्तर आनन्द मिलता है।

८०-नल लगानेवाले अथवा नाली खोदनेवाले लोग पानी को जिस ओर चाहें ले जा सकते हैं। तीर बनानेवाले लोग जिस ओर चाहें उसे घुमा सकते हैं; बढ़ई लकड़ी को काट छांटकर सीधी, टेढ़ी, जैसी चाहे कर सकता है परन्तु जो पण्डित हैं वे स्वयं अपने आकार अथवा स्वरूप को भी बदल सकते हैं।

८१-जिस प्रकार ऊसर पर वर्षा होने से उसको कुछ लाभ हानि नहीं होती उसी प्रकार पण्डित को अपनी निन्दा अथवा स्तुति से कुछ लाभ हानि नहीं पहुंचती है।

८२-जो पण्डित हैं वे गहरे और शान्त सागर के तुल्य शान्त चित्त हो जाते हैं।

८३-कुछ भी हो परन्तु सज्जन अपना क्रम नहीं परित्याग करते, वे बकवाद नहीं करते और न सुख की इच्छा करते हैं। सुख प्राप्त भी हुआ तो वे उसे पाकर घमंड नहीं करते और न जल्द इतरा उठते हैं और यदि दुःख हुआ तो वे खिन्न चित्त नहीं होते।

८४-जो कोई अपने लिये अथवा दूसरे के लिये पुत्र, सम्पत्ति अथवा स्वामित्व की इच्छा नहीं करता या अयोग्य रीति से अपने उत्कर्ष की चाहना नहीं करता, वह सज्जन, ज्ञानी और सद्गुणी है।

८५–संसार सागर से पार उतरनेवाला (निर्वाण पद पानेवाला) कोई विरलाही माई का लाल जन्मता है, बाक़ी किनारे पर इधर उधर ही घूमने वाले (संसारी लोग) बहुत हैं।

८६–जो कोई धर्म का पूर्ण उपदेश पाने पर उसी के अनुसार आचारण करता है, वह मृत्यु के अति दुस्तर राज्य का भी उल्लङ्घन कर जाता है (अर्थात् निर्वाण पद पाजाता है) ।

८७–८८–पण्डित को बुरी स्थिति छोड़कर अच्छी स्थित में आना चाहिए। घर छोड़ने पर उतना सुख नहीं जितना सुख एकान्त वास में है। सुख को परित्याग कर बुद्धिमान पुरुष यह तेरा यह मेरा न कहकर सर्वमांसिक बाधाओं से अपना छुटकारा करे।

८९–जिनके ध्यान में ज्ञान का तत्व पूरा पूरा आजाता है, जो किसी में आसक्त नहीं होते, मुक्तावस्था में जिनको आनन्द प्रतीत होता है, जिनकी आशाओं (Desires) का नाश हो गया है और जो तेजोमय हैं वे लोग जीवनमुक्त हैं।

पण्डित वर्ग समाप्त।

७–अर्हत वर्ग।

९०–जिसने अपनी यात्रा पूरी कर ली है, जिसने दुःखों का त्याग कर दिया है, जिसने अपने संसारी बंधनों को तोड़कर उनसे अपने आपको मुक्त किया है उसको मोक्तृत्व प्राप्त होता है।

९१–जिनको घर में सुख नहीं मालूम होता और जो पूर्ण विचार कर घर छोड़ते हैं वे सरोवर छोड़कर गएहुए हंसो के तुल्य घर छोड़ते हैं।

९२–जिसके पास धन सम्पति नहीं है, जो मितभोजी है, (परन्तु) जिसने अप्रतिबद्ध और शून्यमय निर्वाण जान लिया है, उसका मार्ग आकाश में विचरनेवाले पक्षियों के मार्गतुल्य जानना अति दुस्तर है।

९३–जिसकी तृष्णा शान्त हो गई है। जो संभोग में लवलीन नहीं है। जिसमें अहं (अभिमान) नहीं है और जिसको वासनाओं

का नाश होगया है उसका मार्ग आकाश में विचरनेवाले पक्षियों के तुल्य जानना अति कठिन है।

९४–चित्रांकित घोड़े के तुल्य जिसने अपनी इन्द्रियों को अंकित किया है, जिसमें अहं भाव नहीं रहा और जिसकी वासनाओं का नाश हो गया है, ऐसे पुरुषों की देवता भी स्पर्धा करते हैं।

९५–जो कर्तव्य कर्म करता है, जो पृथ्वी अथवा वज्र के तुल्य सहनशील है वह अथाह सरोवर के तुल्य है, जन्म मृत्यु के बन्धन से मुक्त है।

९६–सत्यज्ञान की सहायता से जिसे मुक्ति प्राप्त हुई है और उसीके सहारे से जो स्थिरचित्त हुआ है उसके विचार, शब्द और कर्म, ये तीनों द्वार शान्त हो जाते हैं।

९७–जो भोला नहीं है, जो 'अनिमित' ऐसा जानता है, जिसने सारे बन्धनों को तोड़ डाला है, जिसने मोह का नाश कर दिया है और जिसने सारी आशायें परित्याग कर दी हैं, वह सारे मनुष्यों में श्रेष्ठ है।

९८–पर्णकुटि अथवा वन में गुफ़ा अथवा गुहा में जहाँ परम पूज्य (अर्हत) लोग रहते हैं वह स्थान आनन्दमय होता है।

९९–वन आनन्दमय होता है, जहाँ संसारी लोगों को आनन्द नहीं मिलता वहां विरक्त पुरुषों को आनन्द प्राप्त होता है; क्योंकि वे सुखोपभोग की चाहना नहीं करते।

अर्हत वर्ग समाप्त।

८–सहस्र वर्ग।

१००–बोध रहित सहस्र शब्द सुनने की अपेक्षा बोधयुक्त एक शब्द सुनना अच्छा है; (क्योंकि) इसके सुनने से मनुष्य की आत्मा को शान्ति होती है।

१०१–निरर्थक हज़ार शब्दों की कविता (गाथा) सुनने की अपेक्षा जिस शब्द के कान में पड़तेही शान्ति मिले ऐसे एक शब्द का सुनना भी अच्छा है।

१०२–निरर्थक सौ शब्द की कविता पढ़ने की अपेक्षा धर्म का एकही शब्द पढ़ना उत्तम है क्योंकि उसके पढ़ने से मनुष्य को शान्ति मिलती है।

१०३–जो मनुष्य सहस्र बार सहस्रों लोगों को युद्ध में जीतता है उसकी अपेक्षा जो अपने आपको जीतता है वह सारे विजयी लोगों में श्रेष्ठ माना जाता है।

१०४–१०५–अन्य लोगों को जीतने की अपेक्षा अपने आपको जीतना अच्छा है। जिसने अपने आपको जीत लिया है, जो सदैव इन्द्रियों को संयम में रखता है उसके यश में देव, गन्धर्व और कामदेव कालिमा नहीं लगा सकते।

१०६–जिसने महीनों सहस्र आहुतियों से बराबर सौ वर्ष पर्यन्त यज्ञ किया और जिसके अन्तःकरण में अनुभव द्वारा सच्चा ज्ञान उत्पन्न हो गया ऐसे महात्मा की क्षण भर भी सेवा करना उस सौ वर्ष के यज्ञ की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ है।

१०७–जिसने वन में रहकर अग्नि की सेवा सौ वर्ष तक की और जिसके अन्तःकरण में अनुभव द्वारा सत्यज्ञान उत्पन्न हो गया ऐसे महा पुरुष की क्षण भर सेवा उस यज्ञ की अपेक्षा अधिक श्रेयस्कर है।

१०८–पुण्य प्राप्ति होने के लिये इस लोक में कैसीही आहुति अथवा बलिदान दिया जावे तो उन सबों का मूल्य एक कौड़ी बराबर भी नहीं है। जो सत्यशील हैं उनके ऊपर श्रद्धा रखकर उनका सत्कार करना यह उसकी अपेक्षा अधिक उत्तम है।

१०९–जो बूढ़ों को सदैव नमस्कार करता है और उन पर सदैव पूज्यभाव रखता है उसकी आयुष्य, सौंदर्य, सुख और बल की अधिक वृद्धि होती है।

११०–दुर्गुण और विषय वासनाओं में लुब्ध होकर जो सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जो सदाचारी और विवेकशील है उसका एक दिन का भी जीना अधिक उत्तम है।

१११–ज्ञान शून्य, इन्द्रियाधीन रहकर जो सौ वर्ष तक जीता

है उसकी अपेक्षा जो बुद्धिमान और विवेकशील है उसका एक दिन का जीना भी अधिक उत्तम है।

११२—आलसी और दुर्बल रहकर जो सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जिसने पूर्ण बल प्राप्त किया है उसका एक दिन का भी जीना उत्तम है।

११३—आदि और अन्त का विचार न करके जो सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जो आदि और अन्त क्या है इसको जानता है उसका एक दिन का भी जीना अति उत्तम है।

११४—जो शाश्वत पद (निर्वाण) को न जानकर सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जो शाश्वत पद (निर्वाण) को जानता है उसका एक दिन का भी जीना अति उत्तम है।

११५ जो सर्वोत्तम धर्म को न जानकर सौ वर्ष तक जीता है उसकी अपेक्षा जो सर्वोत्तम धर्म जानता है उसका एक दिन का भी जीना अतिही उत्तम है।

सहस्र वर्ग समाप्त।

९—पाप वर्ग।

११६—यदि किसी को अपने हाथ से जल्दी किसी उत्तम कर्म करने की इच्छा हो तो उसको चाहिए कि बुरी बातों से अपने विचारों को दूर रक्खे। जो कोई आलस्य से भी अच्छा काम करे तो उसके मन में तुरन्तही अच्छा बुरा भासने लगता है।

११७—यदि किसी ने दुराचरण किया, तो फिर उसको वह फिर कभी न करना चाहिए; दुराचरण से कभी सुख पाने की आशा न करनी चाहिए। दुराचरण का फल दुःख है।

११८—यदि किसी ने पुण्याचरण किया, तो फिर उसको करना चाहिए; उसीमें आनन्द मनाना चाहिए। पुण्याचरण का फल सुख है।

११९—जब तक बुरे कर्मों का फल नहीं प्राप्त होता तब तक बुरे कर्म करनेवाले को उसमें सन्तोष प्रतीत होता है परन्तु जभी उस

को बुरे कर्मों का फल प्राप्त हुआ तभी उसे वह बुरा दिखाई पड़ने लगता है।

१२०-जब तक अच्छे कर्मों का फल नहीं मिलता सज्जन को बुरे दिन काटने पड़ते हैं, परन्तु अच्छे कर्मों का फल आने पर पीछे उसके सुदिन आते हैं।

१२१-अपना उससे मेल न होगा, ऐसा मन में विचार कर, किसी पाप कर्म की ओर लक्ष्य न देना चाहिए। जिस प्रकार धीरे धीरे पानी बरसने पर भी घड़ा भर जाता है; उसी प्रकार थोड़ा थोड़ा पाप करने पर भी मूर्ख पूर्ण पापी बन जाता है।

१२२-उससे अपना कुछ भी उपयोग न होगा, ऐसा मन में विचार कर, किसी पुण्य की ओर भी लक्ष्य न देना चाहिए। थोड़ा थोड़ा भी पानी बरसने पर घड़ा भर जाता है। थोड़ा थोड़ा पुण्य संचय करके ज्ञानी पुरुष पूर्ण पुण्यशील बनता है।

१२३-जिस प्रकार प्रवास में व्यापारी जिसके पास अधिक धन हो और साथ में साथी कम हों, धोखों की राह से भागता या बचता है अथवा जिसको अपना जीवन प्यारा है वह विष से बचता है; उसी प्रकार मनुष्य को पापाचरण से बचना चाहिए।

१२४-जिसके हाथ में घाव नहीं है उसे विष स्पर्श करने से डर नहीं लगता क्योंकि उसे घाव न होने के कारण विष से हानि नहीं पहुंचती; जो पापाचरण नहीं करते, उनको पाप नहीं लगता।

१२५-जिस प्रकार हवा में धूल उड़ाने से वह उड़ानेवाले के मुंह पर ही आकर पड़ती है; उसी प्रकार जो मूर्ख मनुष्य निरपराध शुद्ध और सात्विकी मनुष्यों को दुःख देते हैं उनको पाप लगता है।

१२६-कितने ही लोक पुनर्जन्म पाते हैं, पापी नरक में जाते हैं, जो पुण्यशील हैं उनको स्वर्ग प्राप्त होता है। जो सांसारिक बंधनों से मुक्त हैं वे निर्वाण पद पाते हैं।

१२७-जहां मनुष्य बुरे कर्मों से मुक्त हों ऐसा स्थान अन्तरिक्ष समुद्र, गिरि कंदरा अर्थात् सारे जगत में कहीं नहीं है।

१२८–जहां प्राणी को मृत्यु का भय न हो ऐसा स्थान अन्तरिक्ष, समुद्र गिरि कन्दरा अर्थात् सारे जगत में कहीं नहीं है ।

पाप वर्ग समाप्त ।

१०–दण्ड वर्ग ।

१२९–सारे मनुष्य दण्ड पाने से भय खाते हैं, सारे मनुष्य मौत से डरते हैं, तुम भी उसी प्रकार हो । यह ध्यान में रखकर हिंसा कभी मत करो और न किसी का विनाश करो ।

१३०–सारे मनुष्य दण्ड पाने से डरते हैं, सारे मनुष्य प्राणी मात्र पर प्रीति करते हैं, तुम भी उसी प्रकार हो । यह ध्यान रख कर किसी का बध मत करो और न किसी को दुःख पहुंचाओ ।

१३१–जो अपने सुख की इच्छा करता है और सुख के लिये हिंसा करता है उसको मरने के बाद सुख नहीं प्राप्त होता ।

१३२–जो अपने सुख की इच्छा करता है परन्तु प्राणियों को अपने सुख के लिये नहीं मारता अथवा उनको दुःख नहीं पहुँचाता उसको मरने के बाद सुख प्राप्त होता है ।

१३३–किसी से कठोर शब्द मत कहो । तुम जिससे जैसा कहोगे वह तुम को वैसाही उत्तर देगा । क्रोध से बोलना बुरा है । मरने का परिणाम शरीर के ऊपर होता है ।

१३४–फूटे घड़े के तुल्य (अर्थात नाक से भिनभिनाकर) मत बोलो क्योंकि तुम निर्वाण पद पाओगे । कलह तुमको कभी न करनी चाहिए ।

१३५–जिस प्रकार ग्वाला गायों की हेड़ को लकड़ी से हांकता है उसी प्रकार बुढ़ापा और मौत मनुष्य के जीव को हांकते है ।

१३६–जब मूर्ख बुरे कर्म करता है तब तो उसको मालूम नहीं होता; परन्तु आग पर रोटी पकाने के तुल्य वह अपने बुरे कर्मों को पकाता है ।

१३७–जो निरपराधी और ग़रीब मनुष्य को दुःख देता है उस को इन दस दशाओं में से एक आधी अवश्य प्राप्त होगी ।

१३८–उसको अति दारुण दुःख होगा, हानि होगी, शारीरिक पीड़ा होगी या मनःक्षोभ होगा।

१३९–अथवा राजदण्ड होगा, कोई भयंकर अपवाद लगेगा, नातेदारों रिश्तेदारों का नाश होगा अथवा उसके धन को हानि होगी।

१४०–अथवा उसके घर में आग लगेगी और नाज इत्यादि आवश्यक सामिग्री सब जल जायगी और शरीर नष्ट होने पर वह मूर्ख नरक को जायगा।

१४१–जब तक वासनाओं का दमन न होगा तब तक कभी मनुष्य के मन की शुद्धी न होगी। चाहे वह नंगा रहे, चाहे वह जटा बढ़ावे और मैले कुचैले कपड़े पहने। अथवा उपवास करे अर्थात् भूखा रहे या ज़मीन पर सोवे, अङ्ग में राख लगावे या अचेतन बैठा रहे।

१४२–अच्छे वस्त्र पहन कर जो शान्त रहता, जो स्थिर, जितेन्द्रिय, विचारशील और पवित्राचरणी है और जो दूसरे के दोषों की ओर नहीं देखता अथवा उनका नाम नहीं धरता वही सच्चा ब्राह्मण श्रमण अथवा सन्यासी है।

१४३–जिस प्रकार अच्छा सिखाया हुआ घोड़ा चाबुक की ओर ध्यान नहीं रखता है उसी प्रकार जो शब्द प्रहार की ओर ध्यान नहीं देता ऐसा नम्र मनुष्य क्या कोई संसार में है?

१४४–अच्छा सिखाया हुआ घोड़ा चाबुक लगतेही अधिक तेज़ और चौकन्ना होजाता है उसी प्रकार श्रद्धा, सदाचरण, उत्साह, ध्यान और धर्म परिशीलता की सहायता से तुम इस (शब्दप्रहार) महान दुःख वेग को सहन करो। (ऐसा करने से) तुम ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण होगे।

१४५–नल अथवा नाली बनानेवाले लोग पानी को जिस ओर चाहें ले जाते हैं। तीर बनानेवाले लोग चाहें जिस ओर उसे घुमा सकते हैं। बढ़ई लकड़ी को काट छाँट कर टेढ़ा मेढ़ा कर सकता है परन्तु जो पण्डित हैं वे अपने आपको भी बदल सकते हैं। (तात्पर्य यह है कि नल अथवा नाली बनानेवाले, या तीर बनानेवाले पुरुष

केवल तीर, नाली या लकड़ी को ही बना बिगाड़ सकते हैं, अपने आप को नहीं, परन्तु पण्डित अपने आपको भी बना बिगाड़ सकता है)।

दण्ड वर्ग समाप्त।

११-जरा वर्ग।

१४६-यह संसार सदैव दुःखाग्नि में जला करता है इसमें सुख और आनन्द कहाँ? तुम यह जानकर भी अन्धकार में पड़े हुए, प्रकाश की तलाश क्यों नहीं करते?

१४७-फोड़ा होने से विकल, अनेक प्रकार की निद्रा, निर्बलता और व्याधिग्रस्त; ऐसे कपड़ा डाले हुए मनुष्य की ओर देखो!

१४८-दुर्बल, व्याधिग्रस्त और क्षणभंगुर ऐसा शरीर-बुराइयों की खान-नाश होगा। मृत्यु के योग से जीव नष्ट होगा (?)।

१४९-बरसात में झोपड़ा तुल्य फेंके हुए ये सफेद हाड़, इन के देखने में क्या सुख है?

१५०-हाड़ों का क़िला बनाने पर वह रक्त और मांस से ढाँका जाता है; फिर उसमें बुढ़ापा और मौत, अभिमान और कपट ये वास करते हैं।

१५१-राजा का सुन्दर रथ समय आने पर टूटता है; समय आने पर शरीर भी नाश होता है। परन्तु जो सदाचारी है उसके सद्गुणों का नाश कभी नहीं होता ऐसा सज्जन सज्जनों से कहते हैं।

१५२-जिस मनुष्य ने थोड़ा अध्ययन किया है वह बैल के तुल्य बुड्ढा है। उसकी उमर बढ़ी है परन्तु उसका ज्ञान नहीं बढ़ा।

१५३-१५४-इस झोपड़ा (शरीर) बनानेवाले का पता लगाते लगाते उसके मालूम होने तक अनेक जन्म बीत जाते हैं। बार बार जन्म पाना बड़ा दुःख है परन्तु इस झोपड़े (शरीर) के कर्ता का दर्शन होजाने पर तुमको फिर यह झोपड़ी न बनानी चाहिए। तेरे झोपड़े (शरीर) के सब खम्भे टूट गए हैं, छत के

टुकड़े टुकड़े होगए हैं । मन आधीन होजाने के कारण निर्वाणपद के समीप पहुंचने से तेरी सारी तृष्णा लुप्त होगई है।

१५५–जो उत्तम शिक्षा पर नहीं चलते और जिन्होंने युवा अवस्था में संचय नहीं किया वे–ताल सूखने पर मछलियों के मरजाने पश्चात–बगुलों के तुल्य मरते हैं।

१५६–जो उत्तम शिक्षा पर नहीं चलते और न जिन्होंने युवावस्था में संचय किया है वे टूटे धनुष के तुल्य बीते हुए समय का सोच करते हैं।

जरा वर्ग समाप्त।

१२–आत्म वर्ग।

१५७–जो कोई मनुष्य अपने ऊपर अधिक प्रीति करता है उस को चाहिए कि वह अपना स्वतः निरीक्षण करता रहे। तीन अवस्थाओं में से बुद्धिमान को एक अवस्था में अवश्य जागृत होना चाहिए। *

१५८–जो ठीक है वह पहिले मनुष्य को स्वतः करना चाहिये और पीछे लोगों को उपदेश देना चाहिए; ऐसा करने से बुद्धिमान मनुष्य को क्लेश नहीं होता।

१५९–जिस प्रकार मनुष्य दूसरों को करने का उपदेश देता है उसी प्रकार स्वयं उसे करना चाहिए। पहिले अपने आप ठीक हो जाने पर पीछे दूसरों को समझाने में कठिनता नहीं पड़ती। स्वयं ठीक ठीक करना अति कठिन है।

१६०–जो स्वयं अपना मालिक है, उसका दूसरा मालिक कौन होगा? इन्द्रिय दमन करने पर मनुष्य को ऐसा धन प्राप्त होता है जैसा दूसरों को क्वचितही प्राप्त होगा।

१६१–जिस प्रकार हीरा मूल्यवान पत्थर के टुकड़े टुकड़े कर डालता है उसी प्रकार स्वयं किया हुआ पापाचरण, स्वयं पैदा किया

---

* तीन अवस्थाएं–बाल्यावस्था, युवावस्था, और वृद्धावस्था।

और बढ़ाया हुआ पाप, मूढ़ पुरुष को चूर चूर (अर्थात् नाश) कर डालता है।

१६२-जिस प्रकार पेड़ से फूटकर फैलनेवाली बेल, पेड़ को ही झुका देती है; उसी प्रकार जो अति मूढ़ है वह अपने आपको जिस दशा में वह है उस दशा से शत्रु इच्छित दशा में-हीन दशा में-पहुंचा देता है।

१६३-बुरे कर्म और अपने आपको अनहितकारी, कालिमा लानेवाले काम करना तो सहज है; परन्तु हितकारी और अच्छे काम करना अति कठिन है।

१६४-जो मूर्ख, पूज्य (अर्हत), श्रेष्ठ (आर्य) और सदाचारी लोगों की आज्ञा का तिरस्कार करते और असत्य मत का अवलम्बन करते हैं वे कत्थक वृक्ष के कत्थक* फलवत अपनाही नाश कर डालते हैं।

१६५-मनुष्य स्वतः पाप करता है और उसका फल भी स्वतः ही भोगता है। वह अपने आपही पाप को त्यागता और अपने आपही शुद्ध होता है। शुद्ध अथवा अशुद्ध होना अपने हाथ में है। कोई किसीको शुद्ध अथवा अशुद्ध नहीं कर सकता।

१६६-दूसरे का काम कितनाही अधिक हो परन्तु उसके लिये अपने काम को नहीं भुलाना चाहिए। अपना कर्तव्य क्या है यह मनुष्य को विचारना और फिर उसे ध्यानपूर्वक करना चाहिए।

आत्म वर्ग समाप्त।

१३-लोग वर्ग।

१६७-बुरे धर्म का आचरण मत करो! अविचार से मत चलो! असत्य उपदेश पर मत चलो! संसार के मित्र मत बनो।†

१६८-जागते रहो। आलसी मत बनो। नीति पर चलो।

---

* कत्थक शब्द का अर्थ कई एक संस्कृत कोषों में तलाश किया गया परन्तु पता नहीं चला सम्भवतः इस का तात्पर्य बेंत अथवा नरकुल से है। फल आने बाद यह वृक्ष या तो अपने आप ही सूख जाता है या उसमें दुबारा फल आने के लिए उस को छांट देते हैं। लेखक।

† तात्पर्य यह प्रतीत होता है कि सांसारिक लोगों और पदार्थों में लिप्त मत हो।

जो लोग नीतिमान हैं वे इस लोक और परलोक दोनो में आनन्द पाते हैं।

१६९–पुण्याचरण के नियमानुसार चलो। पापाचरण के नियमों पर कभी मत चलो। जो लोग पुण्याचरण करते हैं वे लोग इस लोक और परलोक दोनो में आनन्द पाते हैं।

१७०–संसार को पानी के बुलबुले तुल्य अथवा मृगतृष्णावत् समझो। जो इस प्रकार जग को तुच्छ समझता है उसकी ओर यमराज आँख उठाकर भी नहीं देखते।

१७१–राजा के रथ तुल्य चकाचौंध लाने वाले संसार को देखो! मूर्ख इसमें निमग्न हो जाते हैं और बुद्धिमान अलिप्त रहते हैं।

१७२–पहिले की धुंध खोकर पीछे जो सावधान होता–सत्यता पर आता है; वह मेघमंडल से मुक्त हुए चन्द्रमा तुल्य अपना प्रकाश जग में डालता है।

१७३–जिन लोगों के पूर्व कर्म पाप पुण्य से ढके हैं वे प्रगट होने पर चन्द्रमा के तुल्य जग में प्रकाशित हो जाते हैं।

१७४–संसार अन्धकारमय है। इसमें थोड़ासा ही दिखलाई पड़ता है। पिंजड़े में से छुटे हुए पक्षी के तुल्य यहां से थोड़े ही लोग स्वर्ग को जाते हैं।

१७५–हंस सूर्य के मार्ग से जाता है, वह अपने अद्भुत सामर्थ की योग्यता से आकाश में उड़ता है। जो बुद्धिमान हैं वे कामदेव और उसके साथ नवयौवना रमणी को जीत कर इस लोक से मुक्त होते हैं।

१७६–जिसने एक धर्म के नियमों का उल्लङ्घन किया, जो असत्य बोलने लगा और परलोक के विषय में हँसी दिल्लगी करने लगा; तो फिर कोई पाप नहीं जिसको वह करने से चूक जाय।

१७७–जो लोग कृपण हैं वे देवलोक में कभी नहीं जासकते। जो लोग मूर्ख हैं वे कभी उदार पुरुष की स्तुति नहीं करते। परन्तु जो ज्ञानी हैं उनको उदारता के बदले अधिक आनन्द मिलता है और इसकी सहायता से उनको परलोक में सुख प्राप्त होता है।

१७८–पृथ्वी पर राज्य करने की अपेक्षा अथवा स्वर्ग लोक

पाने की अपेक्षा अथवा सारे लोकों का स्वामित्व प्राप्त होने की अपेक्षा 'स्रोतआपत्र' नामक निर्वाण की पहिली सीढ़ी पर पहुंचना अधिक श्रेष्ठ है।

लोक वर्ग समाप्त।

१४–बुद्ध वर्ग।

१७९–जिसके विजय का कभी पराजय नहीं होता, जिसके विजय के सामने अन्य विजय को लेते नहीं बनता; ऐसे उस बुद्ध को, त्रिकालज्ञ को, अगम्य को, तुम किसी राह से संसार में वापस ला सकते हो ?

१८०–वासनाओं के बंधन, अथवा लोभ लालच जिसके ऊपर अधिकार नहीं जमा सकते और न वे उस को कुमार्ग में ले जासकते हैं, ऐसे उस बुद्ध को, त्रिकालज्ञ को, अगम्य को तुम किसी रीति से संसार में लौटाकर ला सकोगे ?

१८१–जो बुद्ध (पूर्णज्ञानी) हैं, भूल में नहीं पड़े हुए हैं, चिन्तमन में सदैव निमग्न, ज्ञानी और सर्व संग परित्याग करके शान्त दशा में आनन्द युक्त हैं ऐसों की देवता लोग भी स्पर्धा करते हैं।

१८२–मनुष्य के प्राणों की कल्पना करना दुर्लभ है, मनुष्य का सदैव जीवित रहना दुर्लभ है; सद्धर्म का सुनना और बुद्ध का जन्म लेना दुर्लभ है।

१८३—पाप मत करो, पुण्य करो। अपना चित्त शुद्ध करो। ये बुद्ध के उपदेश हैं।

१८४–शान्ति यह सब तपों से बड़ा तप है। दृढ़ता और सहनशीलता इसीसे निर्वाण प्राप्त होता है। क्योंकि जो दूसरों को मारता है वह प्रव्रजित (यति) नहीं है, जो दूसरों को दुःख देता है वह श्रमण (साधु) नहीं है–ऐसा बुद्ध का कथन है।

१८५–दूसरों के विषय में बुरा मत बोलो, दूसरों के ऊपर प्रहार मत करो। धर्मानुसार चलो, मित भोजी बनो। एकान्त में बैठो और सोचो। सदैव उच्च विचारों में निमग्न रहो–ये बुद्ध के आदेश हैं।

१८६–यदि सोने की वर्षा हो तो भी तृष्णा कभी शान्त नहीं होती। तृष्णा की मिठास थोड़ी होने पर भी वह दुःख दाई होती है; जो ऐसा जानता है वही बुद्धिमान है।

१८७–जिसको स्वर्ग के सुख में भी सन्तोष नहीं है, जिसके नेत्र पूर्ण रूप से खुले हैं, ऐसे सच्छिष्य तृष्णा का संहार करने में निमग्न होते हैं।

१८८–भयभीत हुए लोग गिरि, कन्दरा अथवा जंगल, उपवन और पवित्र पेड़ इत्यादि के नीचे अनेक स्थानों का आश्रय लेते हैं। (शायद पवित्र पेड़ से तात्पर्य उस बोधी वृक्ष से होगा जिसके नीचे बैठकर महात्मा गौतम ने निर्वाण पद पाया था)।

१८९--परन्तु जो आश्रय सर्वोत्तम नहीं है वह सुरक्षित भी नहीं होता; क्योंकि उसका आश्रय लेने से मनुष्य सारे दुःखों से नहीं छूटता।

१९०--जो मनुष्य बुद्ध, धर्म और संघ इन तीनों का आश्रय लेता है और (नीचे लिखे हुए) चार वचनों को जानता है,

१९१--दुःख, दुःख का मूल, दुःख का अन्त और दुःख शान्ति के आठ उपाय;–सत्य दृष्टि, सत्य संकल्प, सत्य वचन, सत्य कर्म, सत्य जीवन, सत्य व्यायाम, सत्य स्मृति और सत्य समाधि।

१९२-जो सर्वोत्तम आश्रय है वही सर्वोपरि आश्रय है; उसका आश्रय लेने पर मनुष्य सारे दुःखों से छूट जाता है।

१९३--अलौकिक पुरुष मिलना दुर्लभ है, वह सब कहीं जन्म नहीं लेता। जहाँ ऐसा सत्पुरुष जन्म लेता है वह वंश धन्य है।

१९४- बुद्ध का उपदेश सुखकारक, सद्धर्मों का उपदेश सुखकारक और संघ से प्राप्त शान्ति सुखकारक; जो शान्तिमय है उसकी मुक्ति सुखकारक होती है।

१९५—१९६ जिसने पाप समूह को जीत लिया मानो उसने दुःख के प्रवाह की राह बन्द करदी। जिसने संग रहित होकर जय को त्याग दिया है ऐसे सेवा करने योग्य बुद्ध और उसके शिष्य की जो सेवा करते हैं उनके पुण्य की गणना कौन कर सकता है।

बुद्ध वर्ग समाप्त।

१५—सुख वर्ग ।

१९७- जो तुम से द्वेष करते हैं (तुम) उनसे द्वेष करना छोड़ कर आनन्द पूर्वक रहो ! जो तुम से द्वेष करते है उनसे वैर कभी मत करो।

१९८--व्याधिग्रस्त लोगों में व्याधि से मुक्त होकर तुम आनन्द से रहो ! तुम उन लोगों में जो व्याधिग्रस्त हैं व्याधि से मुक्त होकर रहो।

१९९--लोभी लोगों में निर्लोभी होकर आनन्द पूर्वक रहो ! तुम उन लोगों में जो लोभी हैं निर्लोभी हो कर रहो।

२००-अपना कुछ नहीं है ऐसा विचार कर आनन्द पूर्वक रहो! तुम देवता तुल्य आनन्द से रहो!

२०१--जय होने से वैर उत्पन्न होता है क्योंकि जित दुखी रहता है। जिसने जय पराजय छोड़ दिया है वही शान्त और सुखी है।

२००--मनक्षोभ तुल्य अग्नि नहीं है; द्वेष के तुल्य अन्य कोई बखेड़ा नहीं है; इस देह की यातना तुल्य कोई दूसरी यातना नहीं है। शान्ति सरीखा सुख नहीं है!

२०३-सब रोगों में क्षुधा महा रोग है ! (जिसकी सहायता से बार बार जन्म मरण होता है) संस्कार छूटना बड़ा कठिन है ! यथार्थ जानना यही निर्वाण, यही परम सुख है।

२०४—आरोग्यताही उत्तम पुरस्कार और समाधानही श्रेष्ठ धन है! निश्चयही अति उत्तम भाई बन्द और निर्वाणही सर्वोत्तम-श्रेष्ठ सुख है!

२०५-जिसने शास्त्रामृत पान किया है, एकान्त और शान्ति की मधुरता का अनुभव लिया है; वह भय और पाप से मुक्त हो जाता है!

२०६—आर्यों का दर्शन शुभ है, उनका समागम आनन्द देने वाला है। जिस मनुष्य ने मूर्ख का दर्शन नहीं किया वह यथार्थ में सुखी होगा।

२०७–मूर्ख के साथ थोड़ी देर भी रहने से दुःख होता है। शत्रु मिलन तुल्य मूर्ख का मिलना भी बिलकुल दुःखदाई होता है। इष्ट मित्रों के मिलने से जैसा आनन्द होता है ज्ञानी के मिलने से वैसाही आनन्द होता है।

२०८–जिस प्रकार चन्द्रमा नक्षत्रों के आगे चलता है; उसी प्रकार जो बुद्धिमान, ज्ञानी, बहुश्रुत, सहनशील, कार्यदक्ष, सत्पुरुष हैं उनके पीछे चलो!

सुख वर्ग समाप्त।

१६–प्रिय वर्ग।

२०९–जो अपना कर्तव्य कर्म भुला कर प्रिय वस्तु के लिये दौड़ता है, अभिमान करता है और ध्यान करना छोड़ देता है; वह अन्त में उसकी जो ध्यान में सदैव निमग्न रहता है स्पर्धा करता है।

२१०–यह अच्छा यह बुरा–इसकी ओर मनुष्य को अधिक ध्यान न देना चाहिए। अत्यन्त प्रिय वस्तु न देखने से मनुष्य को दुःख होता है और उसे देखने पर सुख होता है।

२११–मनुष्य को किसी वस्तु की कामना न करनी चाहिए। प्रिय वस्तु का नाश दुःख का मूल है। जो किसी वस्तु की कामना नहीं करता अथवा किसी वस्तु का तिरस्कार नहीं करता; वह बन्धन से मुक्त होता है।

२१२–प्रेम से शोक उत्पन्न होता है, प्रेम से भय उत्पन्न होता है; जो प्रेम बन्धन से मुक्त हैं, उनको शोक नहीं होता और न उन को भय होता है।

२१३–ममता से शोक उत्पन्न होता है, ममता से भय उत्पन्न होता है; जो ममता से अलग रहते हैं, उन्हें शोक नहीं होता और न उन्हें भय मालूम होता है।

२१४–आसक्त होने से शोक होता है, आसक्त होने से भय होता है; जो आसक्त नहीं होते, उनको शोक और भय नहीं होता।

२१५–काम से शोक उत्पन्न होता है, काम से भय उत्पन्न होता है; जो काम से छूट जाते हैं, उनको शोक और भय नहीं होता।

२१६–तृष्णा से शोक उत्पन्न होता है, तृष्णा से भय उत्पन्न होता है; जो तृष्णा से छूट जाते हैं, उनको शोक और भय नहीं होता।

२१७–जो सद्गुणी, ज्ञानी, न्यायी, सत्यवक्ता और स्वकर्तव्य-रत हैं, उनके ऊपर लोग प्रीति करते हैं।

२१८–अकथनीय जो निर्वाण अवस्था है उसकी प्रीति विषयक जिसको पूर्ण इच्छा उत्पन्न हुई, जो मन से तृप्त होकर काम में आसक्त नहीं हुआ; उसको "उर्ध्वस्रोत" (उन्नति दशा में पहुँचने वाला) कहते हैं।

२१९–अधिक दूर की यात्रा करके, बहुत दिनों बाद, जो मनुष्य अच्छी तरह घर लौट आया; उसको देखकर, इष्ट, मित्र, स्नेही, और भाई बन्द सब लोग नमस्कार करते हैं।

२२०–जिस प्रकार इष्ट, मित्र अपने मित्र के लौट आने पर आदर सत्कार करते हैं, उसी प्रकार जिसने अच्छे कर्म किए हैं वह मनुष्य इस लोक से परलोक जाने बाद उसके अच्छे कर्म उसका (दोनों लोक में) आदर सत्कार कराते हैं।

प्रिय वर्ग समाप्त।

१७–क्रोध वर्ग।

२२१–मनुष्य को क्रोध त्यागना चाहिए, अभिमान छोड़ना चाहिए; सारे बन्धनों से मुक्त होना चाहिए। जो विरक्त हैं और रूप रंग में आसक्त नहीं हैं उनको दुःख नहीं होता।

२२२–दौड़ते हुए रथ के तुल्य जल्द उत्पन्न होनेवाले क्रोध को जो रोकता है वही सच्चा सारथी है। दूसरे लोग जो सारथी हुए भी, तो वे केवल बाग साधनेवाले हैं।

२२३–राग का पराजय प्रेम की सहायता से करो। अच्छे

कर्म करो, बुरों की ओर ध्यान भी मत दो। लालची को दान से और असत्य बोलनेवाले को सत्य से जीतो।

२२४-सत्य बोलो, क्रोध कभी मत करो। किसी ने कुछ माँगा तो वह उसे दो। इन तीनों साधनों से तुम देव के पास पहुँचोगे।

२२५-जो हिंसा नहीं करते और इन्द्रिय दमन करते हैं, वे सत्पुरुष ऐसे अचल स्थान में (निर्वाण) जहाँ बिलकुल दुःख नहीं है पहुँच जाते हैं।

२२६-जो सदैव सावधान रहता है, रात दिन अध्ययन करता है और निर्वाण प्राप्ति के लिये प्रयत्न करता है उसकी तृष्णा क्षय हो जाती है।

२२७-जो मौन रहता है उसको लोग बुरा कहते हैं, जो बहुत बोलता है उसको भी लोग बुरा कहते हैं; और जो थोड़ा बोलता है उसे भी लोग बुरा कहते हैं। इस प्रकार जगत में कोई नहीं जिसको लोग बुरा न कहते हों। हे अतुला * ! यह कहावत आजकल की नहीं बल्कि बहुत पुरानी है।

२२८-जिसकी सदैव निन्दा अथवा स्तुति होती है ऐसे मनुष्य इस संसार में न हुए हैं, न होंगे और न अब हैं !

२२९-२३०-जिसके आचरण दोष रहित, जो बुद्धिमान, ज्ञानी और सद्गुणी है और जिसकी सदा स्तुति होती है ऐसे पुरुष को जम्बू नदी से निकाले हुए सोने की नाल तुल्य (?) दोष देनेवाला कौन होगा ?

२३१-क्रोध के आधीन मत हो, शरीर का निग्रह करो। कायिक दोषों का त्याग करके शरीर से सदाचरण करो।

२३२-क्रोध आने पर जिह्वा को अपने वश में रक्खो। जिह्वा का निग्रह करो। वाचिक दोषों का त्याग करके वचन द्वारा पुण्याचरण करो।

२३३-मनःक्षोभ मत करो, मन का निग्रह करो। मानसिक पापों को छोड़ कर मन द्वारा पुण्याचरण करो।

---

* अतुला गौतम बुद्ध के एक शिष्य का नाम है।

२३४-जिन्होंने काया, वाचा और मन का निग्रह किया है वे ही सच्चे त्यागी, ज्ञानी और महात्मा हैं।

क्रोध वर्ग समाप्त।

१८ मल वर्ग।

२३५-अब तुम पके पात तुल्य हो गए हो, यमदूत तुम्हारे पास आनाही चाहते हैं; मौत के दरवाज़े पर तुम खड़े हो; परन्तु इस यात्रा के लिये तुम्हारे पास कुछ सामान नहीं है।

२३६-तुम अपनी रक्षा के लिये क़िला तय्यार करो; बहुत परिश्रम करो और बुद्धिमान बनो। जब तुम्हारे भीतर का मैल धुल जायगा और तुम पापों से मुक्त होगे तब तुम दिव्य लोक में श्रेष्ठ लोगों की तरह जा सकोगे।

२३७-तुम्हारी उमर अधिक हो गई और अब तुम मौत के बिलकुल समीप आगए हो, तुम्हारे लिये न तो अब कोई रक्षित स्थान है और न तुम्हारे पास यात्रा के लिये पूरा पूरा सामान है!

२३८-अपनी रक्षा के लिये द्वीप तय्यार करो और अधिक परिश्रम करके बुद्धिमान बनो; जिससे तुम्हारे अन्तःकरण का मैल धुल जाय और तुम दोष रहित हो; इससे तुम को जन्म और जरा अवस्था प्राप्त न होगी।

२३९-जिस प्रकार सुनार सोने या चाँदी का मैल दूर करता है उसी प्रकार तुम ज्ञान द्वारा अपने अन्तःकरण का मैल धीरे धीरे थोड़ा थोड़ा पल पल पर निकाल कर फेंकते जाओ।

२४०-लोहे से पैदा होनेवाला जंग यदि एक बार वस्तु पर जम जाता है तो वह उसे खा जाता है; इसी प्रकार जो सन्मार्ग का उल्लंघन करता है उसके कर्म उसको दुर्गति में ले जाते हैं।

२४१-ध्यान का मल अनभ्यास है, घर का मल अव्यवस्था है, शरीर का मल आलस्य है और पहरेवाले का मल असावधानता है।

२४२–स्त्रियों का कलंक बुरा व्यवहार है और लोभ, दानी का कलंक है। दुराचरण इस लोक और परलोक दोनों में कलंकित करता है।

२४३–परन्तु इन सब मलों में एक बहुतही बुरा मल है अर्थात् अविद्या अथवा अज्ञान। सन्यासियो! तुम इस मल को दूर करके निर्मल बनो।

२४४–जो केवल कव्वा–दूसरों का घातक, अपमान कारक, चाण्डाल और निर्लज्ज है ऐसे मनुष्यों का जीवन सहज है।

२४५–जो विनय, शील, और पवित्रता की ओर ध्यान देने वाला; निष्काम, शान्त, निष्कलंक और होशियार है ऐसे मनुष्यों का जीवन कठिन होता है।

२४६–जो हिंसा करते, असत्य बोलते, दूसरों की वस्तु का अपहरण करते हैं, पर दारा के पास जाते हैं वे-

२४७–और जो मद्य पीने में सदैव निमग्न रहते हैं वे इस लोक में अपने हाथ से अपने पैर में कुल्हाड़ी मारते हैं।

२४८–हे मनुष्यो! जिन लोगों की वासनाएं बुरी हैं उनकी दशा शोचनीय है। हे मन! लोभ और दुराचरण तुझे दुःख से नहीं निकाल सकते, इस बात का विचार कर!

२४९–लोग, अपनी इच्छा और श्रद्धानुसार धर्म करते हैं, जो लोग दूसरों के अभ्युदय को देख कर जलते हैं उनको रात दिन शान्ति नहीं मिलती!

२५०–जो उपरोक्त भाव का नाश कर देते हैं (अर्थात् दूसरों की उन्नति देखकर नहीं जलते हैं) उनको रात दिन शान्ति रहती है।

२५१–विषय वासना के तुल्य अग्नि नहीं है, द्वेष के तुल्य मगर (ग्राह) नहीं है, माया के तुल्य बन्धन नहीं है और तृष्णा के तुल्य नगर नहीं है।

२५२-दूसरों के दोष सहजही में दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु अपने दोष देखना अति कठिन है; मनुष्य दूसरों के दोष भूसी के

तुल्य फटक कर निकाल लेता है परन्तु जिस प्रकार झूठा बदमाश आदमी अपना जाल दूसरों पर फैलाकर छिपाता है उसी प्रकार मनुष्य अपने दोषों को संसार से छिपाते हैं।

२५३—जो मनुष्य दूसरों के दोष देखता और सदैव क्रोध करता है, उसके मनोविकार सदैव बढ़ते जाते हैं और फिर उनसे उसका छुटकारा नहीं होता।

२५४—वायु में रास्ता नहीं है। बाहरी कर्मों से मनुष्य 'शमन' नहीं होता। मनुष्य को प्रपञ्च में आनन्द मिलता है, जो तथागत (बुद्ध) हैं वे प्रपञ्चों से मुक्त रहते हैं।

२५५-वायु में रास्ता नहीं है। बाहरी कर्मों से मनुष्य 'शमन' नहीं होता। प्राणी नित्य शान्त नहीं हैं परन्तु जो बुद्ध हैं उनके संस्कार नहीं हैं।

मल वर्ग समाप्त।

१९-धर्मशील वर्ग।

२५६—२५७-जो ज़बरदस्ती किसी बात का पता लगाता है वह धर्मशील नहीं है; जो सत्य द्वारा छान बीन करता है, जो विद्वान होकर बलात्कार नहीं, वरन् धर्म द्वारा लोगों का अगुआ बनता है; जो धर्म रक्षक और बुद्धिमान है, उसको धर्मशील कहते हैं।

२५८—अधिक बोलने से कोई पण्डित नहीं होता, जो सहनशील, भय और द्वेष से रहित है; उसीको पण्डित कहते हैं।

२५९—थोड़ा बोलने से मनुष्य धर्मशील नहीं होता, जिसने धर्म का अध्ययन थोड़ा भी किया हो परन्तु जो धर्माचरण करता हो और धर्म का कभी अनादर न करे, वही सच्चा धर्मशील है।

२६०—बाल सफ़ेद हो जाने से मनुष्य वृद्ध नहीं होता। उस की आयु बहुत होगई है, वह विचारा व्यर्थ बूढ़ा हुआ ऐसा कहते हैं।

२६१—जो सत्य धर्म, सद्गुण, प्रेम, संयत इत्यादि गुणों से भूषित और दोष रहित, ज्ञानी है उसको वृद्ध कहते हैं।

२६२—जो परसंतापी, लोभी और अविश्वासी है, वह यदि

अधिक बातें करे अथवा वह गोरापीरा हो तो भी वह श्रेष्ठ और सर्वमान्य नहीं हो सकता।

२६३—जिसमें उपरोक्त दूषण नहीं हैं या जिसके उपरोक्त दोषों का नाश हो गया है, उसे द्वेष रहित और ज्ञानी होने पर लोग श्रेष्ठ और सर्वमान्य कहते हैं।

२६४—जो अशिक्षित और असत्य बोलने वाला है, यदि उसने सिर मुंडवा लिया तो भी वह 'शमन' नहीं होसकता। तृष्णा और लोभ के बन्धन में जब तक बद्ध है तब तक क्या वह 'शमन' हो सकेगा?

२६५—पाप छोटा हो अथवा बड़ा उसको जो दमन करता है उसे शान्तचित्त कहते हैं; क्योंकि उसने सारे पापों को दमन कर लिया है।

२६६—जो दूसरे से भिक्षा मांगता है वह भिक्षुक (सन्यासी) नहीं होता; जो केवल भीखही माँगता है वह भिक्षुक (सन्यासी) नहीं है। जो सम्पूर्ण धर्माचरण करता है वही सन्यासी है।

२६७—जो पाप पुण्य से रहित अथवा गुणातीत है, जो शुद्ध है, और इसी लोक में, ज्ञान से, काल को जीत लेता है; उसीको सच्चा सन्यासी कहते हैं।

२६८—२६९-जो मूढ़ और अविद्वान है, यदि वह मौन भी रहे तो भी वह मुनि नहीं होता। जो ज्ञानी तराज़ू लेकर अच्छा एक पलड़े में रख लेता और बुरा दूसरे पलड़े में रखकर फेंक देता है उसीको मुनि कहते हैं। इस प्रकार के जो मुनि होते हैं वे तराज़ू के दोनों पलड़ो पर ध्यान रखते हैं और वेही सच्चे मुनि कहलाते हैं।

२७०—जो मनुष्य प्राणियों की हिंसा करता है वह आर्य (श्रेष्ठ) नहीं है। जो सारे प्राणियों पर दया भाव रखता है उसही को यह 'आर्य' पद प्राप्त होता है।

२७१—२७२-शिक्षा, व्रत, बहुत सुनने, और समाधी लगाने से जो सुख प्राप्त नहीं होता; और जो सांसारिक विषयों में फँसे हुए लोगों को कदापि अनुभव नहीं होता, वह सुख मुझे मिले ऐसी वृथा कल्पना, हे सन्यासियो! जबतक तुम वासनाओं का नाश न करलो कभी मत करो।

धर्मशील वर्ग समाप्त।

२०—मार्ग वर्ग ।

२७३—सारे मार्गों में अष्टांग मार्ग श्रेष्ठ, सत्य में चार वाक्य श्रेष्ठ, * सद्गुणों में वैराग्य श्रेष्ठ और मनुष्य में नेत्र श्रेष्ठ है ।

२७४—बुद्धि शुद्ध करने का यही (उपरोक्त वर्णित मार्ग है, इसके सिवाय कोई दूसरा मार्ग नहीं । इसी मार्ग का अवलम्बन करो। इसी की सहायता से कामदेव पराजित होगा ।

२७५—इस मार्ग पर जाने से तुम्हारे दुःखों का नाश होगा । शोक किस प्रकार दूर हो सकेगा , यह समझने के बाद , मैंने इस मार्ग का ज्ञान पाया है ।

२७६—तुम को स्वयं प्रयत्न करना चाहिए । तथागत (बुद्ध) केवल उपदेशक होते हैं । जो विचारवान पुरुष इस मार्ग का सहारा लेता है वह कामदेव के बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।

२७७—" सारी बनावटी चीजों का नाश होता है " यह जो जानता है और मन में विचारता है वह दुःख भोगने में सहनशील हो जाता है । यही निर्मल होने का मार्ग है ।

२७८—"सारा चराचर जगत दुःख और शोकमय है," जो यह जानता और मन में विचारता है, वह दुःख भोगने में सहनशील हो जाता है । यही निर्मल होने का मार्ग है ।

२७९—" सारे धर्म (मत) असत्य हैं, " जो यह जानता है और मन में विचारता है वह दुःख भोगने में सहनशील हो जाता है।

२८०—जो युवा निरोगी होकर सबेरे नहीं उठता, जो आलस्य में डूबा हुआ है, जिसके संकल्प और विचार निर्बल हैं; उस आलसी मनुष्य को ज्ञान मार्ग कभी नहीं मिलता ।

२८१—मनुष्य को अपनी जिह्वा रोककर, मन को स्थिर करके, शरीर से बुरे आचरण न करना चाहिए । इन्हीं तीन मार्गों पर चलने से तुमको मुनि का उपदेश किया हुआ मार्ग सहजही प्राप्त हो जायगा ।

२८२—विश्वाससे ज्ञान की वृद्धि और अविश्वास से उसका क्षय होता है । ज्ञान की वृद्धि और क्षय इन दोनों को जान लेने पर जिस मार्ग

---

* अष्टांग मार्ग और चार वाक्यों का विवरण बुद्ध वर्ग के पद १९१ में दिया हुआ है ।

से ज्ञान की वृद्धि हो उसी मार्ग का मनुष्य को अवलम्बन करना चाहिए।

२८३—तृष्णारूपी वन में से एकही पेड़ न काटकर, सारे वन को ही काट डालो! तृष्णा से भय उत्पन्न होता है। तृष्णा रूपी वन को काट डालने पर हे सन्यासियो! तुम मुक्त होगे।

२८४—जब तक पुरुष स्त्रियों में थोड़ा भी आसक्त रहते हैं तब तक उनका मन स्त्रियों के अधीन उसी प्रकार रहता है जिस प्रकार दूध पीनेवाला बच्चा अपनी माँ के सहारे रहता है।

२८५—जिस प्रकार शरद ऋतु में कमल निकलता है उसी प्रकार तू अपना स्नेह अपने आप निकाल डाल! शान्ति के मार्ग का अवलम्बन कर! सुगत (बुद्ध) ने निर्वाण को प्रगट किया है।

२८६ "मैं वर्षा ऋतु में यहाँ रहूँगा, जाड़े और गर्मी में वहाँ रहूँगा"—ऐसा मूर्ख मनुष्य विचारते हैं, परन्तु वे अपने मरने का बिलकुल विचार नहीं करते।

२८७—जिस प्रकार रात में सोते हुए गाँव के लोगों को नदी बहा लेजाती है उसी प्रकार जो स्त्री, बालकों और गाय भैंसों की आशक्ति में प्रसिद्ध है और जिसका मन केवल उसीमें लगा है उस मनुष्य को मृत्यु आकर लेजाती है।

२८८ एक बार मृत्यु आने पर फिर मां बाप, पुत्र और इष्ट मित्र कोई नहीं सहाय होते।

२८९—जो बुद्धिमान सज्जन पुरुष इसका तात्पर्य समझते हैं वे निर्वाण का जो रास्ता है उसको शीघ्र सुधारलें।

मार्ग वर्ग समाप्त।

२१—प्रकीर्ण वर्ग।

२९०—यदि थोड़ा सुख त्याग करने से अधिक सुख प्राप्त हो तो ज्ञानी उस अल्प सुख को छोड़कर अधिक सुख प्राप्ति की इच्छा करे।

२९१–जो दूसरों को दुःख देकर अपने सुख की इच्छा करता है वह द्वेष की शृङ्खला में बद्ध होने के कारण द्वेष से कभी नहीं छूटता।

२९२–जिसका करना उचित है उसको नहीं करता और जिस का करना अनुचित है उसको करता है; ऐसे अविचारी दुष्ट मनुष्य की वासनाएं सदैव बढ़ती जाती हैं।

२९३–परन्तु जो सदैव सावधान रहता है, अकर्तव्य कर्म नहीं करता और कर्तव्य की ओर ध्यान रखता है; ऐसे बुद्धिमान, चतुर मनुष्य की वासनाओं का नाश हो जाता है।

२९४–सच्चे ब्राह्मण ने यदि माता, पिता और दो बलवान राजाओं को मारडाला और राज्य की सारी प्रजा का नाश कर दिया है तो भी उसको उसके बदले में कुछ भी दण्ड नहीं!

२९५–किसी सच्चे ब्राह्मण ने यदि माता पिता, दो श्रोत्रिय राजाओं और एक दो मनुष्यों को मारडाला तो उसको उसके बदले कुछ भी दण्ड नहीं!

२९६–गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और उनके चित्त सदैव बुद्ध में लगे रहते हैं।

२९७–गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और उनके चित्त रात दिन धर्म में लगे रहते हैं।

२९८–गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और उनके चित्त रात दिन संघ के स्थान में लगे रहते हैं।

२९९–गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और उनके चित्त सदैव रात दिन अपने शरीर के लिये लगे रहते हैं। (अर्थात् शरीर से सदाचरण हो दुराचरण न हो)।

३००–गौमत (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और वे रात दिन प्राणियों पर दया रखते हैं, इससे उनको आनन्द मिलता है।

३०१–गौतम (बुद्ध) के अनुयायी सदैव सावधान रहते हैं और वे रात दिन ध्यान में मग्न रहते हैं, इससे उनको आनन्द प्राप्त होता है।

३०२—(साधु होने के लिये) संसार छोड़ना अति कठिन है, संसार में रहकर उपभोग करना कठिन है, मठ में रहना दुर्घट है, संसार में रहना भी दुर्घट है। जो अपने बराबर के हैं उनके साथ रहना दुःखदाई है, घूमनेवाला सन्यासी भी दुःख सागर में डूबता है। इस कारण कोई केवल भिक्षा के लिये भटकता न फिरे; ऐसा करने से उसे कभी दुःख न होगा।

३०३—जो श्रद्धायुक्त, सदाचारी, प्रतापी और परिपूर्ण है वह जहाँ जाता है वहीं उसका मान होता है।

३०४—बर्फ से घिरे हुए पर्वत के तुल्य साधु का प्रकाश दूर तक पड़ता है। परन्तु जो असाधु हैं वे रात में छोड़े हुए तीर के तुल्य किसी को नहीं दिखाई देते।

३०५—वन में रहने के तुल्य जो सदैव अकेला रहता है, अकेला ही सोता है और अपने आपको जीतता है; उसको आकांक्षा त्याग की उत्तमता प्राप्त होती है।

प्रकीर्ण वर्ग समाप्त।

२२—नरक वर्ग।

३०६—कुछ नहीं हुआ और जो कहता है कि हुआ वह नरक में जाता है। कोई काम किया और कहता है कि नहीं किया वह भी नरक को जाता है। उन दोनों की मरने के बाद पापी होने के कारण एक सी दशा होती है।

३०७—ऐसे आदमी जिन्होंने गेरुए वस्त्र पहर लिए हैं परन्तु दुराचारी और स्वेच्छाचारी हैं; वे पापी लोग अपने बुरे कर्मों के कारण नरक में जाते हैं।

३०८—दुराचारी मनुष्य को भिक्षा मांगकर पेट भरने की अपेक्षा खूब गरम, जलते हुए अंगार तुल्य, लोहे का गोला खा लेना अच्छा है।

३०९—जो अदूरदर्शी मनुष्य, पर स्त्री की अभिलाषा करता है उसको (१) अपकीर्ति (२) निद्रा नाश करनेवाली बेचैनी (३) दण्ड और पीछे (४) नरक यातना, इस प्रकार चार फल मिलते हैं।

३१०–पर स्त्री पाने के लिये कभी बुरा विचार मन में न लाओ; क्योंकि इससे मनुष्य की अपकीर्ति होती है और वह कुमार्गी नरक में जाता है। जो भयभीत हैं उनको समागम में बहुतही थोड़ा सुख प्राप्त होता है और इसके अतिरिक्त राजा उनको दण्ड भी देता है।

३११–जिस प्रकार कुश को उल्टी ओर पकड़ने से अपने हाथ से अपनी अङ्गुली चिर जाती है उसी प्रकार सन्यास व्रत अच्छी तरह न पालने पर मनुष्य नरक में जाता है।

३१२–बिना विचारे काम करना, व्रत तोड़ना और शिक्षानुकूल आचरण न करना, इससे फल प्राप्त नहीं होता।

३१३–जो काम करने योग्य है उसको करो और उत्साहपूर्वक उसके पीछे पड़ जाओ। बिना सोचे विचारे काम करनेवाला सन्यासी इच्छा रूपी धूल अधिक उड़ाता है।

३१४–बुरा काम न करना अच्छा है, क्योंकि उसके करने से मनुष्य को पीछे पश्चात्ताप होता है। भला काम करना अच्छा है, क्योंकि उसके करने से मनुष्य को पश्चात्ताप नहीं होता।

३१५–जिस प्रकार राज्य की हद के पास किले बनाकर और उनके रक्षणार्थ चारों ओर खाई खोद कर उन्हें दृढ़ करते हैं; उसी प्रकार मनुष्य अपना संरक्षण करे। समय को वृथा न खोवे। जो लोग समय को वृथा खोते हैं वे नरक में जाकर दुःख पाते हैं।

३१६–जिस विषय में लज्जा करने का कोई कारण नहीं उसमें जो लज्जा करते हैं और जिस विषय में लज्जा है उसमें लज्जा नहीं करते हैं वे लोग असत्य तत्व का अवलम्बन करने से कुमार्ग में जाते हैं।

३१७–जिस बात के करने में भय का कोई कारण नहीं उससे जो भय खाते हैं और जिस बात से भय करना चाहिए उससे भय नहीं करते; ऐसे असत्य मत का अवलम्बन करने वाले लोगों की दुर्गति होती है।

३१८–जो निषिद्ध नहीं है उसका निषेध करते हैं और जिसका करना निषिद्ध है उसका निषेध नहीं करते; ऐसे असत्य मत को स्वीकार करने वाले लोगों की दुर्दशा होती है।

३१९–जो लोग ठीक ठीक यह जानते हैं कि अमुक का निषेध है और अमुक का निषेध नहीं है; वे लोग सत्य मत को स्वीकार करने के कारण सद्गति को पाते हैं।

नरक वर्ग समाप्त।

२३–नाग (हाथी) वर्ग।

३२०–जिस प्रकार लड़ाई में हाथी धनुष के बाण सहन करता है उसी प्रकार मैं जाड़ों में निन्दा सहन करता हूं क्योंकि यह संसार दुष्ट स्वभाव का है।

३२१–पालतू हाथी लड़ाई पर जाते हैं, पालतू हाथी के ऊपर राजा चढ़ते हैं। जो शान्ति के साथ निन्दा का सहन करता है, जिसने इन्द्रिय दमन किया है वह मनुष्यों में उत्तम है।

३२२–सिंध के पालतू घोड़े उत्तम, मोटी सूड़ के पालतू हाथी उत्तम, पालतू खच्चर उत्तम, परन्तु जो अपने आपको पालता है अर्थात् जिसने अपने आपका त्याग कर दिया है वह इन सबों की अपेक्षा अधिक उत्तम है।

३२३–जहां यह प्राणी मनुष्य की सहायता से नहीं जा सकता वहां वह मनुष्य कामना रहित पुरुष की सहायता से जा सकता है।

३२४–जो मदोन्मत्त-मद मानो उसके कंठ से टपकता है-और जिसका पकड़ना अति कठिन है ऐसे 'धनपालक' नामी हाथी को यदि पकड़कर बांध लिया तो वह घास को नहीं खाता, वह अपने घने वन की चिन्ता करता रहता है।

३२५–यदि मनुष्य गवांर और मूर्ख हुआ और उसपर वह सुस्त और आलसी हुआ तो वह मूर्ख जूठा खानेवाले सुअर के तुल्य बार-बार जन्म पाता है।

३२६–यह मेरा मन इधर उधर जहां इसे अच्छा लगता है मारा मारा फिरता है परन्तु जिस प्रकार फ़ीलबान मतवाले हाथी को अंकुश द्वारा वश में रखता है उसी प्रकार मैं अब इस अपने मन को अच्छी तरह वश में रक्खूंगा।

३२७—चतुर मनुष्य अपने विचारों को छिपाकर रखता है। कीच में फंसा हुआ हाथी जिस प्रकार अपने आपका छुटकारा कर लेता है उसी प्रकार तुम अपने तई कुमार्गों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करो।

३२८—यदि किसी मनुष्य की भेंट, संयमी, चतुर और सदाचारी पुरुष से हो गई तो वह सारे संकटों से छूट कर आनन्द पाता है। परन्तु (शर्त यह है कि) उसको भी नियम पर चलना और सदाचारी होना चाहिए।

३२९—जिस प्रकार जीता हुआ राज्य पीछे छोड़कर राजा अकेला आगे बढ़ता है, वन में हाथी अकेला चलता है, उसी प्रकार यदि किसी मनुष्य को नियम पर चलनेवाला, चतुर और जितेन्द्रिय पुरुष न मिले तो उसको अकेलेही चलना चाहिए।

३३०—अकेले रहना अच्छा है परन्तु मूर्ख से मित्रता करना अच्छा नहीं। जिस प्रकार जङ्गल में हाथी अकेला घूमता है उसी प्रकार मनुष्य को अकेले विचरना चाहिए। दुराचरण कभी न करना चाहिए। थोड़े में ही संतोषी रहना अच्छा है।

३३१—समय आने पर मित्र सुखकारी···मरते समय सत्कृत्य सुखकारी और सारे दुःखों का त्याग सुखकारी है।

३३२—संसार में माता का रहना सुखदाई, पिता का रहना सुखदाई, जो शान्त हैं उनका रहना सुखदाई और ब्राह्मणों का रहना सुखदाई है!

हाथी वर्ग समाप्त।

२४—तृष्णा वर्ग।

३३३—अविचारी मनुष्य की तृष्णा बेल के तुल्य बढ़ती जाती है। जंगल में फल ढूंढ़ने के लिये बन्दर जिस प्रकार इधर से उधर घूमता फिरता है उसी प्रकार अविचारी मनुष्य अनेक जन्म पाता है।

३३४—प्रबल और विषयुक्त तृष्णा को जो, जीत लेता है उसका भोक्तृत्व खस नामक घास के तुल्य अधिक बढ़ता है।

३३५—इस भयंकर तृष्णा को जिसका जीतना इस लोक में अति कठिन है जो जीत लेता है उसके पास दुःख इस प्रकार नहीं ठहरते जिस प्रकार कमल के पत्ते पर पानी नहीं ठहरता ।

३३६--मैं तुम्हारे हित की कहता हूं। जिसको उशिर * नामक सुगन्धित जड़ चाहिए वह जिस प्रकार खस घास को खोदकर निकालते हैं अथवा जिस प्रकार नदी का प्रवाह झाऊ के पेड़ों को दबा लेता है; उसी प्रकार कामदेव तुमको न दबाले। जो तुमने इकट्ठा किया है उन सब वासनाओं की जड़ को खोद कर फेंक दो।

३३७—जब तक वृक्ष की जड़ मज़बूत रहती है तब तक वह पेड़ सुरक्षित रहता है और उसमें से शाखाएं फूटतीं, वह बढ़ता, फलता और फूलता है; उसी तरह जब तक तृष्णा का मूल से नाश नहीं होता तब तक ऐहिक दुःख बार बार होते हैं।

३३८—जिसकी तृष्णा बलवती होकर छत्तीसों दिशाओं में सुखोपभोग की ओर दौड़ती है और जिसकी इच्छा विषय वासनाओं में फँसी है, ऐसे विषयाँध मनुष्य को वह लकड़ी के तुल्य (नदी में) बहा लेजाती है।

३३९—इस प्रवाह का पाट बहुत चौड़ा है और इसके किनारे विषय वासना रूपी वृक्ष का अङ्कुर ऊगता है और वह वृक्ष बढ़ता है; यदि ये बातें तुम्हारे ध्यान में आजावें तो तुम ज्ञान के सहारे से इसकी जड़ का नाश कर डालो।

३४०—प्राणियों के विषय सुख बहुत हैं और वह विलास से भरे हुए हैं। विषय भोग में मस्त होकर जिनको सुख की लालसा है वे लोग जन्म मृत्यु के भँवर में पड़कर चक्कर खाया करते हैं।

३४१—तृष्णा की बेड़ी पहने हुए लोग खरहे के तुल्य जाल में फँसे हुए इधर से उधर घूमते हैं। तृष्णा के बंधनों में बंधे हुए वे बारम्बार अति दुःख पाते हैं।

३४२—तृष्णा में फंसे हुए लोग खरहे के तुल्य जाल में फंसे हुए इधर उधर घूमते हैं। विरक्त होने के लिये सन्यासी संयम से तृष्णा का नाश करें।

---

* उशिर एक सुगंधित घास का नाम है। सम्भव है खसकड़ से तात्पर्य हो।

३४३–जो तृष्णा से मुक्त होकर फिर तृष्णा के आधीन होता है और जो तृष्णा से निकलकर फिर तृष्णा में आ कर फंसता है उस मनुष्य की ओर देखो! मुक्त होकर फिर वह बन्दी गृह में आकर गिरता है।*

३४४–लोह, लकड़ी अथवा सूत की बेड़ियों को बुद्धिमान बन्धन नहीं मानते परन्तु जो बाल, बच्चे, स्त्री, रत्न, आभूषण इत्यादि में आसक्त हैं वे इन बेड़ियों का बन्धन अति कठिन मानते हैं।

३४५–दुर्गति में जाना तो सहज है परन्तु उससे निकलना अति कठिन है। ऐसे बंधन को ज्ञानी लोग दृढ बंधन कहते हैं। इस वासना रूपी बंधन को तोड़ कर सुखोपभोग का त्याग करके लोग विरक्त होते हैं और वे संसार से मोह छोड़ देते हैं।

३४६–अपने बनाए हुए जाले पर से मकड़ी जिस प्रकार नीचे उतरती है उसी प्रकार जो अपनी इच्छाओं का दास है वह इच्छा रूपी प्रवाह में बहकर अधोगति को पहुंचता है। इस बंधन को एक बार तोड़कर और सारे मोहों को छोड़ और विरक्त होकर ज्ञानी लोग इस संसार का त्याग करते हैं।

३४७–संसार सागर पार होने के लिये जो आगे है उसका त्याग करो, पीछे है उसका त्याग करो और जो कुछ बीच में है उसका भी त्याग करो। इस प्रकार तुम्हारा मन पूर्णमुक्त होने के कारण फिर जन्म मृत्यु के बंधन में नही पड़ेगा।

३४८–संशय आत्मा और वे जिनकी इच्छाएं प्रबल हैं, जो केवल सुख की ही इच्छा करते हैं; ऐसे मनुष्यों की तृष्णा अधिक बढ़ती जाती है और उनके बन्धन अधिक दृढ़ होते जाते हैं।

३४९–शंका का सामाधान होजाने पर जिनको संतोष मिलता है, यह सब दुःख मय है ऐसा जो देखता और विचार करता है वह अवश्यमेव कामदेव को जीत लेता है।

३५०–जो परिपूर्ण हो गया है, इच्छा और दोष से रहित हो गया है, जिसने संसार के बन्धनों को तोड़ डाला है, उसका यह अन्तिम जन्म है।

---

* वन शब्द के दो अर्थ (१) इच्छा और (२) अरण्य होने से इस पद का दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है–जो अरण्य से छुटकारा पाकर फिर अरण्य में जाता है और उस अरण्य से निकल कर फिर अरण्यवासी होता है, उस पुरुष की ओर देखो! वह मुक्त होकर फिर बन्दी गृह में आकर गिरता है।

३५१–जिसकी इच्छाओं का नाश हो गया है और जो निःसंग हो गया है, शब्दार्थ ज्ञान जिसको पूर्ण रूप से ज्ञात हो गया है जो अक्षरों के अनुक्रम को जानता है उसका यह अन्तिम जन्म है। उसको विज्ञानपुरुष, महापुरुष कहते हैं।

३५२–मैंने सब जीत लिया है, मैं सर्वज्ञ हूं, आजन्म मैं निष्कलङ्क रहा हूं, मैंने सब त्याग कर दिया और इच्छाओं का नाश करके देने के कारण मैं मुक्त हुआ हूं; मैंने सब अपने आप सीखा, इस कारण अब मैं दूसरों को कैसे सिखाऊं?

३५३–सब दानों में धर्म दान उत्तम है, सारे रसों में धर्मरस अधिक मधुर है, सारे आनन्दों में धर्म से होनेवाला आनन्द श्रेष्ठ है, सब दुःखों का नाश करने को इच्छाओं का परित्याग अच्छा है।

३५४–यदि संसार सागर पार जाने के लिये दृढ़ संकल्प नहीं किया तो सुखोपभोग मनुष्य का नाश कर देता है; सुखोपभोग की लालसा से मूर्ख मनुष्य अपने हाथों अपना नाश करता है और मानो वह अपने आप अपना वैरी है।

३५५–घास से खेत का नाश होता है, तृष्णा से मनुष्य का नाश होता है; इस कारण जो तृष्णा रहित है उसके दिए हुए दान से अधिन फल प्राप्त होता है।

३५६–घास से खेत का नाश होता है, द्वेष ही मनुष्य का नाश होता है; इस कारण जो द्वेष से रहित है उसके दिए हुए दान से अधिक फलप्राप्ति होती है।

३५७–घास से खेत का नाश होता है, मोह से मनुष्य का नाश होता है, इस कारण जो मोह रहित हो जाता है उसके दिए हुए दान से अधिक फलप्राप्ति होती है।

३५८–घास से खेत का नाश होता है, तृष्णा से मनुष्य का नाश होता है; इस कारण जिसने तृष्णा का नाश कर दिया उसके दिए हुए दान से अधिक फल मिलता है।

तृष्णा वर्ग समाप्त।

२५-सन्यासी वर्ग।

३५९-नेत्रों का संयम करना श्रेयस्कर, कानों का संयम करना श्रेयस्कर, घ्राणेन्द्रिय का संयम करना श्रेयस्कर और जिह्वा का संयम करना श्रेयस्कर है।

३६०-देह का संयम करना श्रेष्ठ, वाचा का संयम करना श्रेष्ठ, चित्त का संयम करना श्रेष्ठ और सब प्रकार का संयम करना श्रेष्ठ है। जो सन्यासी संयमी हो गया वह दुःख से छूट जाता है।

३६१-जो हाथ का संयम करता है, जो पाँव का संयम करता है, जो वचन का संयम करता है, जिसने सब प्रकार उत्तम संयम कर लिया है, जो संतोषी, स्थिरचित्त, एकान्तवासी और तृप्त है उसीको लोग सन्यासी कहते हैं।

३६२-जिस सन्यासी ने मुख का संयम कर लिया है, जो शान्ति और विवेक पूर्वक बोलता है, जो धर्म और अर्थ का उपदेश करता है उसका भाषण मधुर होता है।

३६३ जो धर्म की विवेचना करता है, धर्म से ही आनन्द पाता है, धर्म विषयक विचार करता है और धर्मानुकूल आचरण करता है वह सन्यासी सत्यधर्म से कभी पतित नहीं होता।

३६४-अपने लाभ को कभी तुच्छ मत समझो और दूसरों के लाभ होने पर कभी सन्ताप मत करो। जो सन्यासी दूसरों के लाभ पर सन्ताप करता है उसके मन को कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती।

३६५-थोड़ा लाभ होने पर भी जो संन्यासी उसको तुच्छ नहीं समझता ऐसे सदाचारी और उद्योग तत्पर संन्यासी की देवता भी स्तुति करते हैं।

३६६-जो नाम और रूपवाली किसी वस्तु से प्रीति नहीं करता और न उसके नाश होने पर कभी शोक करता है, ऐसे को सन्यासी कहते हैं।

३६७-जो दयालू और बुद्ध के उपदेशों में प्रीति करता है, ऐसा सन्यासी इच्छाओं से छूट जाता है; उसको सुख मिलता है और वह शान्ति के स्थान, निर्वाण, को प्राप्त होता है।

३६८–हे सन्यासियो! इस नौका को तुम खाली करो। खाली होने पर यह बड़े वेग से चलेगी। तृष्णा और वैर भाव को त्यागकर तुम निर्वाण तक जा सकोगे।

३६९–पाँच (पाँच इन्द्रियों) का दमन करो, इन पाँचों को त्याग दो, इन पाँचों को अंकित करो। इन पाँच बन्धनों से जो संन्यासी छूट गया उसको 'ओघ तीर्ण' नगर से पार हुआ कहते हैं।

३७०–हे सन्यासियो! असावधान मत हो। तुम (नरक में) तप्त किए हुए लोहों के गोले से दागे न जाओ और न भागकर यह कहते फिरो कि 'हाय क्या हुआ'। ऐसी नौबत कभी मत आने दो। जिससे भोग-सुख प्राप्त होता है ऐसी बातों की ओर ध्यान भी मत दो।

३७१–ज्ञान बिना ध्यान नहीं और ध्यान बिना ज्ञान नहीं। जहां ज्ञान और ध्यान दोनों हैं वहां ही निर्वाणप्राप्ति की सम्भावना है।

३७२–जिसने शून्य गृह में प्रवेश किया है, जिसका चित्त स्थिर है, जिसको धर्म का अनुभव स्पष्ट होता है, ऐसे सन्यासी को अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

३७३–'शाश्वत' ऐसा जो निर्वाण है इसके देखनेवाले को जो आनन्द और सुख मिलता है वैसा आनन्द और सुख शरीर की उत्पत्ति और नाश विषयक जिसको ज्ञान है उसको प्राप्त होता है।

३७४–इन्द्रियदमन, सन्तोष और धर्माचरण इत्यादि गुणों से भूषित होकर पवित्राचरण और निरालसी सज्जन से मित्रता करना यह बुद्धिमान सन्यासी का इस संसार में पहिला कर्तव्य है।

३७५–परोपकार और कर्तव्य कर्म में रत होने से जो आनन्द मिलेगा उससे उसके क्लेश का नाश हो जायगा।

३७६–हे सन्यासियो! जिस प्रकार वार्सिक नामक वृक्ष सूखे हुए फूलों को त्याग देता है उसी प्रकार मनुष्य को तृष्णा और वैर भाव त्याग देना चाहिए।

३७७–जो सन्यासी काया,वाचा, मनसा इन तीनों से शान्त हो गया है वही स्थिर चित्त है । संसार में जिसने आमिष का त्याग किया है उसको 'उपशान्त' कहते हैं।

३७८–हे सन्यासियो ! तुम अपने अपने प्रयत्न में लगो । स्वतः अपनी परीक्षा करो । ऐसा करने से तुम स्वयं स्वरक्षित और दक्ष होकर आनन्द पूर्वक समय बिता सकोगे ।

३७९–कारण, मनुष्य अपने आपही अपना मालिक है, अपने आपही अपने तरने का उपाय है; जिस प्रकार व्यापारी अच्छा घोड़ा अपने वश में रखता है उसी प्रकार तुम अपने आपको अपने वश में रक्खो ।

३८०–जो सन्यासी आनन्द पूर्वक रहकर बुद्ध के उपदेशों पर निश्चल भक्ति रखता है उसके संस्कारों का नाश होजाता है । उसे सुख मिलता है और निर्वाण जो शान्ति का स्थान है उसे वह प्राप्त होता है ।

३८१–जो तरुण सन्यासी बुद्ध के उपदेशामृत का रस पान करता है वह संसार में इस प्रकार प्रकाशित होता है जिस प्रकार चन्द्रमा मेघ मण्डल से निकलकर अपना प्रकाश संसार पर डालता है।

सन्यास वर्ग समाप्त ।

२६–ब्राह्मण (अर्हत) वर्ग ।

३८२–हे ब्राह्मणो ! वीरता के साथ इच्छाओं का प्रवाह रोक दो । जो जो संस्कार हुए हैं उनका नाश करना यही समझना विलक्षण है, वही तुमको समझना चाहिए ।

३८३–संयम और ध्यान इन दो गुणों द्वारा जो ब्राह्मण ज्ञानी हुआ है वह सब बंधनो से मुक्त हो जाता है ।

३८४–जिसको यह किनारा नहीं, और वह भी किनारा नहीं दोनोंही किनारे नहीं, जो अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रिय से मुक्त होगया है, जो निर्भय और निर्बद्ध मनुष्य है, उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं ।

३८५-जो विवेकशील, निर्दोष, स्थिर, कर्तव्यतत्पर और निर्विकार होकर परमार्थ साधन का उद्योग करता है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

३८६-सूर्य दिन में अपना तेज प्रगट करता है, चन्द्रमा रात में अपना प्रकाश फैलाता है, क्षत्रिय कवच को पहरने पर वीर दिखाई पड़ता है, ब्राह्मण ध्यानस्थ होने पर तेजस्वी मालूम होता है परन्तु बुद्ध अपने ही तेज से रात दिन प्रकाशित रहता है।

३८७-जो पाप रहित है उसको ब्राह्मण कहते हैं, जिसका आचरण सम है उसको 'श्रमन' कहते हैं। जिसने अपना मल दूर कर दिया उसको 'प्रव्रजित' सन्यासी कहते हैं।

३८८-किसी ब्राह्मण को मत मारो। यदि ब्राह्मण को कोई मारे तो ब्राह्मण को भी उस पर हाथ नहीं उठाना चाहिए। जो ब्राह्मण को मारता है उसको धिक्कार है! परन्तु जो ब्राह्मण मार खाने पर मारनेवाले पर हाथ उठाता है उसको सहस्रबार धिक्कार है!

३८९-जो ब्राह्मण संसार में सुखोपभोग से अपने मन का संयम करता है वह उसको अधिक हितकारी होता है। दूसरों को दुःख पहुंचाने का विचार नाश हो जाने पर अपने दुःखों का नाश स्वतः हो जाता है।

३९०-जो मन, वचन और कर्म द्वारा क्रोध नहीं करता और जिसने इन तीनों कर्मेन्द्रियों का दमन कर लिया है उसको मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूं।

३९१-बुद्ध के चलाए हुए धर्म को यदि मनुष्य एक बार अच्छे प्रकार समझ ले तो जिस प्रकार ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि की पूजा करता है उसी प्रकार वह उस धर्म को अवश्य स्वीकार करेगा।

३९२-जटा बढ़ाने से, अच्छे कुल में पैदा होने से अथवा जन्म संस्कार से मनुष्य ब्राह्मण नहीं होता। जो सत्यवादी और सच्चा है वही सुखी-वही ब्राह्मण है।

३९३-हे मूर्ख! जटा बढ़ाने से क्या लाभ? मृगचर्म धारण करने से क्या लाभ? भीतर मलीन रहकर तू अपनी बाहरी शुद्धि करता है!

३९४–जो मलीन वस्त्र ओढ़ लेता है, जिसकी सारी नसें दिखाई पड़ती हैं, जो बहुतही दुबला होगया है और जो जंगल में एकान्त वास करके ध्यान में मग्न रहता है; उसीको मैं सच्चा ब्राह्मण कहता हूं !

३९५–जन्म से अथवा अमुक माता के पेट से पैदा हुआ है, यह जानकर मैं किसी को ब्राह्मण नहीं कहता। वह यथार्थ में विद्याशून्य धनवान हो गया परन्तु जो ग़रीब, न्यायी है उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूं !

३९६–जो बंधनरहित, निर्भय, त्यागी और बंधन से मुक्त है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९७–जिसने बंधन, पाश और तत्सम्बन्धी सबका नाश कर दिया है और जो सावधान है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९८–निर्दोष होकर जो निन्दा, क़ैद और मार सहता है, क्षमाही जिसका बल और सहनशीलताही जिसकी सेना है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३९९–जिसका क्रोध शान्त होगया, जो कर्तव्यरत, सदाचारी, तृष्णारहित और जिसने इन्द्रियों को जीत लिया है उसका यह अन्तिम शरीर है। मैं ऐसेही पुरुष को ब्राह्मण कहता हूं।

४००–कमल के पत्ते पर पानी के बिन्दुवत् अथवा सुई के नकुए के तुल्य क्षणिक जो सुखभोग है उसके लिये जो लालच नहीं करता उसी को मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०१–जिसको यह प्रतीत हो गया कि इसी लोक में मेरे दुःखों का अन्त है, जिसने यह जानकर अपने दुःखों के भार को उतार डाला और जो बन्धनमुक्त हुआ उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०२–जिसका ज्ञान अगाध है, जो बुद्धिमान है; कौन मार्ग सत्य और कौन असत्य है, यह जानता है, और जो पुरुषार्थी है उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०३–गृहस्थ और संन्यासी से जो दूर रहता है, जो घर घर भीख नहीं माँगता फिरता, जिसकी इच्छाएं अल्प हैं उसीको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४०४–प्राणी दुर्बल हो अथवा बलवान हो जो उसके रास्ते पर नहीं जाता है, जो कभी हिंसा नहीं करता और न किसी से कराता है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०५–जो सहनशील नहीं हैं उनका जो सहन करते हैं, जो दोष देते हैं उनसे जो नम्र रहते हैं, जो क्रोध करते हैं उन पर जो क्रोध नहीं करते ऐसे जो सज्जन पुरुष हैं उनको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०६–जिस प्रकार सुई के नकुए से धागा निकल जाता है उसी प्रकार राग और द्वेष, गर्व और मत्सर ये जिसमें से निकल जाते हैं उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०७–जो विचार पूर्वक सत्य और मधुर भाषण करता है और किसी को दुःख नहीं देता उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०८–तुमको जो वस्तु नहीं दी गई फिर वह छोटी हो अथवा बड़ी, लम्बी हो अथवा चौड़ी, अच्छी हो अथवा बुरी जो उसको नहीं लेता उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४०९–जो इस लोक अथवा परलोक की तृष्णा नहीं करता, आशा नहीं करता और जो बन्धनमुक्त है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१०–जो स्वार्थ रहित है और सत्य प्रतीत होने पर यह कैसा और वह कैसा इत्यादि शंकायें नहीं करता और जिसको निर्वाण मालूम हो गया है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४११–जिसको न तो पुण्य है न पाप और न वह इनके बन्धनों में पड़ता है और जो रजोगुण मुक्त है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१२–जो चन्द्र तुल्य सतेज होकर पवित्र, शान्त चित्त और अव्यय है, जो दाम्भिक नहीं है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१३–इस कीच के रस्ते-दुस्तर संसार और अहंकार को जिसने त्याग दिया है और इस ससार सागर को पैर कर जो पार होगया है, जो विवेकशील, निष्कपट, निस्संदेह और संतुष्ट है; उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

३१४–जो इस लोक की सारी वासनाओं का त्याग करके और घर को छोड़ कर अकेला विचरण करता है और जिसने सारी पाप वासनाओं का परित्याग कर दिया है, उसको मैं ब्राह्मण कहता हूं।

४१५-सारी आशाओं का परित्याग करके और सन्यास लेकर जो विचरता है और जिसने सारे लोभों का परित्याग कर दिया है मैं उसको सच्चा ब्राह्मण कहता हूँ।

४१६-जो मनुष्य के बन्धनों से मुक्त होकर देवताओं के बन्धन से भी मुक्त होता है सारांश, जो सब वासनाओं से मुक्त हो जाता है मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ।

४१७-जिससे सुख होता है और जिससे दुःख होता है इस को जिसने छोड़ दिया है, जो उदास है और पुनर्जन्म के अंकुर का भी जिसने नाश कर दिया है और जिस वीर ने सारा संसार जीत लिया है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१८-जो प्राणी मात्र की होनेवाली लय और उत्पत्ति को देखता है और जो स्वतः बन्धन से मुक्त होकर सुगत (सद्गति को प्राप्त हुआ) और बुद्ध (जो दिव्यदृष्टि हो गया है) है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

४१९-जिसका मार्ग देवता, गन्धर्व और मनुष्यों को नहीं मालूम होता, जिसकी वासनाओं का नाश हो गया है और जो अर्हत (पूज्य) पद को पहुँच गया है मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ।

४२०-जो अपने आप को आगे, पीछे, मध्य किसी में नहीं कहता, जो ग़रीब है और सांसारिक वासनाओं में आसक्त नहीं है मैं उसको ब्राह्मण कहता हूँ।

४२१-जो साहसी, उदार, सूर वीर, महान् सिद्ध, विजयी और निष्कपटी है, जिसने विद्यासम्पन्न होकर अन्तर्ज्ञान पाया है मैं उस को ब्राह्मण कहता हूँ।

४२२-जिसको अपने पूर्व जन्म का ज्ञान हो गया है जिसको यह मालूम हो गया कि स्वर्ग क्या है और नर्क क्या है जो सिद्ध, ज्ञानी और परिपूर्ण हो गया है उसको मैं ब्राह्मण कहता हूँ।

ब्राह्मण वर्ग समाप्त।

समाप्त।

कल्पना का आनन्द ।

(पण्डित रामचन्द्रशुक्ल द्वारा अनुवादित ।)

पहिला प्रकरण ।

हमारी दृष्टि हमारी इन्द्रियों में सबसे अधिक पूर्ण और आनन्ददायिनी है। चित्त को अधिकांश प्रकार के भावों से यह पूर्ण करती है, दूर से दूर की वस्तुओं से बात चीत करती है और अपने नियत आनन्द के अनुभव से बिना थके और संतुष्ट हुए सबसे अधिक काल तक अपनी क्रिया में तत्पर रहती है। इसमें सन्देह नहीं कि हमारी स्पर्शेन्द्रिय हमे पदार्थों के विस्तार, रूप तथा रंग के सिवाय और अन्याय भावों का, जिनका प्रवेश नेत्रपथ से होता है, बोध करा सकती है; किन्तु साथही पदार्थों की संख्या, दूरी और उनके पिण्ड के विषय में उसकी क्रिया बहुतही संकुचित और परिमित है। हमारी दृष्टि इन सब अभावों को पूरा करने के लिये बनाई गई है। हमारा अवलोकन एक प्रकार का अधिक कोमल और प्रसृत स्पर्श है, जो अगणित वस्तु-समुदाय को अपने अन्तर्गत करता है, बृहत् से बृहद् रूपों का बोध कराता है और संसार के सबसे दूरस्थित भागों को हमारी पहुंच के भीतर लाता है।

यही इन्द्रिय है, जो कल्पना को सामग्री प्रदान करती है; इसलिये कल्पना के आनन्द से (जिसका प्रयोग इस निबन्ध में कई जगह किया जायगा) मेरा अभिप्राय उस आनन्द से है, जो दृश्य पदार्थों से प्राप्त होता है, चाहे वे पदार्थही हम लोगों के सम्मुख हों अथवा उनका रूप हम चित्र, प्रतिमा वा वर्णनों द्वारा अपने मन में लावें। निस्सन्देह हमारे चित्त में एक भी प्रतिरूप ऐसा न निकलेगा जो नेत्रों के द्वार से न गया हो; किन्तु हम लोगों को उन स्वरूपों को, जो एक बार प्राप्त हुए, धारण करने, और घटा बढ़ाकर ऐसे ऐसे रूपों में लाने की शक्ति है, जो कल्पना को सबसे अधिक प्रिय होते हैं। इसी शक्ति के प्रभाव से मनुष्य घोर कारागार में रहकर भी

ऐसे ऐसे दृश्यों की बहार ले सकता है, जो इस सम्पूर्ण भूमण्डल पर नहीं पाए जा सकते।

पाठकों को स्मरण रखना होगा कि कल्पना के आनन्द से मेरा अभिप्राय केवल उस आनन्द से है, जो दृष्टि द्वारा उत्पन्न होता है। मैं इस आनन्द को दो भागों में विभक्त करूंगा; पहिले तो मैं उस प्रथम श्रेणी के आनन्द के विषय में कहूंगा, जो सर्वथा ऐसे पदार्थों ही से उत्पन्न होता है, जो हमारे नेत्रों के सामने हैं; तदनन्तर उस द्वितीय श्रेणी के आनन्द के विषय में, जो दृश्य पदार्थों के केवल ध्यानमात्र से उत्पन्न होता है, जब कि वे पदार्थ हम लोगों की आँख के सामने नहीं रहते, वरन हमारी स्मृति में लाए जाते हैं, अथवा कल्पना द्वारा रमणीय रूपों में निर्मित किए जाते हैं।

कल्पना का आनन्द अपने पूर्ण रूप में न तो ऐसा भद्दाही है, जैसा इन्द्रियों का; और न ऐसा संस्कृतही है, जैसा विचार या विवेचना का। इस अन्तिम प्रकार (विचार) के आनन्द का साधन निस्सन्देह उत्तम है, क्योंकि उसकी स्थिति मनुष्य के किसी नवीन–प्राप्त–ज्ञान वा आत्मा की उन्नति पर रहती है। किन्तु यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि कल्पना का आनन्द भी वैसा ही बड़ा और हृदयग्राही है, एक सुन्दर दृश्य चित्त का उतनाही रञ्जन करता है, जितना एक तत्त्व का उद्घाटन; और वाल्मीकि के एक सर्ग ने गौतम के न्याय-सूत्रों की अपेक्षा अधिक पाठकों का मनोरञ्जन किया है। इसके अतिरिक्त कल्पना के आनन्द को इस अंश में विशेषता है कि यह अधिक प्रत्यक्ष होता है और अधिक सुगमता–पूर्व्वक प्राप्त किया जाता है। आँखों का खोलना है कि दृश्य प्रवेश कर जाता है। नाना रंग आपसे आप, देखनेवाले के बहुतही अल्प विचार द्वारा, कल्पना-पटल पर अंकित हो जाते हैं। हम लोग जब किसी वस्तु की ओर देखते हैं तो उसके अंग-संयोग से मोहित हो जाते हैं और तुरन्त उसके सौन्दर्य्य को, बिना इसकी जिज्ञासा किए कि उस सौन्दर्य्य का कारण क्या है, स्वीकार कर लेते हैं।

एक सहृदय मनुष्य ऐसे ऐसे आनन्दों का अनुभव करता है, जो गवार लोग स्वप्न में भी नहीं पा सकते। वह एक चित्र से वार्तालाप

कर सकता है, प्रतिमा से अपना जी बहला सकता है, वर्णनों में एक गुप्त सुख प्राप्त करता है और हरे भरे खेतों और मैदानों को केवल देखनेही में उससे अधिक संतुष्ट होता है, जितना उनका स्वामी उन पर अधिकार रखने में। जितनी वस्तु वह देखता है, उनमें उसे एक प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है और प्रकृति के सबसे बेढंगे और उजाड़ भाग भी उसके आनन्द में सहायता पहुंचाते हैं। वह संसार को एक दूसरेही रूप में देखता है, और उसमें बहुत सी सुन्दर वस्तुओं का पता लगाता है, जो जन-साधारण की दृष्टि से छिपी रहती हैं।

बहुत कम ऐसे लोग निकलेंगे जो, निरुद्यम (काहिल) रह कर भी पापशून्य हों, या जो ऐसे आनन्द के लोलुप हों, जो पाप न हो। उद्यम के पथ से जहां एक पग भी वे भटके, तहां बुराई वा मूर्खता में जा फँसते हैं; इसलिये मनुष्य को चाहिए कि वह अपने दोष-रहित आनन्द की सीमा को, जहां तक संभव हो, बढ़ाता रहे, जिसमें वह समय पड़ने पर निर्भयता-पूर्व्वक उसका आश्रय ले सके और उससे इस प्रकार का सुख प्राप्त करे, जैसा एक बुद्धिमान पुरुष को उचित है। इस प्रकार का आनन्द कल्पनाही का है, जो न तो वचार की ऐसी प्रवृत्तिही की आवश्यकता रखता है, जो हमारे और कार्य्यों में दरकार होती है; और न चित्त को ऐसी काहिली और बेपरवाही में पड़ने देता है, जो इन्द्रियों के आनन्द में लीन होने से उत्पन्न होती हैं। यह शक्तियों को एक प्रकार का बहुतही मधुर परिश्रम देता है, जो बिना किसी कष्ट और कठिनता के, उन को निरुद्यमता वा आलस्य से उठाकर सचेत करता है।

यहां पर हमें यह भी कह देना चाहिए कि कल्पना का आनन्द, विचार वा विवेचना के आनन्द से, जिसमें मस्तिष्क को बड़ा कठिन परिश्रम पड़ता है, अधिक स्वास्थ्यकर है। सुन्दर दृश्य, चाहे वे प्रकृति में हों, चाहे चित्र वा काव्य में, शरीर और मन, दोनों पर बहुत उत्तम प्रभाव डालते हैं, और न कि केवल कल्पनाही को शुद्ध और कान्तिमयी करते हैं; वरन शोक और विषाद का भी नाश करते हैं और मनुष्य की नस नस में सुख और शान्ति का सञ्चार करते

हैं। इसी कारण बेकन (Bacon) ने अपने 'स्वास्थ्य' शीर्षक निबन्ध में अपने पाठकों को सुन्दर काव्य अथवा दृश्य के अवलोकन की सम्मति देना उपयुक्त विचारा। जहां पर उसने जटिल और पेचीले विषयों की ओर मन देने का निषेध किया है, वहीं पर ऐसी पुस्तकों के अध्ययन की भी सम्मति दी है, जो चित्त को सुन्दर और रमणीय वस्तुओं से पूर्ण करती हैं,-जैसे इतिहास, आख्यान और प्राकृतिक वर्णन इत्यादि।

मैंने भूमिका की भाँति कल्पना के उस आनन्द का, जो इस समय हमारे इस निबन्ध का आलोच्य विषय है, लक्षण निर्धारित कर दिया और बहुत विचार करके इस आनन्द को प्राप्त करने की सम्मति अपने पाठकों को दी। मैं अब दूसरे प्रकरण में उन विविध मूलों की परीक्षा करूँगा, जिनसे ये आनन्द उत्पन्न होते हैं।

दूसरा प्रकरण।

प्रथम श्रेणी का आनन्द।

मैं पहिले कल्पना के उस प्रथम श्रेणी के आनन्द पर विचार करूंगा, जो पदार्थों के वास्तविक अवलोकन और निरीक्षण से प्राप्त होता है। मेरी समझ में यह आनन्द किसी ऐसी वस्तु के देखने से उत्पन्न होता है, जो **बड़ी, असाधारण** और **सुन्दर** होती है। इसमें सन्देह नहीं और संभव है कि कोई बात ऐसी भयावक अथवा घृणित देख पड़े कि किसी पदार्थ से उत्पन्न भय वा घृणा उस आनन्द से बढ़ जाय, जो उसकी बड़ाई, असाधारणता और सौन्दर्य्य से प्राप्त होता है; किन्तु उस घृणा में भी, जो उत्पन्न होगी, आनन्द का ऐसा मिश्रण रहेगा कि हमें जान पड़ेगा, जैसे इन्हीं तीनों उपर्युक्त गुणों में से किसी एक गुण की मात्रा अधिक हो गई है।

बड़ाई—बड़ाई से मेरा तात्पर्य्य किसी एक पदार्थ के पिण्ड से नहीं है, किन्तु समस्त दृश्य को एक अकेला खण्ड मान कर उस की

बड़ाई से है। जैसे एक खुले हुए बराबर मैदान का दृश्य, विस्तृत ऊसर रेगिस्तान, विपुल पर्वतराशि, ऊंची ऊंची चट्टानें और समुद्र का अपार जलविस्तार इत्यादि। इनको देखकर हम इनके सौन्दर्य्य वा असाधारणत्व से आकर्षित नहीं होते, वरन उस बेढंगे चमत्कार से, जो प्रकृति की इन विशाल रचनाओं में पाया जाता है। हमारी कल्पना ऐसी वस्तुओं से पूर्ण होना तथा ऐसे पदार्थों को ग्रहण करना चाहती है जो उसमें समा न सकें। ऐसे विस्तृत और असीम दृश्यों से हम लोग एक आनन्दमय आश्चर्य्य में डूब जाते हैं और हमारी आत्मा उनका ध्यान करके एक प्रकार की मनोरञ्जक निस्तब्धता का अनुभव करती है। मनुष्य का चित्त स्वभावतः ऐसी वस्तुओं से घृणा करता है, जो उस पर किसी प्रकार की रुकावट डालती हैं। जब कि दृष्टि किसी संकीर्ण स्थान में बँधी रहती और चारो ओर पहाड़ी और ऊंची ऊंची दीवारों से घिरी रहती है, उस समय वह अपने को कारागार में समझती है। इसके प्रतिकूल, एक विस्तीर्ण क्षितिज स्वाधीनता का स्वरूप है, जहां पर उसको बहुत दूर तक विचरने, निसर्ग के आधिक्य से चमत्कृत होने, तथा उन अनेक प्रकार के पदार्थों में, जो उसके सामने पड़ते हैं, लीन होने के लिये पूरा स्थान मिलता है। ऐसे विस्तृत और असीम दृश्य हमारी कल्पना को वैसेही आनन्ददायक हैं, जैसे नित्य और अनन्त विषयक विवेचना, बुद्धि या विचार को। किन्तु यदि इस विशालता के साथ असाधारणत्व और सौन्दर्य्य का भी संयोग हो जाता है,—जैसे ज्वारभाटे के सहित समुद्र में, सुन्दर तारों से विभूषित आकाश में तथा नदी, वन और पहाड़ों में विभक्त एक विस्तीर्ण भूमि में,—तो हमारा आनन्द और भी बढ़ जाता है; क्योंकि तब वह एक से अधिक सिद्धान्तों के अनुसार उत्पन्न होता है।

प्रत्येक वस्तु, जो नवीन वा असाधारण होती है, इस कारण कल्पना में आनन्द उपजाती है कि आत्मा को वह रमणीय आश्चर्य्य से पूर्ण करती है, उसके कौतूहल को सन्तुष्ट करती है, और उसको एक ऐसा भाव प्रदान करती है जो पहिले उसको प्राप्त न था। यथार्थ में हम लोग एकही प्रकार के पदार्थों से इतने परिचित हो जाते हैं और उन्हीं वस्तुओं को बार बार देखते देखते इतने

ऊब जाते हैं कि जो कुछ उनमें नयापन वा असाधारणत्व होता है, वह मानव-जीवन के परिवर्तन करने में और अपनी अद्भुतता से चित्त को आकर्षित करने में बहुत कम योग देने लगता है। अस्तु।

असाधारणता—यही (नवीनता वा असाधारणता) हमारे आनन्द को ताज़ः करती रहती है, यही भयानक वस्तुओं को भी मनोहरता प्रदान करती है और यही प्रकृति के कार्यों की अपूर्णता को भी हमारे लिये आनन्द-दायिनी बनाती है। यही हममें भिन्न भिन्न प्रकार की वस्तुओं के लिये रुचि उत्पन्न करती है, जिससे हमारा चित्त प्रत्येक क्षण किसी नई वस्तु की ओर जाता रहता है और हमारे ध्यान को किसी पदार्थविशेष पर अधिक काल तक स्थिर रहकर अपनी मिट्टी नहीं ख़राब करती। यही उन वस्तुओं की भी, जो बड़ी और सुन्दर होती हैं, शोभावृद्धि करती है और उन्हें हमारे चित्त को दूना आनन्द प्रदान करने में समर्थ करती है। उदाहरणार्थ, जैसे बग़ीचे, खेत और चरागाह, यों तो सब ऋतुओं में देखने में सुखद होते हैं, किन्तु ऐसे मनोरञ्जक कभी नहीं होते, जैसे बसंत ऋतु के आरंभ में, जब कि वे सम्पूर्ण नए और ताज़े रहते हैं और हमारे नेत्र भी उनसे बहुत परिचित और अभ्यस्त नहीं रहते। इसी कारण से कोई वस्तु स्थल को इतना सुहावना नहीं बनाती है, जितना नदी, दरी और झरने; जहां पर कि दृश्य सदैव बदलता रहता और प्रत्येक क्षण दृष्टि को ऐसी वस्तु से रञ्जित करता रहता है, जो नई होती है। हम लोग पहाड़ियों और घाटियों को देखने से बहुत शीघ्र ऊब जाते हैं, जहां पर प्रत्येक वस्तु एक ही स्थान पर एक ही अवस्था में स्थिर रहती है; किन्तु ऐसे पदार्थों के अवलोकन से हमारा चित्त प्रफुल्लित और उत्तेजित होता है, जो सर्वदा चलायमान रहते हैं और देखनेवाले की आंख के सामने से होकर गमन करते रहते हैं।

सुन्दरता—किन्तु कोई वस्तु चित्त में इतनी नहीं धँसती, जितनी सुन्दरता; जो कि तुरंत एक गुप्त सुख और आनन्द की कल्पना में फैला देती है और जो वस्तु विशाल और असाधारण होती हैं, उनको सम्पूर्णता प्रदान करती है। इसको देखतेही चित्त आन्तरिक प्रसन्नता से पूर्ण हो जाता है और उसकी समस्त क्रियाएँ आनन्दमय

हो जाती हैं। सच पूछिए तो किसी एक पदार्थ में दूसरे की अपेक्षा विशेष कोई वास्तविक सुन्दरता वा कुरूपता नहीं होती; क्योंकि संभव है कि हम लोग ऐसे स्वभाव के बनाए जाते कि जो वस्तु हमें अब घृणित जान पड़ती है, वही तब रुचिकर प्रतीत होती। किन्तु अनुभव द्वारा हम देखते हैं कि पदार्थों में कुछ ऐसे परिवर्त्तन होते हैं, जिनको चित्त, बिना किसी विचार के, देखने के साथही सुन्दर वा कुरूप कह देता है। ऐसेही हम देखते हैं कि प्रत्येक प्रकार का जीव सुन्दरता का अपना पृथक् पृथक् लक्षण रखता है और उनमें से प्रत्येक अपनेही वर्ग की सुन्दरता से सबसे अधिक आकर्षित होता है। यह बात एक ही रंग और आकारवाले पक्षियों के बीच प्रत्यक्ष देखी जाती है जहां पर नर अपने ही वर्ग की मादा के साथ आनन्द पाता है, और दूसरे वर्ग के पक्षियों में कोई बात सुन्दरता की नहीं देखता।

एक दूसरे प्रकार की सुन्दरता है, जो हम प्रकृति तथा शिल्प के निर्माणों में देखते हैं। यह, कल्पना पर उस शक्ति के साथ तो प्रभाव नहीं डालती, जैसा अपने वर्ग की सुन्दरता, किन्तु तिसपर भी यह हममें आन्तरिक प्रसन्नता तथा उन वस्तुओं और स्थानों से, जिनमें हम उसको देखते हैं, एक प्रकार का प्रेम उपजाती है। यह सुन्दरता रंगो के विभेद और चमत्कार में, खंडों की योजना और उनके प्रमाण में, पदार्थों के संविधान और गठन में अथवा इन सबके उपयुक्त मिश्रण में होती है। इन कई प्रकार के सौन्दर्य्यों में रंग ही नेत्र को सबसे अधिक आनन्ददायक होता है। प्रकृति में हम कोई भी ऐसा चमत्कृत और मनोहर दृश्य नहीं देखते, जैसा कि सूर्य्य के उदय और अस्त के समय आकाश-मण्डल में; जब कि प्रकाश के रंग बिरंग के छोटे भिन्न भिन्न आकार और स्थिति के बादलों पर दिखलाई पड़ते हैं। इसीसे कवि लोग, जो कि सर्वदा कल्पना ही को संबोधन करते हैं, बहुधा और वस्तुओं की अपेक्षा रंग ही से अपनी उपमाएं अधिक लेते हैं।

जिस प्रकार कल्पना प्रत्येक ऐसी वस्तु को देख, जो बड़ी, असाधारण और सुन्दर होती है, प्रफुल्लित होती है और जितना ही

इन सब गुणों को एकही वस्तु में एकत्र पाती है, उतना ही और अधिक आनन्दित होती है, उसी प्रकार यदि बीच में कोई दूसरी इन्द्रिय (आँख के सिवाय) भी सहयता दे देती है तो उसको एक नया सुख प्राप्त होने लगता है। जैसे कोई लगातार नाद,—जैसे पक्षियों का कलरव, पानी गिरने का शब्द इत्यादि,—प्रत्येक क्षण देखनेवाले के चित्त को उत्तेजित करता है और उस स्थल की सुन्दरता की ओर, जो उसके सामने है, उसको और भी अधिक आकर्षित कर देता है; वैसे, यदि उस स्थान पर भीनी भीनी सुगंध भी आने लगती है तो वह कल्पना के आनन्द को और भी अधिक बढ़ा देती और सम्मुख-स्थित दृश्य की हरियाली और उसके रंगों को और भी रोचक बना देती है; क्योंकि दोनों इन्द्रियों (चक्षु और घ्राण) के अनुभव एक दूसरे का अनुमोदन करते और एक साथ उत्पन्न होने से चित्त में पृथक् पृथक् प्रविष्ट होने की अपेक्षा अधिक आनन्द देते हैं; उसी प्रकार जैसे किसी चित्र के बहुत से रंग, जब उनका व्यवहार उत्तमता-पूर्व्वक किया जाता है, एक दूसरे के विकाश करते और अपनी स्थिति के कारण और भी शोभा प्राप्त करते हैं।

तीसरा प्रकरण।

यद्यपि हमने पीछले प्रकरण में यह विचार स्थिर किया कि किस प्रकार प्रत्येक वस्तु जो बड़ी, नवीन, वा सुन्दर होती है कल्पना को आनन्दित करती है तथापि हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि हमलोगों के लिये इस आनन्द का कोई वास्तविक कारण बतलाना असम्भव है क्योंकि न तो हम भावना ही के स्वभाव के विषय में कुछ जानते हैं और न मनुष्य की आत्मा ही के तत्त्व के विषय में, जो कि हमें इस बात के अनुसन्धान में सहायता पहुंचाता कि एक में कौन सी बात दूसरी की रुचि के अनुकूल अथवा प्रतिकूल होती है। इसलिये इस ज्ञान के बिना जो कुछ हम कर सकते हैं, वह

इतना ही है कि आत्मा की उन क्रियाओं पर विचार करें; जो सबसे अधिक प्रिय होती हैं और जो बातें चित्त को प्रसन्न और अप्रसन्न करनेवाली होती हैं, उनको एक दूसरे से पृथक करें, बिना उन मूल कारणों का अन्वेषण किए हुए, जिनसे यह प्रसन्नता उत्पन्न होती है।

अन्तिम कारण (आदि नहीं) हम लोगों की विचार-दृष्टि को अधिक प्रत्यक्ष होते हैं, क्योंकि एक ही कार्य्य के अन्तर्गत वे कई एक होते हैं। ये यद्यपि उतने संतोषदायक नहीं होते, पर दूसरे (मूल) से अधिक काम के होते हैं, क्योंकि ये हमें सृष्टिकर्त्ता की बुद्धि और दया की प्रशंसा करने का अधिक अवसर देते हैं।

किसी बड़ी वस्तु के देखने से जो हमें आनन्द होता है, उसका एक अन्तिम कारण यह भी हो सकता है कि जगदीश्वर ने मनुष्य की आत्मा को ऐसा बनाया है कि उस सच्चिदानन्द के अतिरिक्त और कोई वस्तु उसके चरम और वास्तविक आनन्द का कारण नहीं हो सकती। हमारे आनन्द का अधिकांश उसी सर्व-व्यापक के अस्तित्व का ध्यान करने में है, जिसमें वह हमारी आत्मा में ऐसे ध्यान के लिए रुचि उत्पन्न करे; इसीलिए उसने उसको स्वभावत: ऐसी वस्तुओं के चिन्तन में आनन्द दिया है, जो विशाल और असीम होती हैं। हमारी प्रशंसा, जो कि हमारे चित्त की एक बहुत आनन्द-दायिनी क्रिया है, तुरन्त ऐसी वस्तु के ध्यान से जागृत हो जाती है, जो कल्पना में बहुत सा स्थान छेकती है; अत: जब हम उस परमेश्वर के महत्व का ध्यान करते हैं, जिसके लिए न तो काल और स्थान का कोई बन्धन है और न जिसको जीव-धारियों की प्रौढ़ से प्रौढ़ शक्तियां अनुमान कर सकती हैं, तो यही प्रशंसा बढ़ते बढ़ते प्रगाढ़ आश्चर्य्य और भक्ति के रूप में परिणत हो जाती है।

परमेश्वर ने उन वस्तुओं के ध्यान में, जो नवीन वा असाधारण होती हैं, इस कारण आनन्द रख दिया है, जिसमें वह हमें ज्ञान-प्राप्ति के लिए उत्तेजित करे और अपनी सृष्टि की अद्भुत अद्भुत वस्तुओं को ढूढ़ने में हमें लगावे; क्योंकि हर एक नई बात में एक ऐसा आनन्द भरा रहता है, जो उस कष्ट का, जो उसके प्राप्त करने

के हेतु उठाना पड़ता है, पुरस्कार स्वरूप हो जाता है और इस प्रकार हमारे नई नई वस्तुओं के अन्वेषण का कारण होता है।

उसने उन वस्तुओं को, जो हमारे वर्ग में सुन्दर होती हैं, इस कारण आनन्द-दायिनी बनाया है, जिसमें समस्त जीवधारी अपने अपने वर्ग की वृद्धि करने में तत्पर हों और संसार को निवासियों से पूर्ण करें; क्योंकि यह बात ध्यान देने योग्य है कि यदि प्राकृतिक नियम के विरुद्ध कोई राक्षस उत्पन्न हो जाता है (जो दुष्ट संयोग से होता है) तो वह अपने अनुरूप जीव उत्पन्न करने और एक नए प्रकार की सृष्टि चलाने में सर्वथा असमर्थ होता है। सो यदि समस्त जीव अपने ही वर्ग के सौन्दर्य्य से आकर्षित न हों तो उत्पत्ति का अन्त हो जाय और पृथ्वी मानवशून्य हो जाय।

अन्त में उसने, और और वस्तुओं में जो सुन्दरता होती है, उसको आनन्द-कारक बनाया है; अथवा यों कहिए कि इतने अधिक पदार्थों को हमारी दृष्टि में सुन्दर करके दिखलाया है, जिसमें वह अपनी सृष्टि को विशेष सुहावनी और रमणीय बनावे। उसने हमारे चारों ओर की प्रायः समस्त वस्तुओं को कल्पना में रुचिकर भावना उत्पन्न करने की शक्ति दी है, इसलिए हमलोगों के लिए यह असम्भव है कि उसके कार्य्यों को बेपरवाही अथवा अश्रद्धा से देखें और बिना आन्तरिक सुख और प्रमोद के अनेक प्रकार की सुन्दर वस्तुओं का अवलोकन करें। यदि हम पदार्थों को उनके यथार्थ रूप और गति में देखें तो नेत्रों के लिए यह एक अत्यन्त तुच्छ दृश्य होगा; और ये पदार्थ हमारे चित्त में जो ऐसे ऐसे भाव उत्पन्न करते हैं, जो उनके अंग में स्थित किसी वस्तु से सर्वथा भिन्न होते हैं (जैसे प्रकाश और रंग) इसका हम और क्या कारण दे सकते हैं। सिवाय इसके कि सृष्टि को आभूषणों से विभूषित करने और कल्पना के निकट उसको अधिक रोचक बनाने के लिए ही ऐसा होता है। हम अपने चारों ओर सुन्दर दृश्य और छाया देखते हैं, हम पृथ्वी और आकाश में काल्पनिक चमत्कार देखते हैं, और सम्पूर्ण सृष्टि पर इस अलौकिक सौन्दर्य्य, धारा का प्रवाह देखते हैं; किन्तु प्रकृति के कैसे भद्दे और उजाड़ दृश्य से हमारे नेत्रों का सत्कार किया जायगा, यदि उसके

समस्त रंग लोप हो जायँ और आलोक और छाया के नाना भेद जाते रहें ! जैसे हमारी आत्मा इस समय आनन्दमय स्वप्न में डूबी और चकित सी है और हम चारो ओर इस प्रकार घूमते हैं, जैसे किसी तिलस्मी कहानी का नायक, जो सुन्दर सुन्दर हर्म्य, बन, नदी और हरे भरे मैदान देखता है और साथही पक्षियों का कलरव और झरनों का मधुर कलकल सुनता है, कि इतने ही में सहसा जादू के उस पर से हट जाने से वह स्वप्नवत् दृश्य खंडित हो जाता है और वह अपने को एक ऊसर भूमि अथवा निर्जन रेगिस्तान में खड़ा पाता है । संभव है कि आत्मा शरीर से वियोग होने के उपरान्त प्रथम इसी प्रकार की किसी अवस्था में रहती हो और द्रव्यों को ऐसे ही रूप में देखती हो, किन्तु रंग का ध्यान कल्पना में ऐसा सुहावना और प्रिय है कि यह भी संभव है कि आत्मा उससे रहित न की जाती हो, वरन जैसे इस समय सूक्ष्मपदार्थ (Ether) के चक्षुरिन्द्रिय पर नाना आघातों से यह ध्यान उत्पन्न होता है, वैसे ही तब और किसी सामयिक कारणों द्वारा यह उत्तेजित किया जाता हो !

मैंने यहां पर यह मान लिया है कि पाठक उस बड़े आविष्कार से जान कार हैं, जो इस समय विज्ञान के समस्त अन्वेषियों द्वारा स्वीकृत किया गया है, अर्थात् प्रकाश और रंग जैसे कल्पना को बोध होते हैं, केवल चित्त में एक प्रकार की भावना मात्र हैं, वे पदार्थों में स्थित कोई गुण नहीं हैं । यह बात बहुत से आधुनिक तत्वज्ञों द्वारा सिद्ध की गई है और वास्तव में इस विद्या के अत्यन्त चमत्कारक रहस्यो में से है ।

चौथा प्रकरण ।

यदि हम प्रकृति और शिल्प के निर्माणों के मनुष्य की कल्पना को सुख देने के गुण पर विचार करें तो हम दूसरे को पहिले की अपेक्षा अधिक हीन पावेंगे, क्योंकि यद्यपि वे कभी कभी वैसेही सुन्दर और अद्भुत देख पड़ते हैं, किन्तु उनमें वह विस्तार और आधिक्य नहीं होता, जो देखनेवाले के चित्त को इतना अधिक

रुचिकर होता है। शिल्प की रचना वैसीही बारीक और कोमल होसकती है, जैसी प्रकृति की; किन्तु बनावट में वह वैसी विशाल और प्रभावशालिनी नहीं हो सकती। प्रकृति की बेपरवाही के और बेढंगे कामों में शिल्प की बारीकी और काट छांट की अपेक्षा कोई बात अधिक महत्त्व और निपुणता की पाई जाती है। किसी एक बड़े हर्म्य और उद्यान की शोभा का विस्तार एक बहुतही संकीर्ण स्थान के बीच होता है; ध्यान उसपर से शीघ्रता से दौड़ जाता है और सन्तुष्ट होने के लिए किसी और वस्तु की आवश्यकता रखता है; किन्तु प्रकृति के विस्तीर्ण क्षेत्रों में दृष्टि बिना किसी बन्धन के नीचे ऊपर भ्रमण करती है और बिना किसी नियमित संख्या और सीमा के न जाने कितने प्रकार के स्वरूपों का आनन्द लेती है। इसी कारण से हम देखते हैं कि कविजन सदैव ग्रामीण-जीवन को पसन्द करते हैं, जहां पर प्रकृति अपनी पूर्णता को प्राप्त रहती है और ऐसे ऐसे दृश्य प्रदान करती है, जो कल्पना को सबसे अधिक आह्लादकारक होते हैं।

परन्तु, यद्यपि बहुत से नैसर्गिक बेढंगे दृश्य बनावटी दृश्यों से अधिक मनोरञ्जक होते हैं, तथापि प्रकृति के कार्य्यों को उसी हिसाब से और भी अधिक आनन्ददायक पाते हैं, जितना ही वे मनुष्य की कारीगरी से समानता रखते हैं; क्योंकि तब हमारी प्रसन्नता दो सिद्धान्तों से उत्पन्न होती है,—अर्थात् एक तो पदार्थों ही की रुचिरता से और दूसरे उनके अन्य पदार्थों के सादृश्य से। हम पदार्थों की सुन्दरता का परस्पर मिलान करने से उतनेही प्रसन्न होते हैं, जितना उनको अवलोकन करने से; और उनमें से जिसको चाहते हैं, उसको अपने चित्त में मूल अथवा छाया मानकर धारण करते हैं। इसीसे हम किसी ऐसे स्थान को देख, जो भले प्रकार अलङ्कृत होताहै और खेतों, हरे भरे मैदानों, बन और नदियों में विभक्त होता है, प्रसन्न होते हैं। स्फटिक (संगमर्मर) की खान के दरारों में पेड़, नगर और बादलों के दृश्य, जो कभी कभी निर्मित मिलते हैं, चट्टानों और विवरों में उभड़े हुए चित्र विचित्र स्वरूप, तथा वे समस्त वस्तुएं, जिनमें ऐसे भेद और क्रम होते हैं, जो मनुष्य

की कारीगरी से मिलते जुलते हैं और जिनको हम दैवी रचना कहते हैं, हमारे चित्त को आनन्द से पूर्ण करते हैं।

यदि प्रकृति की रचना की शोभा, जितनी ही वह शिल्प से समानता रखती है, उतनीही अधिक बढ़ जाती है, तो यह निश्चय है कि शिल्प के निर्माण प्रकृति के निर्माणों से समानता रखने से और भी अधिक प्रतिष्ठा लाभ करते हैं, क्योंकि यहां पर न कि केवल सादृश्य ही आनन्दप्रद है, वरन मूल विशेष पूर्ण रहता है। सबसे उत्तम दृश्य जो मैंने आज तक देखा, वह एक परदे पर, जिसमें एक बड़ी नदी और एक उपवन का दृश्य एक साथ खींचा गया था। उसमें नदी के जल की ऊंची नीची तरंगे उपयुक्त और चमकीले रंगों में दिखाई गई थीं; एक ओर से एक नाव धीरे धीरे पानी पर चल रही थी; किनारे पर उपवन के पेड़ों की हरी हरी पत्तियां हवा लगने से हिल रही थीं, जिनकी छाया नदी के जल में जाकर पड़ती थी, एक ओर हरिनों का एक झुंड भी कूदता हुआ दिखाया गया था। मैं स्वीकार करता हूं कि ऐसे दृश्य की नवीनता कल्पना की प्रसन्नता का एक कारण हो सकती है, किन्तु यथार्थ में इसका मुख्य कारण उसकी प्रकृति से समानता है, क्योंकि यहां पर, और चित्रों की भांति, हम केवल रंग और आकारही नहीं दरसाया हुआ पाते हैं, वरन उन पदार्थों की गति भी, जो चित्रित किए गए हैं।

हम पहिले कह चुके हैं कि प्रकृति में शिल्प की विचित्रता की अपेक्षा कोई बात अधिक प्रभावशालिनी और भव्य होती है। अतएव जब हम किसी अंश में इसका अनुकरण देखते हैं तो वह हमको उसकी अपेक्षा अधिक शुद्ध और ऊंचे प्रकार का आनन्द देता है, जो हम शिल्प के बारीक और सुडौल स्वरूपों से प्राप्त करते हैं। यही कारण है, जिससे इंगलैण्ड के बगीचे ऐसे मनोरञ्जक नहीं होते, जैसे फ्रांस और इटली के; जहां पर हम भूमि का बहुत सा भाग उद्यान और जंगल के रमणीय मिश्रण से आच्छादित पाते हैं, जो कि सर्वत्र एक कृत्रिम बेढंगेपन का दृश्य सामने उपस्थित करता है और उस सफ़ाई और सजावट की अपेक्षा अधिक मनोहर होता है, जो इंगलैण्ड में देखी जाती है। निसन्देह देश के ऐसे भागों में, जहां

बस्ती बहुत घनी और खेती की उपज बहुत अधिक है, इसका परिणाम सर्वसाधारण के लिये बुरा और व्यवसायी लोगों के कम लाभ का होगा कि इतनी भूमि खेती और चरागाह से निकालकर अलग करें; किन्तु ऐसा क्यों न किया जाय कि जगह जगह पर पेड़ लगाकर समस्त भूमि की भूमि एक प्रकार का उद्यान बना डाली जाय, जिसमें उसके स्वामी को उतनाही लाभ पहुंचेगा, जितना आनन्द। एक दलदल (ताल) जिसमें बेत उगे हों, और एक पहाड़, जो देवदार के वृक्षों से आच्छादित हो, ख़ाली ठूंठे रहने की अपेक्षा, न कि केवल अधिक सुन्दरही हैं, वरन आयवर्द्धक। अनाज के खेत बहुत सुहावने लगते हैं, पर यदि कहीं उनके बीच की मेड़ों पर थोड़ा और ध्यान दिया जाय और चरागाहों की स्वाभाविक बूटेकारी मनुष्य की कारीगरी द्वारा कुछ और प्रवर्द्धित कर दी जाय और उनके चारों ओर ऐसे फूल पौधों की टट्टियां कई पंक्तियों में लगा दी जायँ, जो उस भूमि में उत्पन्न हो सकते है, तो मनुष्य अपनीही सम्पत्ति को एक मनोहर और रमणीय स्थल बना सकता है।

भ्रमणकार, जिन्होंने चीन देश के विषय में लिखा है, कहते हैं कि उस देश के निवासी यूरोपियनों की बगीचा लगाने की प्रणाली पर हंसते हैं, जिसमें कि सीधी सीधी लकीरों का प्रयोग होता है; क्योंकि वे कहते हैं कि कोई भी मनुष्य पेड़ों को सीधी बराबर पंक्तियों में रख सकता है; वे अपना गुण उपरोक्त प्रकार के ही कामों में दिखाते हैं; और इसलिए वे उस शैली को, जिसपर वे चलते हैं, सदा छिपाए रहते हैं। जान पड़ता है कि वे अपनी भाषा में कोई ऐसा शब्द रखते हैं, जिससे वे बगीचे की उस सुन्दरता को प्रगट करते हैं, जो देखते ही तत्काल कल्पना को लुभा लेती है, यद्यपि वे यह नहीं जानते कि वास्तव में वह कौन सी वस्तु है, जो इतना मनोहर प्रभाव डालती है। अंग्रेजी माली, इसके विपरीत, प्रकृति का अनुकरण करने के स्थान पर, जहां तक संभव होता है, उससे दूर ही रहते हैं। वहांके वृक्ष गावदुम, वृत्ताकार, और त्रिभुजाकार बनाए जाते हैं। प्रत्येक पौधे और झाड़ी पर हम कैंची का चिन्ह लगा हुआ पाते हैं। मैं नहीं जानता कि मेरी यह सम्मति विलक्षण हो, पर मैं तो एक

वृक्ष को अपनी डालियों और पत्तियों के पूर्ण विकाश और विस्तार में देखना, उसका अपेक्षा, जब कि वह काट छांट कर रेखागणित की एक शकल बना दिया जाता है, अधिक पसन्द करता हूं और समझता हूं कि फूलों का एक साधारण उपवन मालियों के गोलम्बरों और कियारियों की सजावट से कहीं बढ़ कर सुन्दर दिखलाई पड़ता है।

पांचवां प्रकरण।

मैंने पहिले यह दिखलाया कि प्रकृति की रचना का कल्पना पर कैसा प्रभाव पड़ता है; तदुपरान्त साधारणतः प्रकृति और शिल्प दोनों के निर्माणों पर भी विचार किया कि किस प्रकार ऐसे दृश्यों को उपस्थित करने में, जो देखनेवाले के चित्त को सबसे अधिक प्रसन्न करते हैं, वे एक दूसरे की सहायता करते हैं। अब मैं यहां पर उस कला-विशेष पर कुछ विचार करूंगा, जो तत्काल ही कल्पना में उस प्रथम श्रेणी के आनन्द को उत्पन्न कर देती है, जो हमारे इस लेख का विषय है। यह कला भवननिर्माण करने की है, जिसकी आलोचना मैं पूर्वकथित विचारों ही की दृष्टि से करूंगा; बिना उन नियमों और सूत्रों का उल्लेख किए हुए, जिनको इस कला के बड़े बड़े आचार्य्यों ने स्वरचित इस विषय के अनेक ग्रंथों में बड़ी लम्बी चौड़ी व्याख्या के साथ निर्धारित किया है।

किसी इमारत की बड़ाई या तो उसके विस्तार किम्वा शरीर के संबंध में होती है; अथवा उसकी रचना-प्रणाली के संबंध में। पहिली बात में तो हम प्राचीनों को-विशेषतः पूर्वीय जातियों को-आधुनिक लोगों की अपेक्षा कहीं बढ़ा चढ़ा पाते हैं।

बाबेल की लाट की बात जाने दीजिए, जिसके विषय में एक प्राचीन ग्रंथकार लिखता है कि उसके समय में उसकी नींव दिखाई देती थी, जो कि चौड़े चौड़े पहाड़ों की भांति प्रतीत होती थी। आप ऐसे विशाल निर्माणों की ओर देखिए, जैसे बेबिलन की दीवार। वहां की छत पर के उद्यान और **ज्यूपिटर बेलस** का वृहन्मंदिर, जो एक

मील ऊंचा था, अर्थात प्रत्येक मरातिब एक एक फरलांग की ऊंचाई का था, जिन सबके ऊपर बेबिलन का मानमन्दिर था। मुझे यहां पर उस भारी चट्टान का भी उल्लेख कर देना चाहिए, जो सम्पूर्ण काट कर सेमिरमिस रानी की प्रतिमा के रूप में बना डाली गई था; और उसके आस पास की चट्टानों का भी, जो आधीन राजाओं के रूप में खड़ी थी; तथा उस आश्चर्य्यमय कृत्रिम ताल का भी, जो समस्त इफ़रात के जल को तब तक धारण किए रहा, जब तक कि उस नदी के जल के बहाने के निमित्त नई नहरें नहीं बनाई गईं। मैं जानता हूं कि बहुत से लोग ऐसे हैं, जो शिल्प के ऐसे अद्भुत कार्य्यों को कहानी समझते हैं; किन्तु मुझे तो इस प्रकार के सन्देह का कोई कारण नहीं देख पड़ता, सिवाय इसके कि हम लोगों के बीच इस समय ऐसे कोई उदाहरण नहीं हैं। उस काल में पृथ्वी के उन भागों में इमारत बनाने में बहुत सी सुगमताएं थी, जो तब से आज तक कभी कहीं प्राप्त नहीं हुईं। पृथ्वी फलदार वृक्षों से भरीपूरी थी, लोग बहुधा भेड़ इत्यादि पाल कर निर्वाह करते थे, जिसमें कि खेती की अपेक्षा कम मनुष्यों की आवश्यकता होती थी। मनुष्यों के एक बड़े समूह को काम में लगाए रखने के लिए तब बहुत से व्यवसाय और व्यापार नहीं थे, विचारशील पुरुषों को लीन होने के लिए तब कला और विज्ञान के नाना विभाग नहीं थे; और इन सब से बढ़कर तो बात यह थी कि राजा सर्वथा स्वाधीन था; इसलिए जब वह लड़ाई पर जाता था तो वह अपनी सारी प्रजा को अपने साथ ले लेता था। सेमिरमिस तीस लाख आदमियों को साथ ले रणक्षेत्र में गई, पर तिस पर भी अपने शत्रुओं की संख्या से उसने हार खाई। अतएव कोई आश्चर्य्य की बात नहीं कि जब शान्ति स्थापित हुई और उसने अपना ध्यान इमारतों की ओर झुकाया तो ऐसे ऐसे अद्भुत और विशाल भवन, जिनमें असंख्य मज़दूर लगते थे, बना कर खड़े कर दिए गए। इसके अतिरिक्त वहां का जलवायु ऐसा था कि घनघोर जाड़ा और कुहिरा, जिसके कारण पाश्चात्य मज़दूरों को वर्ष में छः महीने बैठे रहना पड़ता है, कोई विघ्न नहीं करते थे। मैं जलवायु की सुगमताओं में उस बात का भी उल्लेख किया चाहता

हूं, जो पृथ्वी के विषय में इतिहासकारों ने लिखा है कि उसमें से एक प्रकार का स्वाभाविक गारा पसीज कर निकलता था, जो कि वही है, जिसका **बाबेल** के निर्माण में व्यवहार होना बाइबिल में वर्णित है,-"वे गारे के स्थान पर लसीली मिट्टी काम में लाते थे"।

मिस्र देश में अब तक हम इन प्राचीनों के स्तूप पाते हैं, जो उन वर्णनों के सर्वथा अनुकूल हैं, जो उनके विषय में किए गए हैं। कोई भी यात्री, जो वहां गया होगा, उसने उस बड़ी भूलभुलैयां के अवशेषों को देखा होगा, जिसका विस्तार एक पूरे प्रान्त भर का था और जिसके विविध भागों के अन्तर्गत कोई १०० मन्दिर थे।

चीन की दीवार, उन पूर्वीय गौरव और महत्त्व के चिन्हों में से है, जो भूगोल के नक़शे में भी प्रत्यक्ष रहते हैं; यद्यपि उसका वर्णन एक गप्प समझा जाता, यदि वह दीवार अब तक न खड़ी होती।

उन बड़ी बड़ी इमारतों के लिए, जिन्होंने संसार के बहुतेरे देशों को मण्डित किया है, हम मनुष्य की भक्ति के अनुग्रहीत हैं। इसी भक्ति ने मनुष्यों को मन्दिर इत्यादि बनाने में संलग्न किया, न कि केवल इस लिए कि बड़े बड़े विशाल भवन बनाकर वे देवता को उसमें निवास करने के लिए आह्वान करें, वरन इसलिए भी कि ऐसे ऐसे विशाल निर्माण चित्त को उन्नत और बड़े विचारों के समावेश होने के लिए प्रशस्त करें और उसको उस देवता से साक्षात्कार के योग्य बनावें। क्योंकि प्रत्येक वस्तु, जो वृहत होती है, देखनेवाले के चित्त पर भय और भक्ति का सञ्चार कर देती है और आत्मा को स्वाभाविक बड़ाई का ध्यान दिलाती है।

अब मैं आगे इमारतों की रचना-प्रणाली की बड़ाई के विषय में विचार करूंगा, जो कि कल्पना पर इतना प्रभाव डालती है कि एक छोटी सी इमारत, जिसमें यह बड़ाई प्रगट होती है, अपने से बीस गुनी बड़ी इमारत की अपेक्षा, जिसकी प्रणाली तुच्छ और साधारण होती है, अधिक सुन्दर भावों से चित्त को पूर्ण करती है। जैसे कोई मनुष्य उस प्रतापसूचक भाव को देख, जो कि **लेसिपस** की बनाई हुई सिकन्दर की मूर्त्ति में झलकता था-यद्यपि वह मनुष्य की डील से ऊंची न थी-जितना चकित होता, कदाचित उतना

एथस (Athos) पहाड़ को देख कर नहीं, यदि वह समस्त काट कर, जैसा कि फ़िदियस ने प्रस्ताव किया था, उस समर-विजयी के स्वरूप में बना डाला जाता, जिसके एक हाथ में नदी और दूसरे में एक नगर होता।

कोई मनुष्य अपने चित्त की अवस्था पर तो विचार करे, जब वह रोम के पेंथियान (Pantheon at Rome) के पहिले फाटक पर पहुंचता है तो किस प्रकार की विशाल और चमत्कारिणी वस्तुओं से उसकी कल्पना पूर्ण हो जाती है; और साथ ही यह भी देखे कि उसकी अपेक्षा कितना कम प्रभाव एक गाथिक (Gothic cathedral) गिरजे के भीतरी दृश्य का चित्त पर होता है, चाहे वह पहिले से पाँचगुना बड़ा हो। इसका कारण एक की रचना-प्रणाली की बड़ाई और दूसरे की उसकी तुच्छता ही है,—और कुछ नहीं।

इस विषय पर मैंने एक फ़रांसीसी ग्रंथकार की आलोचना देखी है, जिससे मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं अपने पाठकों के लिए उस को ग्रंथकार ही के शब्दों में यहां पर उद्धृत करता हूं। वह कहता है,—"मैं एक बात देखता हूं, जो मुझे बड़ी अद्भुत प्रतीत होती है। वह यह है कि सतह (पृष्ठ) के समान विस्तार में एक प्रणाली तो विशाल और मनोहारिणी देख पड़ती है और दूसरी क्षुद्र और हीन। इसका कारण सूक्ष्म और असाधारण है। मेरी जान तो इमारतों में यह प्रणाली की मनोहरता लाने के लिए हमें इस प्रकार चलना चाहिए कि पिंड के प्रधान अंग बहुत कम भागों में विभक्त हों और वे बड़े हों; और उनकी रचना स्पष्ट और गंभीर हो, तथा नेत्रों को कोई बात तुच्छ और लघु न दिखाई दे"। इसी प्रकार की कारीगरी कल्पना पर सबसे अधिक शक्ति के साथ प्रभाव डालती है; और यही प्रणाली सुन्दर और विशद देख पड़ती है; इसके प्रतिकूल जहां छोटी छोटी महीन बेल बूटियों की अधिकता रहती है, जो कि दृष्टि के कोणों को इतनी अधिक परस्पर गुंथी हुई किरणों में छितरा देती हैं कि समस्त लीप पोत मालूम होता है, वहां कल्पना पर एक बहुत हीन और क्षुद्र प्रभाव पड़ता है।

इमारत के समस्त स्वरूपों में कोई ऐसे प्रभावशाली नहीं होते,

जैसे नतोदर (concave) और उन्नतोदर (convex); और हम प्राचीन और अर्वाचीन और यूरोप की तथा चीन इत्यादि पूर्वीय देशों की उन समस्त इमारतों का अधिक भाग, जो ठाट बाट के हेतु निर्माण की गई हैं, गोल खम्भों और मिहराबदार छतों से बना हुआ पाते हैं। इसका कारण मैं तो यह समझता हूं कि इन आकारों में (गोले तथा मिहराबदार) हम और दूसरे आकारों की अपेक्षा अंग का अधिक भाग देख पाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि और भी ऐसे आकार हैं, जिनमें आंख $\frac{2}{3}$ भाग तक सतह (पृष्ठ) का देख सकती है; किन्तु ऐसे आकारों में दृष्टि को बहुत से कोनों पर विभक्त होना पड़ता है, इससे एक ध्यान नहीं बँधने पाता, वरन एक ही प्रकार के कई भाव उत्पन्न होते हैं। किसी गुम्बज (शिवालय इत्यादि के) को बाहर से देखिए तो उसका आधा भाग आपकी दृष्टि के अन्तर्गत आ जायगा; फिर उसी गुम्बज को भीतर से देखिए तो एक ही बार में उस का सारा दृश्य आपके सामने उपस्थित हो जायगा; उसका सारा भीतरी झुकाव (नतांश) तुरन्त आंख पर आकर पड़ेगा; आप की दृष्टि केन्द्र हो जायगी, जो कि परिधि की समस्त रेखाओं को खींचकर एकत्र कर लेगी। एक सम चतुर्भुज खम्भ में आंख बहुधा एक बार में सतह का चौथाई भाग ही देख पती है; और एक चौखूंटी पटी हुई छतवाली कोठरी में दृष्टि को, प्रथम इसके कि वह समस्त भीतरी सतह से जानकार हो जाय, सब बाहुओं पर ऊंचे नीचे भटकना पड़ता है। इसी कारण से आकाश का दृश्य, जो एक मिहराब के भीतर से होकर आता है, उसकी अपेक्षा चित्त को कहीं अधिक आकर्षित करता है, जो चतुर्भुज वा और दूसरे आकारों के बीच से देखा जाता है। इन्द्रधनुष का आकार, उसके गौरव का उतनाही कारण होता है जितना, रंग उसके सौन्दर्य्य का, जैसा कि **सिराक** के पुत्र ने कहा है,—"इन्द्रधनुष की ओर देखो और उसकी प्रशंसा करो, जिसने उसे बनाया है; यह अपने चमत्कार में बहुत ही सुन्दर है, यह आकाश को एक सुन्दर वृत्त से नापता है और उस सर्वशक्तिमान के हाथों ने उसे झुकाया है।"

मैं इमारतों की उस बड़ाई के विषय में, जो चित पर प्रभाव डालती हैं, कह चुका। इसके अनन्तर मैं इस कला में जो बात नई और सुन्दर होती है और उसके देखने से जो आनन्द मिलता है, उसके विषय में भी कुछ कहता; किन्तु मैं देखता हूं कि प्रत्येक मनुष्य स्वभावतः इमारत के इन दोनों गुणों के विषय में उससे अधिक मर्मज्ञ होता है, जितना कि उस बड़ाई के विषय में; जिसका मैंने वर्णन किया; इस कारण मैं पाठकों को और कष्ट नहीं दिया चाहता। मेरे लिए अब इतना ही कहना बस है कि इन समस्त कलाओं (भवननिर्माण) में और कोई दूसरी बात नहीं है, जो कल्पना को आनन्दित करती है; यह वही,—बड़ाई, असाधारणता और सौन्दर्य्य है।

छठवां प्रकरण।

मैंने कल्पना के आनन्द का पहिले ही दो विभाग किया; एक तो वह, जो ऐसे पदार्थों से उत्पन्न होता है, जो यथार्थ में हमारे नेत्रों के सन्मुख हैं; और दूसरा वह, जो ऐसे पदार्थों से उद्भूत होता है, जिनको हमारी आंखों ने एकबार देखा और जो हमारे चित्त में फिर से या तो सर्वथा उसीकी क्रिया से अथवा किसी और बाहरी वस्तु, जैसे प्रतिमा और वर्णन, द्वारा लाए जाते हैं। पहिले विभाग पर तो मेरा विचार हो चुका; अब मैं दूसरे पर हाथ लगाता हूं, जिसको मैंने पहिचान के लिए कल्पना की द्वितीय श्रेणी का आनन्द कहा है। जब मैं कहता हूं कि वर्णन और प्रतिमा इत्यादि से जो भाव हमें प्राप्त होते हैं, वे वेही हैं, जो एक बार कभी हमारी दृष्टि के सन्मुख आ चुके हैं, तो इससे यह न समझना चाहिए कि हमने उसी स्थान, उसी कर्म्म और उसी व्यक्ति को, जो वर्णित वा निर्मित है, देखा है। इतना ही बहुत है कि हम ने ऐसे स्थान, ऐसे व्यक्ति और ऐसे कर्म्मों को देखा है, जो उनसे मिलते जुलते वा समानता रखते हैं, जो प्रदर्शित हैं। क्योंकि कल्पना में यह शक्ति है कि जो जो भावनाएं विशेष उसको एक बार प्राप्त हुईं, उनको अपनी रुचि के अनुकूल घटावे, बढ़ावे वा परिवर्त्तित करे।

पदार्थों के रूप दरसाने में प्रतिमाकारी ही सबसे अधिक स्वाभाविक होती है और पदार्थों से सबसे अधिक समानता दिखलाती है। एक साधारण बात से इसकी परीक्षा कीजिए। एक जन्म से अन्धे मनुष्य के हाथ में एक पत्थर की प्रतिमा दे दीजिए; वह अपनी उंगलियों को फेर कर कांटी के चिह्न और चढ़ाव उतार का पता लगा लेगा और बड़ी सुगमता से विचार कर लेगा कि किस प्रकार एक मनुष्य अथवा पशु का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। पर यदि वह अपना हाथ एक चित्र पर फेरे, जहां कि समस्त चिकना और बराबर रहता है तो वह कभी नहीं विचार कर सकता कि किस प्रकार मनुष्य के अंग के उभाड़ और उसकी गहराई एक साधारण पटल पर, जो कहीं ऊंचा नीचा नहीं है, दरसाई गई है। वर्णन चित्र से भी अधिक उन वस्तुओं से दूर रहता है, जिनको वह प्रदर्शित करता है। क्योंकि एक चित्र अपने मूल से बहुत अधिक मेल खाता है; पर अक्षर और मात्राओं में यह गुण नहीं होता; रंग समस्त भाषा बोलते हैं, किन्तु शब्द किसी जातिविशेष ही द्वारा समझे जाते हैं। इसी कारण से हम कहते हैं कि यद्यपि मनुष्यों की आवश्यकता ने उन्हें पहिले बाणी की खोज में तत्पर किया, पर लिखने का आविष्कार चित्रकारी के पीछे हुआ है। कहा जाता है कि स्पेनवाले पहिले पहिल जब अमेरिका में पहुंचे, उस समय मेक्सिको (Mexico) के राजा के पास, जो सन्देसा भेजा जाता था, वह चित्र द्वारा; उस के देश के समाचार पेंसिल से आकार बनाकर भेजे जाते थे, जो कि लिखने की अपेक्षा अधिक स्वाभाविक रीति थी-यद्यपि तदपेक्षा बहुत ही अपूर्ण; क्योंकि बचन के छोटे छोटे जोड़ों का आकार बनाना बहुत ही कठिन है और सम्बन्ध की विभक्तियों तथा संयोजक के चिन्हों का चित्र बनाना कोई साधारण काम नहीं है। इसी प्रकार दृश्य पदार्थों को ऐसी ध्वनि में, जो सर्वथा भावशून्य है, (अर्थात् जो केवल ध्वनिमात्र है, वर्णात्मक शब्द नहीं) प्रदर्शित करने का यत्न-जैसे बांसुरी के सुर में किसी पदार्थ का वर्णन करना-इससे भी विलक्षण होगा। यद्यपि यह सत्य है कि ध्वनि के कृत्रिम चढ़ाव उतार में इस प्रकार के भाव अस्पष्ट और अपूर्ण रूप में चित्त

में उत्पन्न हो जाते हैं। और हम देखते हैं कि गानविद्या के ज्ञाता लोग सुननेवालों को संग्राम के उद्वेग में कर देते हैं, उनके चित्त को शोक और उदासीनता से पूर्ण कर मृत्यु का रूप सन्मुख उपस्थित कर देते हैं, तथा उनको नन्दनकानन का मनोरञ्जक स्वप्न दिखाने लगते हैं।

इन सब उदाहरणों में, कल्पना का यह द्वितीय श्रेणी का आनन्द चित्त की उस क्रिया से उद्भूत होता है, जो कि मूल पदार्थों से उत्पन्न भावों से मिलान करती है और जो कि हम उन पदार्थों की प्रतिमा, उनके चित्र तथा बर्णनों से प्राप्त करते हैं। हम लोगों के लिए इसका वास्तविक कारण बतलाना कि क्यों चित्त की इस क्रिया के साथ इतना आनन्द लगा रहता है, असंभव है; जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं; किन्तु हम इस अकेले सिद्धान्त के अनुसार अनेक प्रकार के आनन्द उत्पन्न होते देखते हैं; क्योंकि चित्त की यही क्रिया हम लोगों में न कि केवल चित्रकारी, प्रतिमाकारी तथा बर्णनों ही की ओर अभिरूचि दिलाती है, वरन भांड़ों की नक़ल और उनकी क्रियाओं में हमें आनन्द अनुभव कराती है। इसीके प्रभाव से विविध भांति की विनोद और दिल्लगी की उक्तियां हमारे चित्त का रञ्जन करती हैं, जिनमें कि, जैसा कि मैं पहिले कह चुका हूं, भावों का परस्पर मिलान होता है। और हमारा यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि इसीके प्रभाव से बहुत सी बेसिर पैर की मिथ्या बातें भी हमारे चित्त को प्रसन्न करती हैं। उदाहरणार्थ—जैसे अक्षरों का उलटफेर, स्वरों का मेल, जैसा अन्त्यानुप्रास और प्रतिध्वनि में; अथवा शब्दों का परस्पर सादृश्य, जैसा यमक और श्लेष में; तथा समस्त पद किम्वा कविता का दूसरे पदार्थों के अनुरूप होना- जैसा अन्योक्ति और व्यंग में। चित्त की इस क्रिया में इतना आनन्द उत्पन्न करने का अन्तिम कारण कदाचित् हमलोगों को सत्य की खोज के लिए उत्तेजित करना है; क्योंकि एक वस्तु की दूसरी से पहिचान करना, तथा अपने विचारों में से कौन सा विचार यथार्थ है, इसका पता लगाना, उनको आपस में मिलान करने और प्रकृति के नाना पदार्थों के सादृश्य और बिभेद पर ध्यान देने ही पर निर्भर है।

किन्तु मैं यहां पर कल्पना के उसी आनन्द के विषय में विचार करूंगा, जो शब्दों द्वारा उत्पन्न किए हुए भावों से प्राप्त होता है। क्योंकि बहुत सी बातें, जो वर्णनों के विषय में पाई जाती हैं, वेही प्रायः चित्रकारी और प्रतिमाकारी में भी समभाव से घटित होती हैं।

शब्दों में, यदि उनका व्यवहार उत्तमता से किया जाय, इतनी बड़ी शक्ति होती है कि कभी कभी पदार्थों का वर्णन स्वयं उन पदार्थों की अपेक्षा अधिक सुन्दर भावों से चित्त को पूर्ण करता है। वर्णनों (शाब्दिक) द्वारा पाठकगण दृश्यों को कल्पना पर जितना अधिक चटकीले रंगों में खींचा हुआ, तथा उनका जितना सजीव चित्र निर्मित किया हुआ पाते हैं, उतना उनके यथार्थ अवलोकन द्वारा नहीं। इस बात में कभी कभी कवि प्रकृति से भी बढ़ जाता है। यद्यपि, इसमें सन्देह नहीं कि वह अपना दृश्य उसी (प्रकृति) से लेता है, तथापि वह उसको अधिक चटकीला करता है और उसकी शोभा को बढ़ाता है, तथा समस्त खण्ड को ऐसा सजीव बना देता है कि वे स्वरूप, जो पदार्थों से प्राप्त होते हैं, उनकी अपेक्षा धुंधले और अस्पष्ट जान पड़ने लगते हैं, जो उनके वर्णनों में दरसाए जाते हैं। कारण इसका कदाचित यह है कि पदार्थों के देखने से उनका उतना ही भाग कल्पना पर चित्रित होता है, जितना हमारे नेत्रों के सामने रहता है; परन्तु उनके वर्णन में कवि अपनी इच्छानुसार उनका जितना विस्तृत दृश्य चाहता है, दिखलाता है और उनके ऐसे ऐसे भागों का हमारे लिए पता लगाता है, जिन पर, जब पहिले हमने उन पदार्थों को देखा था, या तो हमने ध्यान ही नहीं दिया, या जो हमारी दृष्टि के बाहर थे। जब हम किसी वस्तु की ओर देखते हैं, तब उसके विषय में जो भाव उत्पन्न होता है, वह केवल दो या तीन छोटे छोटे सामान्य भावों से मिलकर ही बना रहता है; किन्तु जब कवि उसीको दरसाता है, तब या तो वह हमें उसके विषय में एक अधिक प्रवर्द्धित भाव प्रदान करता है, अथवा हमारे चित्त में केवल ऐसे ही भावों को उत्पन्न करता है, जो कल्पना पर सबसे अधिक प्रभाव डालते हैं।

इस बात का विचार करना भी समय का सदुपयोग ही होगा, कि क्यों ऐसा होता है कि बहुतेरे पाठक, जो एक ही भाषा के जाननेवाले होते हैं और उन शब्दों का अर्थ समझते हैं, जिनको वे पढ़ते हैं, एक ही वर्णन के विषय में भिन्न भिन्न रुचि रखते हैं। हम देखते हैं कि एक ही पद को कोई तो पढ़ कर आकर्षित हो जाता है और कोई उसी को बेपरवाही के साथ झट से पढ़ जाता है; एक तो उसीमें एक उत्तम स्वाभाविक चित्र खींचा हुआ पाता है और दूसरा उसमें किसी प्रकार की अनुरूपता और यथार्थता नहीं देखता। इस भिन्न रुचि का कारण या तो एक की अपेक्षा दूसरे की कल्पना की पूर्णता है, अथवा एक ही शब्द से प्रत्येक पाठक का भिन्न भिन्न भाव ग्रहण करना। क्योंकि किसी वर्णन की उत्तमता के समझने तथा उसके विषय में विचार करने के लिए ऐसा मनुष्य होना चाहिए, जो जन्म से उत्तम कल्पनावाला हो और जिसने भाषा के शब्दों की शक्ति और उनके प्रभाव को भली भांति तौला हो; जिसमें कि वह यह समझ सके कि कौन कौन से शब्द किन किन भावों के प्रगट करने के लिए उपयुक्त हैं और दूसरे शब्दों के संयोग से उन शब्दों में कितनी अधिक सुन्दरता और शक्ति आ जायगी। उन आकारों के धारण करने के लिए, जो बाहरी पदार्थों से प्राप्त होते हैं, कल्पना को तीव्र होना चाहिए; और यह जानने के लिए कि कैसे कैसे वाक्य उन्हें उत्तमता-पूर्वक पटावृत और विभूषित करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त हैं, विचार को स्वच्छ होना चाहिए। वह मनुष्य, जिसमें इन सब बातों का अभाव है, चाहे वह किसी वर्णन का आभासमात्र समझ ले, किन्तु उसकी सुन्दरता को वह स्पष्टरूप से नहीं समझ सकता; उसी प्रकार, जैसे एक क्षीण दृष्टिवाला मनुष्य अपने सामने के किसी स्थल का धुंधला और अस्पष्ट दृश्य तो देख सकता है, किन्तु उसके समस्त भागों का आनन्द नहीं ले सकता और न उसके नाना रंगों को अपने पूर्ण विकाश और चमत्कार में देख सकता है।

सातवां प्रकरण ।

प्रायः देखने में आता है कि उन बहुत सी वस्तुओं में से, जिनको हमने पहिले कभी देखा है, यदि एक भी वस्तु ध्यान में आ जाती है तो समस्त दृश्य का दृश्य सामने उपस्थित हो जाता है और ऐसे ऐसे भाव जाग्रत हो जाते हैं जो पहिले कल्पना में निद्रित थे। जैसे कोई सुगंध अथवा रंग विशेष चट हमारे चित्त में बग़ीचों और खेतों का ध्यान दिला देता है जहां पर हमने पहिले उसको देखा था, और जो जो स्वरूप उसके आस पास थे उसको भी वह लाकर सामने खड़ा कर देता है। हमारी कल्पना केवल एक संकेत मात्र पा जाती है और चट हमको नगरों और अभिनयों, मैदानों और जंगलों में पहुंचा देती है। यह भी देखा जाता है कि जब हमारा चित्त उन दृश्यों को जिन्हें एक बार हम देख चुके हैं ध्यान करता है तो जो जो बातें उनमें हमें सुन्दर देख पड़ी थीं वे ध्यान करने पर और भी अधिक सुन्दर प्रतीत होती हैं; स्मृति मूल-पदार्थ की रमणीयता को और बढ़ा देती है। एक **कार्टिशियन** (Cartesian) तत्त्ववेत्ता इन दोनों बातों का कारण निम्न लिखित शब्दों में बतलावेगा।

वे विविध भाव जिनको हम बग़ीचों वा नैसर्गिक दृश्यों से प्राप्त करते हैं चित्त में एक साथ प्रविष्ट होते हैं और उनकी जुदा जुदा लकीरें मस्तिष्क में लग जाती हैं जो कि एक दूसरे से बहुत पास पास रहती हैं; अतः जब कभी कल्पना में इनमें से एक भाव भी उत्पन्न हो जाता है और अपनी निज की लकीर में एक उत्तेजक रस का प्रवाह प्रेषित करदेता है, तो यह उत्तेजक रस अपनी गति के आवेग में न कि केवल उसी लकीर विशेष में से होकर बहता है जिसमें कि वह परिचलित किया गया वरन उनमें से भी बहुतों में से जो उसके आस पास रहती हैं। इसी युक्ति से वह और भी कुछ भावों को जाग्रत कर देता है जो कि पुनः नए सिर से उत्तेजक रस को प्रेषित करते हैं और उसी प्रकार यह रस उनकी निकटवर्ती लकीरों को भी खोल देता है, यहां तक कि अन्त

में समस्त भावों का समूह उमट आता है और वह सारा बग़ीचा किम्वा नैसर्गिक दृश्य कल्पना में उद्भूत हो जाता है। चूंकि उस आनन्द ने जो हमने इन स्थानों से प्राप्त किया था उस घृणा को दबा दिया था जो कि हमें उनसे उत्पन्न हुई थी इस कारण से आनन्दकारक भावों की रेखाएँ बहुत चौड़ी अंकित हुईं और इसके विपरीत घृणित भावों की रेखाएं इतनी संकीर्ण कि वे बहुत शीघ्र मुंद गईं और इस उत्तेजक रस को ग्रहण करने में असमर्थ हो गईं।

इस बात की जिज्ञासा करना तो व्यर्थ है कि यह पदार्थों की कल्पना करने की शक्ति वस्तुतः किसी मनुष्य की दूसरे की अपेक्षा अधिक आत्मिक-सम्पन्नता से उत्पन्न होती है अथवा मस्तिष्क की बारीकी से। परन्तु, यह तो निश्चय है कि एक उत्कृष्ट ग्रन्थकार में यह शक्ति अपने पूर्णरूप और विकाश में जन्म से होनी चाहिए जिसमें कि वह बाहरी पदर्थों से सुन्दर और सजीव भाव प्राप्त कर सके, उनको देर तक धारण कर सके और समय पर उनको ऐसे ऐसे स्वरूपों में सजा सके जो पढ़नेवाले के चित्त को सबसे अधिक चुटीले होते हैं। कवि को अपनी कल्पना को सुधारने में उतना ही परिश्रम करना चाहिए जितना दार्शनिक को अपनी विचार-शक्ति की अभिवृद्धि करने में। उसको प्राकृतिक कार्य्यों की ओर रुचि प्राप्त करनी चाहिए और तरह तरह के ग्रामीण दृश्यों से भली भाँति परिचित हो जाना चाहिए।

जब वह इस प्रकार ग्रामीण स्वरूपों से परिचित होगया और अपनी कवित्व शक्ति को और भी विस्तृत करना चाहता है तब उसको राज दरबार के ठाट बाट और सजावट से जानकार होना चाहिए। शिल्प की रचनाओं में भी जो बात सुन्दर और विशाल होती है उसका भी ज्ञान अच्छी तरह सम्पादन कर लेना चाहिए—चाहे वह चित्र में हो अथवा प्रतिमा में, चाहे वर्त्तमान समय की बड़ी बड़ी इमारतों में हो अथवा उनके अवशेषों में जो प्राचीन समय में विद्यमान थीं। ये सब बातें मनुष्य के हृदय को खोलने में तथा कल्पना को विस्तीर्ण करने में सहायता पहुंचाती हैं; और इनका प्रभाव सब प्रकार की लिखावट पर पड़ता है, यदि ग्रन्थकार इस

बात को जानता है कि उनका व्यवहार किस ढंग पर करना चाहिए। कदाचित यह कहने की आवश्यकता न होगी कि बड़े बड़े काव्यों में भी यही बड़ाई, असाधारणता वा सुन्दरता है जो चित्त को चमत्कृत करती है।

आठवाँ प्रकरण।

कल्पना की यह द्वितीय श्रेणी का आनन्द उसकी अपेक्षा अधिक विस्तृत और व्यापक है जो नेत्रों के अवलोकन से प्राप्त होता है; क्योंकि एक उपयुक्त वर्णन में न कि केवल वही वस्तु जो बड़ी, असाधारण वा सुन्दर होती है वरन वह भी जो हमारी रुचि के प्रतिकूल होती है हमारे चित्त को प्रसन्न करती है। यहां पर हमारा आनन्द एक दूसरे ही सिद्वान्त पर रहता है; अर्थात् चित्त की उसी क्रिया से यह उत्पन्न होता है जो उन भावों को जो शब्दों से उत्पन्न होते हैं उन भावों से मिलान करती है जो वर्णित पदार्थों से प्राप्त होते हैं; और क्यों चित्त की यह क्रिया इतना आनन्द देती है इसका विचार हम पहिले कर चुके हैं। अतएव इसी कारण से यदि उपयुक्त शब्दों में उसका स्वरूप दरसाया जाय तो ग्राम के गोबड़ौर का (यद्यपि उसको देखने से एक प्रकार की अरुचि होगी) वर्णन भी कल्पना को आनन्द-दायक होता है। यद्यपि वास्तव में तो इसे कल्पना का आनन्द न कहके विचार वा विवेचना का आनन्द कहना चाहिए क्योंकि हम उस स्वरूप से जो वर्णन में दरसाया जाता है उतना प्रसन्न नहीं होते हैं जितना उस वर्णन के उस स्वरूप को प्रगट करने की योग्यता से।

परन्तु, यदि ऐसी वस्तु का वर्णन जो छोटी, साधारण वा कुरूप होती है कल्पना को रुचिकर होता है तो जो वस्तु बड़ी, असाधारण वा सुन्दर होती है उसका वर्णन तो और भी अधिक हृदयग्राही होगा; क्योंकि तब हम दरसाए हुए पदार्थ को केवल मूल से मिलान करने ही से नहीं प्रसन्न होंगे वरन स्वयं मूल के स्वरूप से भी आनन्दित होंगे। बहुतेरे पाठक मैं समझता हूं कि

मिल्टन के नर्क के वर्णन को पढ़कर उतना मोहित न होते होंगे जितना स्वर्ग के। यद्यपि अपने अपने ढंग के दोनों ही बहुत उपयुक्त हैं; किन्तु एक में भयानक अग्नि और दुर्गन्धि की कल्पना उतनी सुहावनी नहीं है जितनी दूसरे में फूलों के उपवन, और हरे भरे कानन।

एक बात और है जिससे वर्णन सबसे अधिक रोचक हो जाता है; वह यह कि जब वह ऐसी ऐसी बातों को दरसाता है जो पढ़ने वाले के चित्त में कोई उत्तेजना उत्पन्न करती हैं और उसके मनोवेगों पर शक्ति के साथ प्रभाव डालती हैं। क्योंकि इससे हम तुरंत चंचल हो जाते हैं जिससे आनन्द और भी व्याप्त हो जाता है और कई प्रकार से हमें लीन करता है। जैसे चित्रकारी में, किसी के चेहरे के चित्र की ओर जो यथातथ्य उतरा हो देखने से हम प्रसन्न होते हैं; किन्तु यदि वह किसी ऐसे चेहरे का चित्र है जो सुन्दर है तो हमारी प्रसन्नता और भी बढ़ जाती है। और यदि कहीं उस सौन्दर्य्य में उदासीनता और शोक का भाव भी मिश्रित कर दिया जाता है तब तो हमारे आनन्द का कहीं ठिकाना नहीं रहता। चित्त के दो प्रबल वेग जिनको गंभीर प्रकार की कविता उभाड़ने का यत्न करती है वे भय और दया हैं। यहां पर लोगों को आश्चर्य्य होगा कि यह कैसे होता है कि वे मनोवेग जो और दूसरे अवसरों पर तो दुःखदायक होते हैं किन्तु जब उपयुक्त वर्णनों द्वारा वे उत्तेजित किए जाते हैं तो बहुत ही मनोरञ्जक होते हैं। यह तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं है कि ऐसे ऐसे प्रकरणों को पढ़कर हम आनन्दित हों जो आशा, आल्हाद, प्रशंसा, प्रेम तथा इसी प्रकार के और वेग उत्पन्न करते हैं; क्योंकि ये मनोवेग चाहे जिस अवसर पर उत्पन्न होंगे हमें बिना आन्तरिक प्रसन्नता प्रदान किए न रहेंगे। परन्तु यह कैसे होता है कि किसी वर्णन द्वारा भयभीत अथवा हताश किए जाने से हम प्रसन्न होते हैं, जब कि उसी शोक और भय के दूसरे अवसरों पर उत्पन्न होने से हम इतने विह्वल हो जाते हैं?

यदि हम इस आनन्द की भली प्रकार परीक्षा करें तो हम देखेंगे कि यह वास्तव में किसी ऐसी वस्तु के वर्णन से नहीं उत्पन्न

होता है जो भयानक होती है वरन हमारे उसे पढ़ते समय अपने विषय में विचार करने से। जब हम ऐसी भयानक वस्तुओं को देखते हैं तो यह विचार करके कुछ कम प्रसन्न नहीं होते कि हमें उनका कोई भय नहीं है। हम उन्हें भयानक तो समझते हैं किन्तु उसके साथ ही हानि पहुंचाने में असमर्थ; इसलिये जितना ही अधिक वे अपना भयानक रूप दिखलाती हैं उतना ही हम उनसे अपनेको रक्षित समझ कर और भी प्रसन्न होते हैं। सारांश यह कि हम किसी वर्णन की भयानक बातों को उसी कौतूहल के साथ देखते हैं जैसे एक मरे हुए राक्षस वा दैत्य को।

यही कारण है कि हम व्यतीत आपदाओं को विचार करके भी प्रसन्न होते हैं या किसी भारी चट्टान को दूर से देख कर हर्षित होते हैं जिसको यदि अपने सिर के ऊपर लटकती हुई हम देखें तो एक दूसरे ही प्रकार के भय से हमारा चित्त पूर्ण हो जाय।

इसी प्रकार जब हम पीड़ा, क्लेश, मृत्यु तथा इसी प्रकार की और दारुण घटनाओं के विषय में पढ़ते हैं तो हमारा आनन्द उस शोक से नहीं उत्पन्न होता है जो ऐसे दुःखमय वर्णनों से हमें प्राप्त होता है वरन हमारे भीतर ही भीतर अपनी अवस्था को उस क्लेशित व्यक्ति की अवस्था से मिलान करने से। ऐसे वर्णन हमें अपनी अवस्था का यथार्थ मूल्य समझना तथा अपने सौभाग्य की सराहना करना, जिससे हम इस प्रकार की आपदाओं से बचे हैं, सिखलाते हैं। यह एक ऐसे प्रकार का आनन्द है जो हम उस समय नहीं प्राप्त कर सकते जब हम यथार्थ में किसी मनुष्य को उसी पीड़ा से क्लेशित देखते हैं जो वर्णन में दरसाई गई है; क्योंकि तब वह वस्तु हमारी इन्द्रियों के बहुत ही निकट हो जाती है और हमें इतना अखर जाती है कि हमें अपने विषय में विचार करने को समय और अवकाश ही नहीं मिलता। हमारा ध्यान पीड़ित व्यक्ति के क्लेश और दुःख की ओर इतना झुका रहता है कि उसे हम अपने सुख की ओर नहीं फेर सकते। परन्तु, इसके प्रतिकूल हम उन आपदाओं को जो इतिहास अथवा काव्य में पढ़ते हैं या तो व्यतीत समझते हैं अथवा कल्पित; इससे हमारे चित्त में अपनी अवस्था का

ध्यान इस प्रकार दबे पांव प्रवेश करता है कि हमें ज्ञान नहीं पड़ता और पीड़ित पुरुष के क्लेश से जो दुःख होता है उसको दबा देता है!

परन्तु मनुष्य का चित्त पदार्थों में कोई बात उससे और पूर्ण चाहता है जितना उनमें देखता है और प्रकृति में कोई ऐसा दृश्य नहीं देखता जो उसके आनन्द की सबसे उच्च अभिलाषाओं को सन्तुष्ट कर सके-अथवा यों कहिए कि कल्पना उससे कहीं अधिक बड़ी, असाधारण और सुन्दर वस्तुओं का अनुमान कर सकती है जिन्हें हम अपनी आँखों से देखते हैं, और कोई न कोई त्रुटि इन आंख से देखी हुई वस्तुओं में वह बोध करती है। इसीसे यह कवि का कर्त्तव्य है कि कल्पना का उसीकी रुचि के अनुकूल अनुरंजन करे, अर्थात् जहां पर वह किसी सत्य और वास्तविक वस्तु का वर्णन करता है वहां पर प्रकृति को पूर्ण और दुरुस्त करे और जहां वह किसी कल्पित वस्तु का वर्णन करता है वहां प्रकृति की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य्यों को बटोर कर एकत्रित करे।

उसके लिये प्रकृति की धीमी चाल के अनुसार एक से दूसरी ऋतु में जाना तथा फूलों और पौधों के विषय में उसके सामयिक नियमों का पालन करना कोई आवश्यक नहीं है। वह अपने वर्णन में बसन्त और शिशिर की शोभा एक साथ दिखला सकता है और उसको रोचक बनाने के लिये समस्त वर्ष की शोभा से थोड़ी थोड़ी सहायता ले सकता है। उसके पारिजात, गुलाब और कदम्ब एक साथ फूल सकते हैं। उसकी (कवि की) भूमि किसी वर्ग विशेष के पौधों ही के लिये नहीं बनी है, आम और अखरोट समान रूप से उसमें मिल सकते हैं; अर्थात् प्रत्येक देश की जल वायु के पौधों के लिये उसकी भूमि उपयुक्त होती है; नारंगियों का बन वहां खड़ा मिल सकता है; हर एक झाड़ी फूलों से लदी हुई देखी जा सकती है; और यदि वह (कवि) मसालों का उपवन भी वहां होना उचित समझता है तो वह तुरन्त उन्हें पैदा होने भर के लिये उष्णता ला सकता है। यदि ये सब मिलकर भी रोचक दृश्य नहीं उपस्थित कर सकते तो वह नए प्रकार के फूलों की सृष्टि करता है जो उनकी अपेक्षा अधिक मधुर सुगंधवाले तथा चटकीले रंगवाले होते हैं जो प्रकृति के उपवनों में पाए जाते हैं। उसके विहंगों का कलरव इतना

मधुर और हृदयग्राही हो सकता है और उसके बन इतने निबिड़ और सघन हो सकते हैं जितना वह चाहे। दृश्य चाहे छोटा हो वा बड़ा उसके लिये दोनों बराबर हैं; वह अपने झरनों को आध मील की ऊंचाई से वैसी ही सुगमता से गिरा सकता है जैसी बीस गज़ की ऊंचाई से; वायु को वह जिस ओर चाहे बहा सकता है; और नदी की धारा को वह ऐसे ऐसे घुमावों के साथ बहा सकता है जो कल्पना को सबसे अधिक आनन्ददायक होते हैं। सारांश यह कि प्रकृति का गढ़ना उसके हाथ में रहता है, उसको वह जैसी शोभा चाहता है वैसी प्रदान कर सकता है; किन्तु उसको वह अत्यन्त ही न सुधार डाले और उससे बढ़ जाने के निमित्त यत्न करने में कहीं बे सिर पैर की व्यर्थ बातों में न फँस जाय।

नवाँ प्रकरण।

एक लिखने की रीति है जिसमें कवि प्रकृति की ओर बिल्कुल नहीं दृष्टिपात करता और अपने पाठकों के चित्त को ऐसे ऐसे पात्रों के कर्म्मों और स्वभावों से पूर्ण करदेता है जिनका सिवाय उसकी रचना में और कहीं अस्तित्व नहीं। अप्सरा डाइन, भूत प्रेत, और मृत पुरुषों की आत्मा इत्यादि इसी प्रकार की हैं। ऐसी रचनाओं में जो सर्वथा कवि की कल्पना ही पर निर्भर रहती हैं यह सबसे कठिन है क्योंकि इसमें उसके चलने के लिये कोई नमूना नहीं रहता उसको बिलकुल अपनी ही गढ़ंत पर काम करना होता है।

इस प्रकार की रचना के लिये चित्त की एक बहुत ही विलक्षण प्रवृत्ति की आवश्यकता है; और किसी ऐसे कवि का इसमें कृतकार्य होना असंभव है जिसके भाव निराले न हों और जिसकी कल्पना स्वभाव ही से उपजाऊ और संशयी न हो। इसके अतिरिक्त उसको किस्से कहानियों, पुराने पुराने व्याख्यानों तथा बूढ़े लोगों की जनश्रुति इत्यादि में भली प्रकार प्रवीण होना चाहिए, जिसमें वह हम लोगों की स्वाभाविक रुचि के अनुसार अपनेको ले चले, और जिन भावों को बचपन में हमने ग्रहण किया था उनका अनुमोदन करे; क्योंकि अन्यथा यह भूतों और डाइनों को अपने ही वर्ग के लोगों के समान

बोलावेगा, न कि उन दूसरी ही श्रेणी के जीवों की तरह जिनके वार्त्तालाप का अभिप्राय तथा जिनकी विचार करने की प्रणाली मनुष्यों से भिन्न होती है।

मैं मि० बेज़ की भांति यह नहीं कहता कि कोई बन्धन नहीं है कि भूत प्रेत अर्थसूचक ही बात बोलें; परन्तु इतना तो अवश्य कहूंगा कि उनके अर्थ कुछ विलक्षण और असम्बद्ध होने चाहिए जिसमें वे बोलनेवाले के स्वरूप और अवस्था के अनुकूल हों।

इस प्रकार के वर्णन पढ़नेवाले के चित में एक प्रकार का आनन्दकारक त्रास उत्पन्न करते हैं और उसकी कल्पना को उन पात्रों की विलक्षणता और नवीनता से रञ्जित करते हैं जो उनमें दरसाए गए हैं। ये हमारी स्मृति में उन कहानियों को लाते हैं जिन्हें हमने लड़कपन में सुना था; और उन अन्तरस्थित भय और आशंकाओं का अनुमोदन करते हैं जो मनुष्य के चित्त में स्वाभाविक हैं। हम लोग दूसरे देश के लोगों की भिन्न चाल ढाल और रहन सहन देखकर प्रसन्न होते हैं! कितने और अधिक हम प्रसन्न होंगे यदि मानो एक नई सृष्टि ही में हम पहुंचा दिए जांय और वहां दूसरे ही प्रकार के जीवों के आकार और व्यवहार देखें। शुष्क-हृदय तथा तर्कनाप्रिय मनुष्य इस प्रकार की कविता का यह कहकर विरोध करते हैं कि उसके वर्णन इतने संभव नहीं होते कि किसी प्रकार का प्रभाव कल्पना पर डालें। किन्तु इसका उत्तर यह दिया जा सकता है कि हमें निश्चय है कि इस जगत में हम लोगों के अतिरिक्त और भी बुद्धिसम्पन्न जीव हैं तथा और भी इस प्रकार की आत्माएं हैं जो मनुष्य की आत्मा से भिन्न नियमों से प्रतिबद्ध हैं। इसलिये जब हम इनमें से किसी को स्वाभाविक रीति पर दरसाया हुआ पाते हैं तो उसे सर्वथा असंभव और निर्मूल नहीं समझ लेते; वरन बहुतेरे लोग तो पहिलेही से उनके विषय में ऐसी सम्मति रखते हैं जो चट उन्हें ऐसी बातों पर विश्वास लाने को बाध्य कर देती है। हम लोगों ने, और कुछ नहीं तो उनके पक्ष में इतने मनोहर वर्णन सुने हैं कि हम असत्यता की ओर देखने की परवाह ही नहीं करते हैं और बड़े मन से ऐसे रोचक प्रलापों में अपने को लीन होने देते हैं।

अत्यन्त प्राचीन काल के लोगों में कविता की यह प्रथा प्रचलित न थी; क्योंकि, यथार्थ में, इसके सारे भाग की उत्पत्ति माध्यमिक काल के अंधकार और भ्रम से है जब कि मनुष्यों के दिलबहलाव के लिये तथा उनको डराकर अपने मत पर दृढ़ करने के लिये धर्म्म की आड़ में जाल रचे जाते थे। संसार में विद्या और विज्ञान का प्रकाश फैलने के पहिले लोग प्रकृति को बहुत ही पूज्य तथा भय की दृष्टि से देखते थे और यंत्र मंत्र भूत प्रेत आदि की आशंकाओं से चकित होना बहुत पसन्द करते थे। कोई भी गांव देश में ऐसा न था जहां एक भूत न हो; स्मशानों पर सर्वत्र भूतों का डेरा रहता था; प्रत्येक ताल के किनारे चुडैलों की मंडली बैठती थी; एक भी ग्रामीण ऐसा न मिलता था जिसने एक भूत न देखा हो।

यूरोप के कवियों में अंग्रेज़ कवि ही प्रायः इसमें अधिक कुशल होते हैं, चाहे इस कारण कि उनमें इस प्रकार की कहानियां बहुत हैं अथवा उस देश की प्रतिभा इस प्रकार की रचना के लिये विशेष उपयुक्त है क्योंकि अंग्रेज़ लोग स्वभाव से कल्पनाप्रिय होते हैं।

अंग्रेज़ कवियों में शेक्सपियर ही इस प्रकार की रचना में सब से बढ़ाचढ़ा है। वह कल्पना की उस प्रचुरता के प्रभाव से जो उसमें इतने पूर्ण रूप से थी अपने पाठकों के चित्त के कोमल और संशयी भाग को द्रवीभूत कर सका और ऐसे ऐसे स्थलों पर कृतकार्य्य होने में समर्थ हुआ जहां उसकी प्रतिभा की शक्ति के अतिरिक्त और आश्रय व आधार न था। उसके भूत, प्रेत और परियों की वार्त्ताओं में कोई बात ऐसी बीहड़ पर साथ ही ऐसी गंभीर है कि हम उनको बिना स्वाभाविक समझे नहीं रह सकते यद्यपि हमारे पास उनकी परीक्षा के लिये कोई साधन नहीं है। यह भी हम स्वीकार करेंगे कि यदि इस प्रकार के जीवों की सृष्टि जगत में है तो यह बहुत संभव है कि वे इसी प्रकार की बोली बोलते होंगे और ऐसे ही कर्म करते होंगे जैसा उसने दरसाया है।

एक प्रकार के और कल्पित जीव हैं जो हमें कवियों की रचना में कभी कभी मिलते हैं, अर्थात् जब रचयिता किसी मनोवेग, पाप, सत्य धर्म्म इत्यादि को दृग्गोचर स्वरूप में प्रदर्शित करता है और

उसको अपने काव्य के पात्र बनाता है। प्रबोधचन्द्रोदय नाटक के पात्र इसी प्रकार के हैं। भारतेन्दु जी के भारतदुर्दशा नाटक में आशा, आलस्य, रोग इत्यादि सब मनुष्यों के रूप में प्रगट हुए हैं। इस प्रकार की रचना बहुत ही मनोहारिणी और ओजस्विनी होती है। मैं स्थानाभाव से इन कल्पित पात्रों का उल्लेख मात्र यहां कर सकता हूं। इस भांति हम देखते हैं कि कितने रूपों में कविता कल्पना को सम्बोधन करती है; क्योंकि इसके कार्य्य का क्षेत्र न कि केवल सम्पूर्ण प्रकृति ही का मंडल है वरन् यह अपनी एक नई सृष्टि निर्माण करती है, ऐसे ऐसे व्यक्तियों का दर्शन कराती है जो इस भूमण्डल पर नहीं पाए जाते, और यहां तक कि आत्मा की विविध क्रियाओं को, उसके सद्भावों और विकारों को गोचर आकार और स्वभाव में दिखला देती है।

मैं अब अपने अगले दो प्रकरणों में यह विचार करूंगा कि किस प्रकार काव्य के अतिरिक्त और दूसरे प्रकार की लिखावट कल्पना को आनन्दित करने में योग्यता रखती है और फिर वहीं से इस निबन्ध की समाप्ति करूंगा।

दसवां प्रकरण।

जैसे कि काव्य तथा काल्पनिक साहित्य के रचयितागण अपनी बहुत सी सामग्रियों को बाहरी पदार्थों से लेते हैं और उनको अपने मनोनुकूल एक साथ संयोजित करते हैं वैसे ही लेखकों का एक और समुदाय है जो प्रकृति का अनुगामी होने के लिये उनकी अपेक्षा अधिक विवश है और अपना सारा दृश्य उसीसे लेता है। इतिहासकार, वैज्ञानिक, भ्रमणकार, भूगोलकार तथा वे सब जो भूस्थित वास्तविक पदार्थों का वर्णन करते हैं इसी समुदाय के अन्तर्गत हैं।

इतिहासकार का यह प्रधान गुण है कि वह उपयुक्त शब्दों में अपनी सेना का सुसज्जित होना और संग्राम में तत्पर होना वर्णन करे; हम लोगों की आँख के सामने बड़े लोगों के द्वेष, गर्व और छल को दरसावे और अपने इतिहास की बहुत सी घटनाओं

में क्रम क्रम से हमें ले चले। घटनाओं का धीरे धीरे यथाक्रम उद्भूत होना और हम पर इस रीति से प्रगट होना कि हमको पहिले से उनका कुछ ज्ञान न होने पावे हमें बहुत प्रिय है; जिसमें कि हम एक प्रकार के मनोरञ्जक सन्देह में पड़े रहें और हमें अनुमान बांधने का तथा वर्णन किए हुए दोनों पक्षों में से किसी एक पक्ष को अवलम्बन करने का समय मिले। यह मैं स्वीकार करता हूं कि इससे इतिहासकार का जितना गुण प्रगट होता है उतना यथार्थ वाद नहीं, किन्तु मैं तो उसका उल्लेख उतने ही अंश में करना चाहता हूं जितना कल्पना को प्रफुल्लित करने में समर्थ है। इन बातों में **लिवी** (Livy) अपने आगे और पीछे के सब इतिहासकारों से बढ़ा चढ़ा है। वह प्रत्येक वस्तु का ऐसा सजीव वर्णन करता है कि उसका समस्त इतिहास एक सुन्दर चित्र प्रतीत होता है, और हर एक कथा के ऐसे चुटीले वृत्तान्तों की ओर झुकता है कि उसका पढ़ने वाला एक प्रकार का निरीक्षक हो जाता है और उन समस्त मनोवेगों का अनुभव करने लगता है जो वर्णन के विविध भागों से सम्बन्ध रखते हैं।

किन्तु इस श्रेणी के लेखकों में कल्पना को इतना कोई सन्तुष्ट और प्रशस्त नहीं करते हैं जितना नए विज्ञान की पुस्तकों के प्रणेतागण; चाहे हम उनके पृथ्वी तथा आकाश विषयक सिद्धान्तों का और यन्त्रों द्वारा उनके नाना आविष्कारों का विचार करें अथवा प्रकृति विषयक उनके और और अनुमानों पर ध्यान दें। हम हर एक हरी पत्ती को लाखों ऐसे जीवों से गुथी हुई देखकर कुछ कम प्रसन्न नहीं होते हैं जिनको कि खाली आंख कभी देख नहीं सकती। धातु, पौधों तथा तारों के विषय में जो पुस्तकें होती हैं उनमें कोई बात कल्पना और बुद्धि दोनों को बहुत ही रोचक होती है। किन्तु जब हम एक बेर समस्त पृथ्वी की ओर तथा उन सब उपग्रहों की ओर जो उसके निकटवर्त्ती हैं दृष्टि डालते हैं तो हम इतने लोकों को अन्तरिक्ष में एक दूसरे के समानान्तर लटकते हुए तथा अपनी अपनी कक्षाओं पर ऐसे अद्भुत चमत्कार और वेग के साथ परिक्रमण करते हुए देखकर एक मनोरञ्जक आश्चर्य्य से पूर्ण हो जाते हैं। यदि इसके उपरान्त हम Ether (सूक्ष्म पदार्थ) के अपार क्षेत्रों का विचार करते हैं जो ऊंचाई

में शनैश्चर से लेकर स्थिरीकृत ग्रहों तक (Fixed Stars) पहुंच गए हैं और इधर उधर इतने विस्तार में फैले हुए हैं जिसका पारावार नहीं तो हमारी कल्पना-शक्ति ऐसे विपुल दृश्य से भर उठती है जिसके समावेश के लिये उसको बहुत ही फैलना पड़ता है। किन्तु यदि हम और आगे बढ़ते हैं और विचार करते हैं कि ये स्थिरीकृत ग्रह आग के अपार समुद्र हैं और प्रत्येक के साथ भिन्न भिन्न वर्ग के उपग्रह हैं; और फिर नए नए आकाश और नए नए प्रकाश का पता लगाते हैं जो इथर (Ether) के अगाध समुद्र में इस प्रकार मग्न पड़े हैं कि बड़े से बड़े दूरवीक्षण यंत्रों द्वारा भी नहीं देखे जा सकते तो हम सूर्य्यों और लोकों की भूल भुलैया में फंस जाते हैं और प्रकृति के चमत्कार और विस्तार से स्तम्भित हो जाते हैं।

कल्पना को कोई बात इतनी प्रिय नहीं है जितना पदार्थों के परस्पर विस्तार-सम्बन्ध को विचार करके क्रम क्रम से प्रवर्द्धित होना, जब वह मनुष्य के शरीर को सम्पूर्ण पृथ्वी के पिण्ड से मिलान करती है; पृथ्वी को उस वृत्त से जो उसके चारों ओर वह बनाती है, उस वृत्त को स्थिरीकृत ग्रहों के मंडल से, स्थिरीकृत ग्रहों के मंडल को सम्पूर्ण सृष्टि से और समस्त दृष्टि को उस अपार शून्य-स्थान से जो उसके चारों ओर फैला हुआ है; अथवा जब कल्पना नीचे की ओर जाती है और मनुष्य के शरीर को किसी मटर से भी सौ गुने छोटे जानवर से मिलान करती है, फिर उस जीव के विशेष विशेष अवयवों से तदनन्तर उन पुरज़ों से जो उन अवयवों में क्रिया उत्पन्न करते हैं, तदुपरान्त उस शक्ति से जो उन पुरज़ों को चलाती है और पुनः इन समस्त भागों की उस समय की सूक्ष्मता से जब कि वे पूरी बाढ़ को नहीं पहुंचे रहते हैं। और यदि इन सब के पीछे इस शक्ति के क्षुद्रातिक्षुद्र अंश को हम लेते हैं और उसके द्वारा एक संसार निर्मित होने की संभावना पर विचार करते हैं जिसमें कि उतने ही विस्तार में पृथ्वी और आकाश, तारे और उपग्रह तथा सब तरह के जीव परस्पर उसी सम्बन्ध के साथ सन्निविष्ट रहेंगे जैसा कि हमारे इस संसार में, तो इस प्रकार का विचार अपनी सूक्ष्मता के कारण उन लोगों को उपहास-जनक जान पड़ता है जिन्होंने अपना ध्यान इस

ओर नहीं फेरा है यद्यपि उसकी स्थिति दृढ़ प्रमाणों के आधार पर है। यहीं तक नहीं हम इस विचार को और भी आगे ले जा सकते हैं और इस क्षुद्र जगत के छोटे से छोटे कण में भी तत्त्व के ऐसे अतुल भंडार का पता लगा सकते हैं जिससे एक दूसरा ब्रह्माण्ड तक निर्मित हो सकता है।

इस विषय को मैंने विस्तार के साथ वर्णन किया है क्योंकि मैं समझता हूं कि इसमे कल्पना की यथार्थ पहुंच और उसकी त्रुटि का बोध हो जायगा और विदित हो जायगा कि किस प्रकार उसका प्रवेश बहुत ही थोड़े स्थान के बीच है और किस प्रकार किसी ऐसी वस्तु को ग्रहण करने के लिये जो अत्यन्त छोटी वा अत्यन्त बड़ी होती है जब वह यत्न करती है तो चट रोक दी जाती है। यदि कोई मनुष्य किसी ऐसे जीव के शरीर-पिंड को जो सरसों से बीस गुना छोटा है एक ऐसे जीव से मिलान करे जो सरसों से सौगुना छोटा है, अथवा अपने ध्यान में पृथ्वी के सहस्र व्यासों की लम्बाई को उसीके दश लाख व्यासों की लम्बाई से मिलान करे तो उसे तुरन्त ज्ञान पड़ेगा कि ऐसी ऐसी असाधारण मात्रा की सूक्ष्मता और विशालता का अन्दाज़: करने के लिये उसके चित्त में कोई पृथक पृथक माप नहीं हैं। हमारी बुद्धि अलबत्त हमारे चारो ओर अनुसन्धान का मार्ग खोल देती है; किन्तु कल्पना कुछ थोड़े से यत्न के उपरान्त चट स्थिर हो जाती है और उस अपार शून्यसागर में मग्न हो जाती है जो उसको चारो ओर से घेर लेता है। हमारी बुद्धि द्रव्य के एक कण का न जाने कितने प्रकार के भागों में बंट जाने पर भी पीछा नहीं छोड़ती; किन्तु कल्पना को वह बहुत शीघ्र अदृश्य हो जाता है। कल्पना अपने में एक तरह का रन्ध्र बोध करने लगती है जिसको कि वह किसी और विशेष गोचर पिण्ड की सामग्री से भरना चाहती है। हम इस शक्ति को न तो सिकोड़ कर सूक्ष्मता के अन्त तक ले जा सकते हैं और न फैला कर विशालता के सिरे पर पहुंचा सकते हैं। जब हम पृथ्वी की परिधि का ध्यान करते हैं तो वह वस्तु हमारी शक्ति की पहुंच से अत्यन्त बड़ी हो जाती है और जब हम एक परिमाणु का अनुमान करने के लिये यत्न करते हैं तब वह हमारे लिये कुछ भी नहीं रह जाती।

संभव है कि यह त्रुटि स्वयं आत्मा में न हो, वरन जब वह शरीर के सहयोग से काम करती है तब उसमें यह दोष आ जाता हो। कदाचित् मस्तिष्क में इतने तरह के चिन्हों के लिए स्थान ही न हो अथवा चेतना शक्ति उनको इस ढंग पर निर्मित करने में असमर्थ हो कि वे इतनी बड़ी अथवा इतनी छोटी भावनाओं को उत्तेजित कर सकें। जो कुछ हो हम यह मान सकते हैं कि दूसरे उच्च श्रेणी के जीव हमसे इस बात में बहुत बढ़े चढ़े हैं; और संभव है कि मनुष्य की आत्मा आगामि काल में (शरीर से पृथक होने पर) जैसे और सब बातों में वैसे ही इस शक्ति में भी पूर्णता प्राप्त करेगी; यहां तक कि कल्पना विचार के साथ साथ चलने और विस्तार के समस्त जुदे जुदे परिमाण और क्रम के लिये पृथक पृथक भाव रखने में सक्षम होगी।

ग्यारहवां प्रकरण।

कल्पना का आनन्द ऐसे ही ग्रंथकारों के ऊपर अवलम्बित नहीं है जो भौतिक पदार्थों में कुशल होते हैं वरन बहुधा नीति, समालोचना तथा द्रव्यों से निकाले हुए और और निरूपणों के गंभीर कर्त्ताओं में भी हम इस आनन्द को पाते हैं। ये लोग यद्यपि प्रकृति के दृग्गोचर भागों का स्पष्टतया वर्णन नहीं करते हैं तथापि वे प्रायः अपने उदाहरण, रूपक और अपनी उपमाएं उनसे लेते हैं। इस प्रकार के दृष्टान्तों से बुद्धि में स्थित कोई तत्त्व मानों कल्पना में प्रतिबिम्बित हो जाता है; हम किसी विचार में रंग और आकार देखने लगते हैं और भावों को भौतिक द्रव्यों पर झलकाया हुआ पाते हैं। जब कल्पना बुद्धि की बातों को अवतरण करने और मानसिक संसार भावों को खींचकर भौतिक संसार में लाने में लगी रहती है उस समय चित्त बहुत प्रसन्न होता है और उसकी दो शक्तियां एक साथ ही परितुष्ट होती हैं।

किसी ग्रंथकार का गुण मनोरञ्जक दृष्टान्तों के चुनाव में प्रगट होता है जो कि प्रायः प्रकृति वा शिल्प के विशाल और

सुन्दर निर्माणों से लिये जाते हैं; क्योंकि यद्यपि जो बात नई वा असाधारण होती है कल्पना को प्रसन्न करती है पर दृष्टान्त का मुख्य उद्देश्य किसी ग्रंथकार के वाक्यों का स्पष्टीकरण है इसलिये इस को सर्वथा ऐसे ही पदार्थों से लेना चाहिए जो उन वाक्यों की अपेक्षा जिन्हें स्पष्ट करना है अधिक परिचित और जाने हुए हों।

रूपक यदि उत्तमतापूर्वक चुने जाते हैं तो किसी प्रसंग के बीच बीच में प्रकाश की ज्योति की भांति हो जाते हैं जो कि अपने पास की सारी वस्तुओं को स्पष्ट और सुन्दर कर देती है। एक उत्कृष्ट उपमा यदि कौशल के साथ रक्खी जाती है तो अपने चारो ओर चमत्कार फैला देती है और सम्पूर्ण पद को कान्तिमय कर देती है। ये विविध प्रकार के दृष्टान्त (रूपक, उपमा इत्यादि) केवल सादृश्य दिखाने की भिन्न भिन्न प्रणालियां हैं; जिसमें ये कल्पना को आनन्दित कर सकें इसलिये सादृश्य या तो बहुत ही ठीक अथवा बहुत सुन्दर और रोचक होना चाहिए; जैसे कि हम किसी ऐसे चित्र की ओर देखना पसन्द करते हैं जिसमें अनुरूपता ठीक अथवा चेष्टा और भाव सुन्दर होता है। परन्तु हम बहुधा बड़े बड़े लेखकों को भी इस बात में दोषी पाते हैं; बड़े बड़े पंडित लोग अपने दृष्टान्त और उदाहरण प्रायः उन शास्त्रों से लेते हैं जिनमें वे सब से अधिक दक्ष होते हैं, अतएव उनके पांडित्य का समावेश लोग उनके सर्वथा भिन्न विषयों के प्रतिपादन में पाते हैं। मैंने "प्रेम" पर एक प्रबंध पढ़ा है जिसको सिवाय एक गहिरे रासायनिक के और कोई नहीं समझ सकता, और बहुत से धर्म्मोपदेश सुने हैं जिनको दार्शनिकों की मंडली के बीच सुनाना चाहिए। इसके विपरीत, कामकाजी लोग ऐसे दृष्टान्तों का आश्रय लेते हैं जो अत्यन्त ही परिचित और क्षुद्र होते हैं। ये लोग या तो पाठकों को शतरंज और गेंद के खेल की ओर ले जाते हैं अथवा तरह तरह के व्यवसाय और व्यापार की धुन में एक दूकान से दूसरी दूकान पर ले जाकर खड़ा करते हैं। यह ठीक है कि इन दोनों प्रकार की बातों में भी न जाने कितने तरह के सुन्दर दृष्टान्त मिल सकते हैं पर सब से हृदयग्राही प्रकृति के कामों ही में पाए जाते हैं जो कि समस्त शक्तियों को प्रत्यक्ष

होते हैं और उनसे बढ़ के आनन्द-दायक होते हैं जो कला और विज्ञान में पाए जाते हैं।

कल्पना पर प्रभाव डालने का यही गुण है जो उत्तम बुद्धि को भी अलङ्कृत करता है और एक मनुष्य की रचना को दूसरे मनुष्य की रचना से विशेष रोचक बनाता है। यों तो प्रायः सब तरह की लिखावट को यह उज्ज्वल करता है पर कविता का तो यह जीव और सर्वस्व है। जिस काव्य में यह गुण भली प्रकार झलकाया गया है उसको यह युगान्तरों से रक्षित रखता आया है चाहे उसमें सिवाय इसके और कोई बात प्रशंसा की न हो; और जिसमें सब शोभा विद्यमान रहती है पर इसकी हीनता रहती है वह रचना शुष्क और नीरस जान पड़ती है। इसमें कोई बात सृष्टि की सी होती है; यह एक प्रकार का अस्तित्व प्रदान करता है और पाठकों के सामने ऐसे बहुत से पदार्थों को लाता है जो इस जगत में नहीं पाए जाते। यह प्रकृति में बहुत सी बातें बढ़ाता है और परमेश्वर के कार्य्यों के बहुत से भेद दिखलाता है। संक्षेपतः यह सृष्टि के उत्तम से उत्तम दृश्यों को भी विभूषित और कान्तिमय कर सकता है, अथवा चित्त को उनसे अधिक चमत्कारक कौतुक और आभास दिखला सकता है जो उसके किसी भाग में पाए जा सकते हैं।

हम उन आनन्दों के बहुत से मूलों का पता लगा चुके जो कल्पना को सन्तुष्ट करते हैं; अब यहां पर कदाचित् उन विपरीत वस्तुओं को अलग करके दिखलाना कठिन न होगा जो उसको अरुचि और भय से पूर्ण कर देती हैं, क्योंकि कल्पना उतना ही क्लेश अनुभव कर सकती है जितना आनन्द। जब कि मस्तिष्क पर किसी दुर्घटना का आघात पहुंचता है, वा चित्त रोग और दुःस्वप्नों से विचलित हो जाता है तब कल्पना उन्मादकारक और उदासीन भावों से उपप्लुत होजाती है और अपने ही निर्मित सहस्रों भीषण आकारों से स्वयं भयभीत होती है।

प्रकृति में कोई दृश्य ऐसा क्लेशकर नहीं है जैसा एक व्यग्र मनुष्य का जब कि उसकी कल्पना व्यथित और उसकी सारी आत्मा व्यस्त और आकुल रहती है। बाबिलन भी अपनी उजाड़ अवस्था में

ऐसा कष्टोत्पादक नहीं है। पर इस दुःखदायी प्रसंग को मैं छोड़े देता हूं। मैं अब उपसंहार की भांति केवल यही विचार करूंगा कि यह शक्ति परमात्मा को मनुष्य की आत्मा के ऊपर कितना अधिकार देती है और हम एक कल्पना ही से किस सीमा तक का सुख और दुःख प्राप्त कर सकते हैं।

हम पहिलेही देख चुके हैं कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की कल्पना के ऊपर कितना प्रभाव रखता है और किस सुगमता के साथ वह उसके भीतर तरह तरह के स्वरूप ले जाता है। विचार तो कीजिए कि कितनी बड़ी शक्ति उस जगदीश्वर में स्थित होगी, जो कल्पना पर प्रभाव डालने की सब रीतियों को जानता है, जो उस में जिन जिन भावों का चाहे सञ्चार कर सकता है और उन भावों में जिस मात्रा तक का भय वा आनन्द चाहे भर सकता है। वह बिना शब्दों की सहायता ही के चित्त में स्वरूप उद्दीपित कर सकता है और बिना पिंड वा बाहरी पदार्थों के ही ऐसे दृश्य हमारे सामने ला सकता है, जो नेत्रों को प्रत्यक्ष जान पड़ते हैं। वह कल्पना को ऐसी सुन्दर और चमत्कारिणी भावनाओं से मोहित कर सकता है, अथवा उसको ऐसे ऐसे कराल भूतों और प्रेतों से सता सकता है कि हम मृत्यु की बाट जोहने और जीवन को एक बोझ समझने लगते हैं। सारांश यह कि वह कल्पना को इतना आनन्दित वा क्लेशित कर सकता है, जितना किसी एक जीव के निमित्त स्वर्ग वा नर्क बना देने के लिये दरकार होता है।

मङ्गल ग्रह।

[पण्डित अच्युतप्रसाद द्विवेदी बी० ए० लिखित।]

यह नीला आकाश, जिसे हम लोग रात्रि में ताराओं से जड़ा हुआ देखते हैं बड़ाही विचित्र है। विज्ञान तथा ज्योतिषशास्त्र से जाना गया है, कि कितने तारे आकाश में ऐसे हैं कि जिनका प्रकाश सृष्टिकाल से आज तक पृथ्वी पर नहीं पहुंचा है। बहुत से तारे, जो पृथ्वी पर से छोटे दिखाई देते हैं, वस्तुतः छोटे नहीं हैं। इनमें से कितने तारे हम लोगों के सूर्य से भी आकार में बड़े और अधिक प्रकाशवान हैं। पृथ्वी से अधिक दूर होने के कारण उनका प्रकाश पृथ्वी पर बहुतही कम पहुंचता है। हम लोगों के सूर्य के चारो ओर जैसे ग्रह और उपग्रह घूमते हैं, उसी प्रकार इन तारों के चारो ओर भी ग्रह और उपग्रह घूमते हैं। ज्योतिष-सिद्धान्त में सब से बड़े और प्रकाशवान तारे को सूर्य और उसके चारों ओर घूमने वालों को ग्रह तथा इन ग्रहों के चारो ओर घूमनेवाले उपग्रहों को एक संप्रदाय (System) मानते हैं। इसीलिये हम लोग अपने सूर्य, और उसके चारो ओर घूमनेवाले ग्रह, तथा इन ग्रहों के चारो ओर घूमने वाले उपग्रहों को सूर्य-संप्रदाय (Solar System) के नाम से पुकारते हैं। हमारे सूर्य-संप्रदाय में भारतवर्ष की गणना के अनुसार ९ ग्रह हैं, पर यूरोप में सूर्य को छोड़कर उसके चारो ओर घूमने वाले ८ ग्रह हैं। भारतवर्ष की गणना के अनुसार सूर्य, चन्द्र, मङ्गल, बुध, शुक्र, बृहस्पति. शनैश्चर, राहु और केतु ग्रह हैं। यूरोप के मत से सूर्य के, बुध, शुक्र, पृथ्वी, मङ्गल, बृहस्पति, शनि, यूरेनस और नेपचून उपग्रह हैं। अर्थात् ये सम्पूर्ण ग्रह सूर्य की परिक्रमा करते हैं। भारतवर्ष में चन्द्र, राहु और केतु को भी ग्रह मान लिया है, जोकि सिद्धान्त की रीति से ठीक नहीं जान पड़ता है। चन्द्र ग्रह नहीं है, क्योंकि नवीन ज्योतिष-सिद्धान्त के मत से ग्रह उसे कहते हैं जो किसी सूर्य के चारो ओर घूमे और सर्वदा उससे प्रकाश पाया करे। वास्तव में चन्द्र पृथ्वी की परिक्रमा करता

और पृथ्वी उसके साथ सूर्य की परिक्रमा करती है; इसलिये चंद्र को ग्रह नहीं, पर पृथ्वी का उपग्रह कहना चाहिए। राहु और केतु, जिन्हें भारतवर्षवाले ग्रह मानते हैं, वस्तुतः कोई तारे नहीं हैं। भारतवर्ष के ज्योतिषशास्त्र में जैसे और ग्रहों की गति इत्यादि निकालने की रीति दी गई है, वैसी कोई भी रीति इन दो ग्रहों के विषय में नहीं दी गई है। केवल चन्द्र के पात-गणित ही से इन दोनों अदृश्य ग्रहों की गणना होती है; इसलिये जो कुछ गणना इसके विषय में की जाती है, वह वस्तुतः चन्द्र-पात गणनाही है; और ये ग्रह अदृश्य रूप से चन्द्र-पातही के साथ साथ घूमा करते हैं। ऊपर लिख आए हैं कि सूर्य के ८ ग्रह हैं; इन्हीं ग्रहों में से मङ्गल भी एक ग्रह है, जो सूर्य की परिक्रमा करता है और उसीसे प्रकाश पाता है।

आकाश में कभी पूर्व और कभी पश्चिम दिशा में रात को दीए की टेम की भाँति लाल रङ्ग का जो तारा दिखाई देता है, वही मङ्गल ग्रह है। भट्टोत्पल ने अपनी वृहत्-संहिता की टीका में पराशर के वचनानुसार इस ग्रह की उत्पत्ति यों लिखी है कि पहिले जब ब्रह्मा ने अपने हृदय में सृष्टि के उत्पन्न करने की इच्छा की तो क्रोध से अपने तेज को अग्नि में हवन किया। यह तेज अग्नि के साथ पृथ्वी पर पड़ कर पृथ्वी के सब गुणों और तेजों के साथ एक पिण्ड की आकृति में उत्पन्न हुआ और यही पिण्ड मङ्गल ग्रह है। पृथ्वी पर अग्नि के साथ इस तेज के पड़ने से इस ग्रह की उत्पत्ति हुई है इसीलिये इस ग्रह का नाम भारतवर्ष में भौम पड़ा है। ब्रह्मा के नियोग से यह ग्रह राशि-मण्डल में कभी उलटा और कभी सीधा चल कर संहिताकारों के मत से शुभाशुभ फल देता है। उलटी गति को ज्योतिष सिद्धान्त में वक्र-गति कहते हैं।

वराहमिहर ने अपनी संहिता में इस ग्रह के पांच मुख नियत किए हैं और इन मुखों के नाम उष्ण, अश्रुमुख, सर्पमुख, रुधिरानन और असिमुसल कहे हैं। ये भिन्न नाम ग्रह के भिन्न भिन्न राशि पर आने और उसके शुभाशुभ फल के कारण रक्खे गए हैं। अर्थात् जिस नक्षत्र में ग्रह उदय होता है, उस नक्षत्र से ७, ८, और ९ नक्षत्र तक ग्रह का नाम उष्ण-मुख है। ऐसे अवसर पर यह ग्रह संहिताकारों के मत से लुहार, सुनार इत्यादि, जिनकी जीविका अग्नि से है, उनको

लिये हानिकारक है। १०, ११, और १२ वें नक्षत्र तक ग्रह का नाम अश्रु-मुख है, और इसका फल संसार पर यह होता है कि संपूर्ण रस बिगड़ जाते हैं और पानी नहीं बरसता है। १३वें और १४वें नक्षत्र में ग्रह का नाम सर्प-मुख है और इसका फल दांत वाले पशुओं, सर्पों और जङ्गल के जन्तुओं के लिये हानिकारक होता है, पर अन्न अच्छा पैदा होता है। १५वें, और १६वें नक्षत्र में ग्रह का नाम रुधिरमुख है, और इसका फल यह है कि संसार में भयङ्कर मुखरोग पैदा होते हैं और अनाज अच्छा उत्पन्न होता है। १८वें और १८वें नक्षत्र में मङ्गल का नाम असिमुसल है, जिसका फल यह है कि प्रजा चोरों के भय से दुखी रहती है और लड़ाई होने की संभावना रहती है। ऊपर जो ग्रह के नाम तथा उनके कारण फल लिखे गए हैं, वे उस समय के हैं, जब मङ्गल की गति वक्र होती है।

यदि ग्रह पूर्वा और उत्तरा फाल्गुनी में उदय होकर अस्त हो जाय तो बड़े भारी विघ्न होने की आशङ्का तीनों लोक में होती है। श्रवण में मङ्गल यदि उदय होकर पुष्य में वक्र हो जाय तो राजा के लिये हानिकारक होता है। यदि मङ्गल मघा नक्षत्र में विक्र गति होकर, उसी नक्षत्र पर फिर न आवे तो पाण्ड्य राजा के लिये हानिकारक होता है, लड़ाई होती है और वर्षा नहीं होती। यदि ग्रह मघा और विशाखा नक्षत्रों में जाकर फिर मघा नक्षत्र पर न आवे तो दुर्भिक्ष और क्षुधा का भय होता है। यदि रोहिणी के योग-तारा को भेद करे तो महामारी होती है, इत्यादि-अनेक शुभाशुभ फल संहिताकारों ने अपनी अपनी संहिता में लिखे हैं।

भारतवर्ष तथा ग्रीस के ज्योतिष-सिद्धान्त को परस्पर मिलान करने से समझ पड़ता है कि दोनों देशों में किसी न किसी समय बड़ाही घनिष्ट सम्बन्ध रहा होगा। दोनो देशों का ज्योतिष-सिद्धान्त प्रायः एकही है। इस विषय पर यदि ध्यान देकर विचारा जाय तो दोनो देशों के सिद्धान्तों की समता प्रगट होती है। युरोप में बहुतों का मत है कि भारतवर्ष का ज्योतिष-सिद्धान्त प्रायः ग्रीस के ज्योतिष-सिद्धान्त से लिया गया है। प्रमाण में यूरोपवाले सूर्य सिद्धान्त को देते हैं, जो भारतवर्ष में ज्योतिष की सबसे पुरानी

पुस्तक है; और उसके कर्त्ता यवनाचार्य्य को यौस देश का रहने वाला बताते हैं। यहीं तक नहीं, वरन उन लोगों ने यह भी सिद्ध किया है कि यवनाचार्य्य या तो हीरो वा हिरोडेटस था। जो कुछ हो, पर ग्रहों के विषय में यूरोप से पहिले भारतवासियों ही को ज्ञान हुआ है। ज्योतिष-वेदाङ्ग से स्पष्ट है कि ग्रहों के विषय में भारतवासी बहुत कुछ वेदही के समय से जानते चले आते हैं। यदि कोई यह कहे कि ज्योतिष-वेदाङ्ग वेद से बहुत पीछे बना है, तो भी वेद के प्रमाण से सिद्ध है कि ग्रहों का ज्ञान भारतवासियों का वैदिक काल से चला आता है। यूरोप में वस्तुतः पहिले पहल ग्रीसही ऐसा देश था, जहां से प्रायः सब प्रकार की विद्याएं निकली हैं। मङ्गल ग्रह का भी यूरोप में पहिले पहल ज्ञान ग्रीसवासियों ही के द्वारा हुआ है। ग्रीस देश के चरवाहों ने पहिले इस ग्रह को देखा और आकाश में इसकी स्थिति बदलते देखकर इसका नाम घूमने वाला अर्थात् वानडर्र (Wanderer) रक्खा था। चिरकाल तक ग्रीस में यही नाम प्रसिद्ध था। पीछे से जब ज्योतिषियों का इस ओर ध्यान झुका तो उन्होंने इसे ग्रह करके ग्रहण किया। पहिले पहल जिस ज्योतिषी ने इसे ग्रह समझा था, उसका नाम टालमी था। यह वही टालमी है कि जिसका सिद्धान्त भारतवासियों की भांति है; अर्थात् उसका मत था कि पृथ्वी स्थिर है और सब ग्रह उसके चारो ओर परिक्रमा करते हैं। भारतवर्ष तथा पुराने ग्रीक मत में मङ्गल युद्ध का देवता माना गया है। कदाचित् ग्रह के लाल रङ्ग होने के कारण यह नाम पड़ा हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है। थोड़ा सा वृत्तान्त संहितानुसार ऊपर के लेख में दिया गया है। अधिक इस विषय में लिखने से कदाचित मेरी समझ में व्यर्थ लेख बढ़ेगा।

फलित शास्त्र में यह ग्रह क्षत्रियों का प्रधान देवता माना गया है। इसीसे यदि क्षत्रिय मङ्गलवार को क्षौर करावे तो उसको दोष नहीं होता। मङ्गलही एक ऐसा ग्रह है कि जिसकी गणना भारतवर्ष के ज्योतिषियों ने भिन्न भिन्न रूप से की है। ब्रह्मगुप्त ने केवल मङ्गलही के लिये अर्धफलसंस्कार और यसकवृद्धि लिखी है। भास्कर ने भी इसकी गणना ब्रह्मगुप्तही की रीति से की

है। पर तिस पर भी मङ्गल की गणना अभी तक अशुद्ध ही है।

यदि सूर्य को एक गोले के समान मानें, जिसके व्यास का मान दो फुट हो, तो पृथ्वी बड़े मटर के तुल्य, मङ्गल छोटे मटर के समान, और चन्द्र सरसों के बराबर होगा। अर्थात् रवि को काट कर भूमि के तुल्य गोले बनाए जांय तो भूमि के ऐसे १२,५१,२०५ गोले बनेंगे; और भूमि में चन्द्र के समान ४९ गोले बनेंगे।

साधारण शक्तिवाली दूरबीन से यूरेनस और मङ्गल में कोई विचित्र बात वेध-कर्ता के उत्साह बढानेवाली नहीं दिखाई देती। शुक्र में साधारण यन्त्र से भी उसके विचित्र प्रकाश से एक अद्भुत शोभा दिखलाई पड़ती है। शनैश्चर में सब ग्रहों से बढ़कर चमत्कार, उसके चन्द्र के समान उपग्रहों तथा उसके वलयाकार कटिबद्ध के कारण दिखाई पड़ता है। अधिक शक्तिवाली दूरबीन से भी मङ्गल के पृष्ठ पर की वस्तु देखने के लिये वेध में बहुत ही निपुण होना चाहिए। यद्यपि इसकी पृष्ठस्थ वस्तुओं के देखने में अति कठिनाई है, तथापि इसकी स्थिति आकाश में ऐसी है कि जिसके कारण इसका वेध बहुत ही सरल रीति से हो सकता है।

मङ्गलही एक ऐसा ग्रह है कि जिसका ठीक ठीक वृत्तान्त ज्ञात होने से कितनी ही ज्योतिषशास्त्र की पुरानी कल्पनाओं की परीक्षा होकर नई बातें निकली हैं। ज्यों ज्यों इस ग्रह के विषय में ज्ञान बढ़ता जायगा, त्यों त्यों और नवीन सिद्धान्त निकलेंगे। इसी कारण प्राचीन काल से ज्योतिषियों का मन इस ग्रह की ओर झुका है। टाइकोब्रेही इसकी गति को आकाश में बराबर देखता रहा। केपलर ने इसी ग्रह के बल से टालमी की पुरानी कल्पना को अशुद्ध ठहराया, अर्थात् केपलर ने सिद्ध किया कि पृथ्वी के चारो ओर सब ग्रह नहीं घूमते, पर पृथ्वी और सब ग्रहों के साथ सूर्य की परिक्रमा करती है। भारतवर्ष में आर्यभट्ट को छोड़ कर प्रायः सभी ज्योतिषी टालमी ही की कल्पना मानते चले आए हैं। अर्थात् पृथ्वी स्थिर है और सब ग्रह उसकी परिक्रमा करते हैं। आर्यभट्ट ने केवल पृथ्वी में दैनन्दिनी गति अर्थात् अपनी कील पर

२४ घंटे में एक बार घूम आना लिखा है। मङ्गलही के आधार से केपलर ने यह भी सिद्ध किया कि ग्रह सूर्य के चारो ओर वृत्ताकार कक्षा में नहीं घूमते, बल्कि दीर्घ वृत्ताकार कक्षा में घूमते हैं। न्यूटन (Newton) को भी इसी ग्रह के बल से पहिले पहल आकर्षण सिद्धान्त का ज्ञान हुआ। निदान इसी प्रकार और और भी ज्योतिषी आज तक इसे वेध कर कर नई बातों का पता लगाते हैं।

मङ्गल प्रति पन्द्रहवें वर्ष पृथ्वी के अत्यन्त निकट होकर सन्ध्या समय पूर्व दिशा में उदय होता है और रात्रि भर रह कर सूर्योदय काल में पश्चिम दिशा में अस्त हो जाता है, प्रायः शुक्र और चन्द्र को छोड़ दूसरे ग्रह पृथ्वी के इतने समीप नहीं आ जाते, जितना कि मङ्गल। ऐसे अवसर पर मंगल बहुतही प्रकाशवान दिखाई देता है और वेध भी भली भांति हो सकता है, क्योंकि वेध-कर्त्ता सन्ध्या से प्रातःकाल तक जितनी बेर चाहे, उतनी बेर अति निकटस्थ मङ्गल को देख सकता है। इस समय मङ्गल का वह भाग, जो पृथ्वी पर से दिखाई पड़ता है, मङ्गल को सूर्य से ६ राशि के अन्तर पर रहने से बहुत ही प्रकाशवान रहता है। नीचे जो कुछ वृत्तान्त लिखा जाता है, वह प्रायः ऐसेही समय में मङ्गल के वेध से जाना गया है।

कभी कभी ऐसा होता है कि ग्रह का सूर्य से ६ राशि का अन्तर दो वर्ष में दो बेर हो जाता है। जैसा कि सन् १८६० और १८६२ ईस्वी में हुआ था। यह ६ राशि का अन्तर, अर्थात् ग्रह का सन्ध्या समय में उदय होना और रात्रि भर रह कर सूर्योदय काल में अस्त होना, ७७९—८३६ दिन में होता है; परन्तु पृथ्वी के अत्यन्त निकट होकर यह मङ्गलोदय प्रति पन्द्रहवें ही वर्ष पर होता है।

मङ्गल और ग्रहों की भांति दीर्घवृत्ताकार कक्षा में सूर्य के चारो ओर ६८६.९४ दिन में घूम आता है। सूर्य से सबसे अधिक दूरी अर्थात् कर्ण १५४,५००,०००, मध्यम-अन्तर १४१,५००,००० मील, और सबसे परमाल्यान्तर अर्थात् परमाल्य कर्ण १२९,५००,००० और इन दोनों के योगार्ध तुल्य मध्यम-कर्ण १४१,५००,००० मील है। मङ्गल की कक्षा पृथ्वी की कक्षा अर्थात् क्रान्ति-वृत्त से १°-५१′-५″ झुकी हुई है।

सन् १८७७ ईसवी में हाल साहेब ने इसके दो उप-ग्रहों को वेध से जाना। उनका नाम डामास (Deimos) अर्थात् चण्ड, और फोबास (Phobos) अर्थात् मुण्ड रक्खा। ये दोनों नाम चण्ड और मुण्ड मङ्गल को युद्ध का देवता समझ कर रक्खे गए हैं क्योंकि युद्ध के देवता के येही दोनों मुख्य दूत हैं।

चण्ड मङ्गल से १४६०० मील और मुण्ड ५८०० मील की दूरी पर है। चण्ड ३० घंटे १८ मिनिट और मुण्ड ७ घंटे ३९ मिनिट में मङ्गल की प्रदक्षिणा करता है। मङ्गल अपनी कील पर २४ घंटे और ३९ मिनिट में एक बार घूम आता है। इस लिये मुण्ड मङ्गल ग्रह से भी अधिक वेग से मङ्गल ग्रह के चारों ओर घूमता है। इसी कारण और उप-ग्रहों की भांति मुण्ड पूर्व मे उदय होकर पश्चिम में अस्त होता हुआ नही दिखाई पड़ता। मुण्ड मे यह भी विचित्रता है कि वह दो दिन तक आकाश में एकही समय पर बराबर क्षितिज पर रहता है। सन् १८७७ में पिकरिङ्ग साहेब ने इन उपग्रहों के व्यास का मान निकाला है, अर्थात् चण्ड का व्यास १० मील के लगभग और मुण्ड का ३६ मील के लगभग है। व्यास के मान से स्पष्ट है कि ये उपग्रह बहुतही छोटे हैं। मुण्ड जब ग्रह के अति निकट आ जाता है तो वह ठीक चन्द्र के समान घटता बढ़ता दिखाई देता है। दूसरे समय ये दोनों उप-ग्रह तारे की भांति दिखाई पड़ते हैं।

मङ्गल के व्यासमान में बहुत ही विवाद है। भारतवर्ष के ज्योतिषियों की गणना से व्यासमान ४००० मील के लगभग है। माडलर साहेब के मत से ४०७० मील है। बहुत से ज्योतिषी व्यास का मान इससे भी अधिक बतलाते हैं। परन्तु ऊपर दिए हुए मान उस समय के निकाले हुए हैं जब कि सूर्य की दूरी का मान ठीक ठीक नहीं जाना गया था। नवीन गणना से इसके व्यास का मान ४१५० और ४००० मील के मध्य में आता है। फ्लागस्टाफ (Flagstaff) के वेध से अब सिद्ध हो गया कि व्यासमान ४२-१५ मील है। यह मान बहुतही ठीक ज्ञात होता है और प्रायः आज कल के गणितज्ञ इसी मान को अपनी गणना में ग्रहण करते हैं।

मङ्गल का परिमाण (mass) अर्थात् मङ्गल मे कितनी (matter) मात्रा है निकालना साधारण नहीं है। उन्हीं ग्रहों का परिमाण सहज में निकल सकता है जिन्हें एक वा अधिक उपग्रह हों। उपग्रह न रहने से ग्रह का परिमाण निकालना बहुत ही कठिन है। किसी वस्तु का परिमाण उसके खिचाव (Pull) से ज्ञात होता है। आकर्षण सिद्धान्त से दूरी का मान जान कर खिंचाव का मान सहज मे निकल आता है। यदि किसी ग्रह का दूसरे ग्रह वा उप-ग्रह सम्बन्धी खिंचाव, खिंचाव से उत्पन्न हुई गति, और दोनो ग्रहों का वा ग्रह और उप-ग्रह का अन्तर ज्ञात हों तो परिमाण का लाना बहुत ही लाघव है। उप-ग्रह से ये सब बातें सहज में ज्ञात हो सकती हैं इसलिये उपग्रह वाले ग्रहों का परिमाण सहज में निकल सकता है। उप-ग्रह न रहने से ग्रह का परिमाण, ग्रह का दूसरे ग्रह पर खिंचाव, और खिंचाव से उत्पन्न हुई गति को जान कर निकाला जाता है। ठीक ठीक परिमाण जानने के लिये गति वेग और ग्रह के ऊपर अन्य ग्रहों का खिंचाव अवश्य व्यक्त होना चाहिए। इस विधि से भी आपेक्षिक गति (Relative velocity) ज्ञात होती है। आकाश में कोई स्थान स्थिर न रहने से नापने का कोई दूसरा उपाय ही नहीं है। यदि मान लें कि एकही वस्तु का दूसरे पर परस्पर खिंचाव है तो कठिनाई यह पड़ती है कि दोनों के परिमाण पृथक पृथक नहीं ज्ञात होते किन्तु दोनो परिमाणों का योग ज्ञात होता है। इसलिये यदि एक का परिमाण बहुत छोटा हो तो अटकल से बड़े परिमाण वाले ग्रह का परिमाण जान सकते है। यह परिमाण, दोनो परिमाणों के योग से कुछ न्यून होगा। यदि सूर्य संप्रदाय (Solar system) से मङ्गल का परिमाण निकालें तो वहाँ पर भी यही आपत्ति उपस्थित हो जाती है, कि ग्रह के बदले सूर्य ही का परिमाण ज्ञात होता है। ऊपर के कारणों से उन ग्रहों का परिमाण जिन्हें उप-ग्रह हैं सहज में निकल सकता है।

मङ्गल के जब कोई उपग्रह न जाने गए थे तब उसके परिमाण का मान सूर्य के परिमाण से $\frac{१}{२०००००}$ से लेकर $\frac{१}{३०००००}$ गुना निश्चय

किया गया था। इसके अत्यन्त दो छोटे उप-ग्रहों के ज्ञात होने पर मान सूर्य के परिमाण से $\frac{१}{३०६३५०}$ गुना निकला है। यह मान पृथ्वी के परिमाण से $\frac{१०}{९०}$ गुना है।

परिमाण ज्ञात होने पर मङ्गल की मध्यम घनता, (Average Density) इसके घन फल मे परिमाण का भाग देने से सहज में निकल सकती है। गणना से यह मान पृथ्वी की घनता से $\frac{३८}{१००}$ गुना है। इसलिये मङ्गल के पृष्ठ पर किसी वस्तु का बोझ पृथ्वी की अपेक्षा $\frac{३८}{१००}$ गुना कम होगा। अर्थात् पृथ्वी पर जिस वस्तु का बोझ १५० सेर है उस वस्तु का मंगल पर केवल ५७ सेर बोझ होगा इसलिये यदि मङ्गल पर मनुष्य हों तो उनका कार्य्य हम लोगों के कार्य्य की अपेक्षा लगभग तृतीयांश परिश्रम मे हो सकता है।

वेध करके देखा गया है कि मङ्गल का पिण्ड कभी गोल और कभी कुछ गोल का भाग कटा हुआ दिखाई देता है। वह कटा हुआ भाग ठीक चन्द्रमा की तरह घटा बढा करता है। इससे यह सिद्ध हो गया कि मङ्गल में स्वयम् प्रकाशवान होने की शक्ति नहीं है और पृथ्वी की कक्षा (orbit) के ऊपर वह सूर्य की परिक्रमा करता है अर्थात् इसकी कक्षा पृथ्वी की कक्षा से बड़ी है। यदि सूर्य से मङ्गल के केन्द्र तक एक रेखा खींचें और मङ्गल को केन्द्रगत एक ऐसे धरातल से काटें जो इस रेखा पर लम्ब हो तो यह धरातल मङ्गल के आधे प्रकाशवान् भाग को एक ओर और आधे अप्रकाशवान् भाग को दूसरी ओर कर देगा। इसी प्रकार यदि पृथ्वी के केन्द्र से मङ्गल के केन्द्र तक रेखा लगा दें और मङ्गल के केन्द्रगत एक ऐसे धरातल से मङ्गल को काटें जो इस रेखा पर लम्ब हो, तो यह धरातल मंगल के बिम्ब का दो भाग करेगा। एक भाग वह जिसे हमलोग देख सकते हैं और दूसरा वह जिसे हम लोग नहीं देख सकते। परन्तु ये दोनों रेखाएं अर्थात् सूर्य से मंगल के केन्द्र तक और पृथ्वी के केन्द्र से मंगल तक सर्वदा आपस में मिल कर एक नहीं हो जातीं,

इसीसे पृथ्वीवासी 'नलिका-यन्त्र' से मंगल को चन्द्रमा के समान सप्तमी से पूर्णिमा की भांति बढ़ते देखेंगे।

ह्यूगेनस (Hughens) ने पहिले पहल, २८ नवम्बर सन् १६५९ ईसवी के ७ बजे रात को वेध कर मंगल का एक चित्र लिया था। इस चित्र के प्रकाश होतेही अन्य ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों का ध्यान इसकी ओर झुका। जो जो स्थान, उस समय चित्र में उतरे थे उनका नाम वेधकर्त्ता के आदरार्थ ह्यूगेनस सागर रक्खा गया। उपरोक्त साहेब ने यह सिद्ध किया कि मंगल अपने अक्ष पर २४ घंटे में एक बार घूम आता है। परन्तु उन्हें इस पर पूरा विश्वास न था। सन् १६६६ ईसवी में केसानी (Cassani) ने मंगल का अपने अक्ष पर २४ घं० २५ मिनिट में घूम आना सिद्ध किया। परन्तु अक्ष पर घूमने से दिन और रात होते हैं इसलिये स्पष्ट है कि मंगल पर पृथ्वी की भांति दिन और रात होते हैं। नवीन वेध से अहोरात्र का मान २४ घं॰ ३७ मि॰ २२.७ से॰ सिद्ध हुआ है। पृथ्वी पर के नक्षत्र दिन (Sideral day) का मान २३ घं॰ ५६ मि॰ है अर्थात् मंगल पर का अहोरात्र मान पृथ्वी पर के अहोरात्र मान से ४० मिनिट के लगभग बड़ा है। मंगल पर का अहोरात्र मान भिन्न भिन्न ज्योतिषियों के मत से भिन्न भिन्न है। हरसल के मत से २४ घं॰ ३९ मि॰ ३५ से॰। माडलर के मत से २४ घं॰ ३७ मि॰ २२.७ से॰। प्रोफेसर केसर के मत से २४ घं॰ ३७ मि॰ २२.६ से॰ ठीक मान है। प्राकटर के मत से २४ घं॰ ३७ मि॰ २२.७३५ से॰ है। प्राकटर साहेब ने दिन मान निकालने में बड़ाही परिश्रम कर मीमांसा की है। साहेब ने डावेस, हरसल इत्यादि के लिए हुए मंगल के चित्रों के बल से गणित कर ऊपर लिखे हुए मान को निकाला है। यहाँ पर पूरी मीमांसा देने से केवल लेख बढ़ेगा और दूसरे यह गणित की क्रिया लेख में लानी कथमपि रुचिकर न होगी।

जब किसी भाँति यह सिद्ध होगया कि किसी ग्रह पर दिन रात होते हैं तो उस के ध्रुव और ध्रुव-अक्ष के जानने के लिये ज्योतिषी बड़ेही उत्सुक होते हैं। क्योंकि गणना के लिये किसी न किसी स्थान को मूल मानना बहुत ही उपयोगी है।

केवल उपयोगीही नहीं किन्तु इनके स्थिर किए बिना गणनाही करनी असंभव है । पृथ्वी को भी वस्तुतः कोई अक्ष नहीं है कि जिस पर वह दिन रात में एक बेर घूम आवे पर गणित के लिये एक अक्ष मान लिया गया है जिसको अब भूगोल के पढ़ने वाले भी बिना शङ्का समाधान किए मान लेते हैं । इसी प्रकार मङ्गल ग्रह का भी अक्ष स्थिर करना गणित के लिये बहुतही उपयोगी है। पृथ्वी पर से मङ्गल को देखने से मङ्गल अपनी कक्षा पर २५° झुका हुआ है। इसी रेखा को ज्योतिष सिद्धान्त के जाननेवालों ने मङ्गल का अक्ष मान लिया है, अर्थात् मङ्गल का ध्रुव-अक्ष, अपनी कक्षा पर २५° झुका हुआ है । जब कि ग्रह की ध्रुव-यष्टि स्थिर हो गई तो उसके ध्रुवों का भी स्थान अवश्य विदित होना चाहिए क्योंकि ध्रुव-यष्टि का छोर ध्रुवोंही पर जाकर अन्त होता है । पहिले पहल मरालडी साहेब ने मङ्गल के ध्रुवीय भागों का पता लगाने के लिये वेध किया था। वेध से बड़ाही आश्चर्यजनक कौतुक दिखाई पड़ा। साहेब ने देखा कि कुछ दूर तक मङ्गल के ध्रुव सफेद पदार्थ से ढके हुए हैं। ये सुफेद पदार्थ क्या हैं इसकी मीमांसा आगे चलकर की जायगी। यह सुफेदी उस समय ठीक ऐसी जान पड़ती थी कि मानों किसी ने ग्रह के ध्रुवों को सफेद खोलिओं से ढक दिया हो। इन सफेद खोलिओं में बड़ेही विचित्र विचित्र परिवर्त्तन हुआ करते हैं। इन परिवर्त्तनों का ब्योरा स्थान स्थान पर उपयोगी समझ कर किया गया है जिसमें कि ध्रुव-खोली के बारे में कुछ ज्ञान हो जाय। लाघव से ध्रुव की सफेदी का नाम जहाँ आया है वहां पर ध्रुव-खोली शब्द का प्रयोग किया गया है। ऊपर कह आए हैं कि मङ्गल का ध्रुव-अक्ष अपनी कक्षा पर २५° झुका हुआ है अर्थात् मङ्गल का विषुवद्वृत्त और मङ्गल की कक्षा से उत्पन्न कोण २५° है । पृथ्वी की ध्रुव-यष्टि भी अपनी कक्षा पर से २३° २४″ झुकी हुई है जिससे ज्ञात होता है कि मङ्गल तथा पृथ्वी की ध्रुव-यष्टि का कक्षा पर का झुकाव परस्पर बहुतही पास पास हैं, अर्थात स्वल्पान्तर से तुल्य है ।

मङ्गल ग्रह की यष्टि का, उसकी कक्षा के धरातल पर के झुकाव तथा अन्य कारण जिनके ऊपर ग्रह के पृष्ठ पर का ऋतुपरिवर्तन निर्भर है उन्हें पहिले पहल हरसल साहेब ने निकाला है। साहेब का मत था कि ग्रह के उत्तरीय भाग में वसन्त ऋतु उस समय होती है जब कि ग्रह ८९°२४″ देशान्तर पर रहता है। उस समय कक्षा का झुकाव २८°४२″ और ग्रह का पृथ्वी की कक्षा से ३०°१८″ झुकाव रहता है। यद्यपि पिता पुत्र हरसल के समान वेध करनेवाले विरलेही मनुष्य संसार में उत्पन्न हुए हैं पर इस वेध में हरसल ने न जाने क्यों बहुत ही अशुद्ध मान निकाला है। इस अशुद्धि का कारण हरसल स्वयं न था पर जिन यन्त्रों से हरसल ने वेध किया वेही स्थूल थे। इसलिये स्थूल यन्त्र से वेध करने पर जो फल उत्पन्न हुआ वह भी स्थूल ही रहा। हरसल ने जो मंगल चित्र अपने यन्त्र द्वारा लिया है उससे भी स्पष्ट रूप से विदित है कि उसके यन्त्र डिलारू, डाविस, लाकेयिर, और फिलिपस के यन्त्रों से बहुत ही स्थूल थे। हरसल ने ग्रह के चिन्हों ही के परिवर्तन के आधार पर मंगल के पृष्ठ पर के ऋतु का निर्णय किया है जिसका पूरा पूरा ब्योरा फिलासाफिकल ट्रान्ज्याक्शन् सन् १७८४ ई० के २४१ पृष्ठ में दिया हुआ है। वस्तुतः चिन्हों के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय ग्रह के पृष्ठ पर के ऋतुपरिवर्तन जानने का नहीं है।

ऊपर लिख आए हैं कि अक्ष और कक्षा के झुकाव और अन्य कारणों से किसी ग्रह पर ऋतु का हेर फेर होता है। इन अन्य कारणों में मुख्य ग्रह की कक्षा है। यह ग्रह की कक्षा वृत्त के स्वरूप की नहीं है पर दीर्घवृत्ताकार है। जितनीही बड़ी दीर्घवृत्त की निष्पत्ति होती है उतनाही ग्रह के एक भाग से दूसरे भाग में ऋतुओं में छोटाई और बड़ाई होती है। पृथ्वी पर ऋतु का अन्तर ८ दिन का है अर्थात् उत्तरीय गोलार्ध में जाड़ा दक्षिणीय गोलार्ध से ८ दिन अधिक होता है और गर्मी ८ दिन कम होती है। पृथ्वी की भांति मंगल-पृष्ठ पर भी ऋतुओं में अन्तर होता है। ज्योतिषियों ने वेध से ७८ दिन ऋतु के अन्तर का मान स्थिर किया है। अर्थात् मंगल-पृष्ठ पर के एक गोलार्ध में जाड़ा दूसरे गोलार्ध से

७८ दिन अधिक रहता है और गर्मी ७८ दिन कम रहती है। सङ्केत के लिये मंगल को उस भाग को जो सूर्य के अत्यन्त निकट आ जाता है उत्तर और जो भाग सूर्य से सब से दूर रहता है उसे दक्षिण गोलार्ध मान लिया गया है।

	शरद	बसन्त	ग्रीष्म	शिशिर
उत्तर गोलार्द्ध	१४७	१९१	१८१	१४१
दक्षिण गोलर्द्ध	१८१	१४७	१४७	१९१

मंगल के ध्रुव भी पृथ्वी के ध्रुवों की भांति चिपटे हुए हैं। भिन्न भिन्न ज्योतिषियों ने चिपटेपन का मान भिन्न भिन्न निकाला है। हरसल के मत से चिपटे पन का मान $\frac{1}{16}$ था। यूरोप के नए ज्योतिषियों के मत से वास्तव मान हरसल के मान से न्यून आता है। प्रोफेसर केज़र के मत से $\frac{1}{114}$ मान निकला है। र्याडक्लिफ (Radcliffe) के वेधालय के मेन साहेब ने सन् १८६२ ई० में $\frac{1}{39}$ मान निकाला था। पर उपरोक्त साहेब की गणना से ध्रुव पर के चिपटे पन का मान ग्रह के व्यास के चिपटे पन के मान से अधिक आता था। डाविस साहेब ने दो प्रकार की गणना कर मान को निकाला है। साहेब की प्रथम रीति से कुछ भी मान न निकला। दूसरी रीति से उसने केवल यह सिद्ध किया कि व्यास पर का चिपटापन ध्रुव पर के चिपटे पन के मान से न्यून है। वस्तुतः १८६९ ई० तक किसी ज्योतिषी को इस विषय में पूर्ण रूप से ज्ञान न हुआ था। उनका केवल यह सिद्धान्त था कि मान बहुत अल्प है इसलिये वह निकल नहीं सकता। पीछे से ज्योतिषियों ने पूर्व ज्योतिषियों की बात पर ध्यान न दिया और इस विषय की मीमांसा में सदा तत्पर थे। पीछे से जब कि सन् १८७७ ई॰ में ग्रह के दो उपग्रह ज्ञात हुए तब हरमन स्ट्रुन साहेब चिपटेपन के मान निकालने में कृतकार्य हुए। साहेब ने व्यास के चिपटेपन के विषय में केवल इतनाही लिख कर छोड़ दिया है कि व्यास पर का चिपटापन बहुतही न्यून है और उसका मान लाना बहुतही कठिन है। काल पाकर और अच्छी शक्ति वाली दूरबीन बनने से कदाचित् एक न एक दिन इस चिपटेपन का मान भी निकल आवे। ध्रुव

पर के चिपटेपन का मान उपर्य्युक्त साहेब ने १/१९० गुना व्यास का निकाला है। जिसे साधारण रीति से यों कह सकते हैं कि मङ्गल के ध्रुव २२ मील चिपटे हैं। अर्थात् यदि मङ्गल के आकार का कोई पिण्ड बनाया जाय और उसके ऊपर और नीचे के स्थानों को आरी से काट दिया जाय तो जो स्वरूप पिण्ड का रह जायगा वही स्वरूप ग्रह का भी होगा। अर्थात् ध्रुव पर वृत्त का भाग २२ मील कटा हुआ दिखाई देगा। इसी कटे हुए भाग को चिपटापन कह कर दिखाया गया है।

ऊपर के वर्णन से अब यह स्पष्ट है कि मङ्गल के पृष्ट पर कितनी बातें ऐसी होती हैं जिन्हें हमलोग इस पृथ्वी पर अपनी आखों से देखते हैं। इसलिये अब मङ्गल पर क्या क्या वस्तु हैं इन का भी पता लगाना सब प्रकार से ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों ने उचित समझा। वस्तुतः इस लेख में कहीं कहीं वैज्ञानिकों तथा ज्योतिषियों का कल्पना-तरङ्ग इतना बढ़ा चढ़ा है कि जो विज्ञान तथा ज्योतिष के अनभिज्ञ हैं वे कथमपि इस वर्णन पर विश्वास न करेंगे। कितने मनुष्यों के मन में यही कल्पना उठेगी कि जो कुछ ग्रह के विषय में लिखा गया है वह उपन्यास के भांति कल्पना तरङ्ग है। परन्तु जिन्हें विज्ञान वा ज्योतिष सिद्धान्त का कुछ भी ज्ञान होगा वेही समझ सकते हैं कि ग्रह के विषय में एक एक बात जानने में ज्योतिषियों तथा वैज्ञानिकों का कितना समय और धन व्यय हुआ होगा। विज्ञान तथा ज्योतिष शास्त्र में दूसरे शास्त्रों अर्थात् दर्शन, न्याय इत्यादि की भांति केवल कल्पना-तरङ्ग नहीं है पर शङ्का होने पर समाधान के लिये जिस वस्तु के विषय में शङ्का हुई हो उसे आंखों के सामने दिखा कर शङ्का करने वाले के हृदय को सन्तुष्ट कर दिया जाता है। क्या किसी पुरुष को पहिले इस बात पर विश्वास था कि विद्युत एक बल है जिसके वेग से रेल इत्यादि चल सकती हैं। पर नहीं अब आखों से कलकत्ते में ट्रामवे चलते देख लोगों के लिये यह एक साधारण बात होगई है। इन बातों के लिखने से मेरा मुख्य अभिप्राय यह है कि कहीं इस लेख के पाठक भी न कह बैठें कि ग्रह के विषय में जो कुछ लिखा गया

है वह सब कल्पना-तरङ्ग है। इसी लिये जहां कहीं इस लेख में कल्पना की गई है वहां पर युक्ति दे दी गई है। जहां कहीं गणित के गहन विषयों की सहायता से किसी कल्पना की उपपत्ति दी गई है वहां पर गणित का देना व्यर्थ समझ केवल दिखा दिया गया है कि गणित से यह बात सिद्ध की गई है। वस्तुतः यह लेख केवल साधारण रीति से ग्रह के वर्णन के लिये लिखा गया है और जान बूझ कर गणित तथा विज्ञान से सिद्ध हुई रीतियां छोड़ दी गई हैं।

ग्रह के विषय में जो कुछ वर्णन ऊपर दिया गया है उससे स्पष्ट है कि मङ्गल के पृष्ठ पर पृथ्वी की भाँति दिन और रात होते हैं और ऋतु में भी परिवर्तन हुआ करता है। इसलिये अब इस बात की भी मीमांसा होनी आवश्यक है कि मङ्गल के पृष्ठ पर जीव बसते हैं, वनस्पति इत्यादि होती है वा नहीं? वनस्पति और जीव के विषय में केवल इतनाही कहा जा सकता है कि जो जो वस्तुएं जीव और वनस्पति को जीवित रखने के लिये उपयोगी हैं वे ग्रह के पृष्ठ पर हैं वा नहीं। यदि सभी उपयोगी वस्तुओं का ग्रह के पृष्ठ पर होना सिद्ध हो गया तो अवश्य वहाँ पर जीव और वनस्पति के होने का सिद्धान्त स्थिर किया जा सकता है। पृथ्वी पर अब देखना चाहिए कि कौन कौन वस्तुएं जीव और वनस्पति के जीवित रहने के लिये उपयोगी हैं। पृथ्वी पर जल, वायु जीव और वनस्पति के जीवित रखने के लिये मुख्य हैं। इस लिये मङ्गल के पृष्ठ पर मनुष्य इत्यादि जीव और वनस्पति हैं वा नहीं इन के सिद्ध करने के पूर्व दो बातों का सिद्ध करना बहुतही आवश्यक है। अर्थात् मङ्गल के पृष्ठ पर जल और वायु हैं वा नहीं इसकी मीमांसा पहिले की जायगी।

वैज्ञानिकों तथा ज्योतिषियों का मत है कि प्रत्येक ग्रह प्रारम्भ में सूर्य के समान अग्नि पिण्ड था। प्रत्येक ग्रह अपनी उष्णता को प्रति क्षण बाहर देते देते अपनी तेजोमय अवस्था को न्यून करता चला जाता है अर्थात अपना तेज बाहर देने से तेज-रहित होता आता है। जितनाही छोटा पिण्ड जिस ग्रह का था उतनीही जल्दी

उसकी तेजोमय अवस्था बीत गई और जिन ग्रहों का पिण्ड बड़ा था उनकी उष्णता बहुत देर में नष्ट हुई है। कितने ऐसे ग्रह हैं जिनकी तेजोमय अवस्था अभी तक वर्त्तमान है। उदाहरण के लिये पाठकों को एक छोटा सा दृष्टान्त देते हैं कि पाठक जब चाहें तब दो वस्तुओं को अग्नि में गरम करें तो देखेंगे कि जितनी ही बड़ी वस्तु होगी उतनेही अधिक काल में वह ठंढी होगी और जितनीही छोटी वस्तु होगी उतनेही अल्प काल में वह ठंढी हो जायगी। इस लिये जो दशा छोटी वस्तु और बड़ी वस्तु की है वही दशा छोटे ग्रह और बड़े ग्रह की है। पृथ्वी, जिस पर हम लोग सुख पूर्वक सोते चलते इत्यादि हैं यह भी एक समय अग्नि पिण्ड थी और इसमें भी सूर्य की भाँति तेज था। पर काल बीतने से इसकी सब उष्णता बाहर निकल गई केवल कुछ कुछ अग्नि भाग पृथ्वी के नीचे रह गया है जो कभी कभी ज्वालामुखी के स्वरूप में बाहर निकल आता है। जब पृथ्वी ऊपर से नीचे तक शीतल हो जायगी तो पृथ्वी पर एक भी ज्वालामुखी का दर्शन न होगा। इतिहास से भी स्पष्ट है कि पहिले पृथ्वी पर जैसे जैसे ज्वालामुखी थे अब वैसे नहीं देखने में आते हैं। मङ्गल भी पृथ्वी की भाँति शीतल हो गया है। यदि मङ्गल में कहें कि वायु नहीं है तो मङ्गल चन्द्रमा के समान मृत (Dead) हो गया होता। अर्थात् चन्द्र पृष्ठ की भाँति मङ्गल-पृष्ठ पर की वस्तुएं जो सहस्त्रों वर्ष पूर्व थीं वे अब तक बिना परिवर्तन के वर्तमान रहतीं। वेध मे देखा गया है कि ग्रह के पृष्ठ पर विलक्षण परिवर्तन होते रहते हैं। इस लिये विशेष संभावना है कि मङ्गल के पृष्ठ पर जल और वायु हों। क्योंकि विज्ञान-शास्त्र से विदित है कि बिना जल और वायु किसी वस्तु में विकार उत्पन्न नहीं हो सकता।

ऊपर लिख आए हैं कि इस ग्रह के दोनों ध्रुवों पर सफेद खोलियाँ हैं और उनका नाम लाघव के लिये ध्रुवखोली रक्खा गया है। इन ध्रुव-खोलियों में सर्वदा परिवर्तन होता रहता है। अर्थात् ये खोलियां कभी बढ़ती हैं और कभी घट जाती हैं। इन खोलियों का वर्णन आगे चल कर किया जायगा। यहां पर

केवल यही कहने की आवश्यकता है कि उनमें परिवर्तन होता रहता है। केवल यही एक परिवर्तन नहीं है किन्तु यह देखा गया है कि मङ्गल के पृष्ठ पर के अंधेरे और प्रकाशवान स्थलों में भी सर्वदा परिवर्तन हुआ करता है। इस परिवर्तन का कारण फ्लागस्टाफ (Flaggstaff) के वेधालय वालों ने ऋतु का हेर फेर सिद्ध किया है। यद्यपि इन दोनों बातों का कारण ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता तथापि यहां यही जानना मुख्य है कि उसके पृष्ठ पर परिवर्तन होते हैं और जब कि ग्रह के पृष्ठ पर परिवर्तन होते हैं तो अवश्य है कि ग्रह पर जल और वायु हैं।

डगल्यास (Douglas) साहेब ने मङ्गल के पूर्वापरीय व्यास (Equitorial Diameter) और ध्रुवीय व्यासों के मान निकालने पर देखा तो कभी कभी पूर्वापरीय व्यास का मान कुछ अधिक आता था। पर ध्रुवों पर के व्यासमान सदा स्थिर रहते थे। निदान साहेब इसके कारण की खोज में लगे और अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि मङ्गल पर वायु है जो कि पूर्वापरीय व्यास पर घनी और प्रकाशवती होकर व्यासमान को कभी कभी अधिक कर देती है। यदि कोई विरोध में यह कहे कि वह वायु नहीं है जिससे पूर्वापरीय व्यास का मान अधिक आता है पर ग्रह का चन्द्र की भांति घटाव और बढ़ाव है जिसके कारण व्यास बड़ा दिखाई देता है। अथवा यह कहा जाय कि मङ्गल पर चन्द्र लोक की भांति पहाड़ हैं जिनकी चोटियों पर से प्रकाश परावर्तित होकर व्यास का मान बढ़ाता है। इन दोनों शङ्काओं का उत्तर यह है (१) कि यदि चन्द्र के समान ग्रह का पिण्ड घटता और बढ़ता है तो उसके व्यास का मान वास्तव व्यास के मान से सर्वदा न्यून होना चाहिए। व्यास मान कथमपि बड़ा न होना चाहिये। (२) मङ्गल के पृष्ठ पर वेध कर के ज्योतिषियों ने निश्चय कर लिया है कि ग्रह के पृष्ठ पर कोई ऊंचे पहाड़ नहीं हैं जिनके शिखरों पर से सूर्य की किरणें परावर्तित हो ग्रह के व्यास मान को उसके वास्तव मान से बड़ा कर देती हों। इसलिये स्पष्ट है कि वह वायुही है जो कि पूर्वापरीय व्यास पर घनी होने के कारण सूर्य की किरणों को परावर्तित कर व्यास मान वास्तव व्यास--

मान से अधिक कर देती है। ऊपर के वर्णन से अब स्पष्ट है कि पृथ्वी की भांति मङ्गलपृष्ठ भी वायु से घिरा है।

अब जानना यह रहा कि यदि मङ्गलपृष्ठ पर वायु है तो इसका बोझ क्या है? और उसमें आक्सिज़न इत्यादि ग्यास तथा जल कण हैं वा नहीं। आक्सिज़न इत्यादि ग्यास मंगल वायु में हैं वा नहीं इसकी मीमांसा करनी बहुतही कठिन और दुःसाध्य है क्योंकि जो रीति विज्ञान-शास्त्र में इस समय में प्रचलित हैं उनसे ग्रह वायु में क्या क्या पदार्थ हैं जानना कठिन है। आज कल ग्रह के प्रकाश की परीक्षा विज्ञान-शास्त्र-वाले स्पेक्ट्रासकोप से करते हैं। स्पेक्ट्रास-कोप किसी प्रकाश के अवयव रङ्गों को अलग अलग कर देता है। अर्थात् निर्दिष्ट-पदार्थ में कौन कौन रङ्ग हैं उनको यह यन्त्र भली भाँति दिखा देता है। प्रत्येक प्रकाश के वर्ण-चिन्ह (Spectrum) जुदे जुदे होते हैं। इन्हीं स्पेकट्रम चित्र के बल से विज्ञान-शास्त्र वेत्ता अमुक प्रकाश जो अमुक वस्तु का है उसमें अमुक अमुक पदार्थ वा ग्यास हैं, स्थिर करते हैं। इन्ही स्पेक्ट्रमों के बल से वैज्ञानिकों ने सूर्य पृष्ठ पर अनेक धातु तथा ग्यास इत्यादि का होना निश्चय किया है। मंगल में कोई प्रकाश नहीं है और जो प्रकाश कि ग्रह का हम लोग पृथ्वी पर से देखते हैं वह वास्तव में सूर्य का प्रकाश है जो कि ग्रहपिण्ड पर से परावर्तित हो कर पृथ्वी पर आता है और जिसके कारण हम लोगों को ग्रह दिखाई देता है। इसलिये पृथ्वी पर से यदि मंगल के प्रकाश की परीक्षा की जावे तो मङ्गल के बदले सूर्य मण्डलही के वायु के विषय में ज्ञान होगा। यदि और ग्रहों की भांति मङ्गल में स्वयम् प्रकाशवान होने की शक्ति होती तो ऊपर लिखे हुए यन्त्र से सहज में ग्रह-पृष्ठ पर की वायु का पूर्ण रूप से ज्ञान हो जाता, और इस बात की मीमांसा भी पूरी तौर पर हो जाती कि मङ्गलवायु में आक्सिज़न, नाइट्रोजन, इत्यादि ग्यास रहती हैं वा नहीं।

वेध से पाया गया है कि मङ्गल-पृष्ठ पर कभी कभी काला दाग दिखाई देता है जो कि कुछ काल तक रह कर फिर न जानें कहां लोप हो जाता है। पर कोहिरा ही ऐसी वस्तु है जो कि थोड़े काल

तक आकाश को घेरे रहता है और सूर्य की गर्मी पा कर फिर लोप हो जाता है। इसलिये संभव है कि काला दाग़ कोहिरे का हो। पृथ्वी पर भी प्रातः और सायङ्काल में आकाश कोहिरे से घिरा रहता है। प्रातः काल का कोहिरा सूर्य के तेज से धीरे धीरे लोप हो जाता है। वैज्ञानिक सिद्धान्तों से ग्रह पर की वायु का बोझ पृथ्वी पर की वायु की अपेक्षा $\frac{१४}{१००}$ गुना हलका है। अर्थात् वैज्ञानिक रेनालट्स (Reinaults) के सिद्धान्त से मङ्गल-पृष्ठ पर पानी १७० फारनहाइट डिगरी पर खौलेगा। यदि इसी मान को सेन्टीग्रेड थरमामेटर में प्रकाश करें तो मान ७५ डिगरी आवेगा। इसी उष्णता पर मङ्गल पृष्ठ पर पानी वाष्प-स्वरूप हो जायगा। पृथ्वी पर पानी खौलने का दर्जा १०० सेन्टीग्रेड है। अर्थात् मङ्गल पृष्ठ पर पृथ्वी की अपेक्षा पानी कम गर्मी से खौलता है।

मङ्गल के पृष्ठ पर पानी बहुतही कम बरसता है, बनौरी इत्यादि का कई प्रकार से वहां पड़ना असंभव जान पड़ता है। केवल ओस और कोहिरा वहां पर पड़ सकता है। ध्रुवखोली कदाचित इन्हीं दोनों कारणों से जम कर वर्फ हो जाती हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। ग्रह के पृष्ठ पर बड़े बड़े तूफानों के आने की भी कम संभावना समझ पड़ती है पर छोटी छोटी आंधियां आ सकती हैं। इन बड़े तूफानो के न आने का मुख्य कारण यह है कि मङ्गल-वायु पृथ्वी पर की वायु से बहुतही हलकी है। मङ्गलीय-वायु भू-वायु से हलकी है यह समझ मनुष्य को यह तर्क न करना चाहिए कि ग्रह पर कोई जीव नहीं बसते हैं। संभव है कि विधाता ने वहां के वासियों को वहांही की वायु में जीवित रहने योग्य बनाया हो।

इगल्यास साहेब ने एक समय ग्रह के पृष्ठ पर ६९४ विचित्र प्रकाशवान स्थान देखे जिनमें से २९१ स्थान पृष्ठ पर से उभड़े दिखाई पड़े और ४०३ स्थान दबे दिखाई पड़े। साहेब ने विचार कर निश्चय किया कि यह पहाड़ की ऊंचाई निचाई कथमपि नहीं है। क्योंकि-

(१) वेध से मङ्गल पर कोई ऊंचे पहाड़ नहीं दिखाई देते हैं और जो एकाध दिखाई भी पड़ते हैं उनके कारण इतने ऊंचे नीचे स्थान नहीं दिखाई पड़ सकते।

(२) यदि इन चिन्हों को पहाड़ ही की प्रतिभा और अधरांश मान लिया जाय तो प्रतिभा और अधरांश का मान तुल्य होना चाहिए। अर्थात् जितनी ऊंचाई एक स्थान पर दिखाई पड़ती है उतनीही निचाई उसके समीप में होनी चाहिए। जैसे एक स्थान की ऊंचाई ७ फुट देखी गई तो उसके समीप उसकी प्रतिच्छाया की निचाई भी ७ फुट होनी चाहिए। इसलिये स्पष्ठ है कि ये प्रतिभा अधरांश बादल के टुकड़ों के हैं, जो सर्वदा घट बढ कर ऊंचाई और निचाई की संख्या को तुल्य और स्थिर नहीं रहने देते। वेध से जाना गया है कि ये बादल ग्रह के पृष्ठ पर से प्रायः १५ मील तक ग्रह-पिण्ड को घेरे रहते हैं। अर्थात् ऊपर के वर्णन से स्पष्ट है कि जब ग्रह पर कोहिरा इत्यादि है तो वहां वायु अवश्य है।

जिस प्रकार मङ्गल पर वायु है वा नहीं इसके सिद्ध करने के लिये ध्रुवखोली का काम पड़ा है उसी प्रकार ग्रह पर जल है वा नहीं इसकी मीमांसा करने में भी ध्रुवखोली के परिवर्तन का काम पड़ेगा। वायु की मीमांसा में इन खोलियों के वर्णन में केवल इतनाही कह कर छोड़ दिया गया है कि श्वेत खोलियों में परिवर्तन होता रहता है। पर जल के सिद्ध करने के लिये इस खोली का थोड़ा वृत्तान्त उपयोगी समझ कर नीचे दिया जाता है।

ग्रह की ध्रुवखोली यूरोप में चिर काल से प्रसिद्ध है। किसी इङ्गलैण्ड के कवि ने वर्णन में लिखा है।

'The snowy poles of moonless Mars'

(अर्थात् चन्द्र शून्य मङ्गल के बर्फ से ढके हुए ध्रुव)। पीछे से ग्रह के चित्रों से इसका और भी पता धीरे धीरे ज्योतिषियों को चलने लगा। ज्योतिषियों ने अनेक आपत्तियों के उपस्थित रहने पर भी ग्रह के ऐसे ऐसे सुन्दर चित्र लिए हैं कि जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। इन चित्र लेने वाले ज्योतिषियों में सब से प्रख्यात ज्योतिषी, हरसल, बियर, माडलर, लाकेयर, फिलिप और डिलारू थे। पर सबसे उत्तम चित्र वह है जो इन ज्योतिषियों के पश्चात् लिया गया है। यह चित्र पिछले सब उतारे हुए चित्रों से

उत्तम है। इस चित्र का लेने वाला डावेस था। डावेस ने सन् १८५२, १८५६, १८६० और १८६२ में ग्रह के २२ चित्र उतारे थे।

ग्रह का चित्र लेना जैसा लोग चित्रों के देखने से स्वयं समझ सकेंगे, सहज न था। डावेस ने ग्रह का प्रति घंटे का चित्र उस समय लिया है जब कि ग्रह की ध्रुव-यष्टि भी नहीं मानी गई थी। प्राकटर साहेब ने डावेस के चित्रों के बल से ग्रह का एक नकशा तैयार किया था कि जिसमें साहेब ने देशान्तर इत्यादि चित्र के अनुसार स्थिर किया। उपरोक्त साहेब ने नकशे को ग्रह के चित्र पर रख कर ध्रुव-खोली का स्थान नियत किया था। ब्राउनिङ्ग साहेब ने १८६८ ई॰ में प्राकटर और डावेस के चित्रों के बल से मङ्गल का एक गोल बना कर इगलैण्ड के ज्योतिषिक समाज में दिखाया था। इस के पूर्व फिलिप साहेब ने भी समाज को एक गोल बना कर दिखाया था। पर ब्राउनिङ्ग का गोल फिलिप के बनाए हुए गोल से बहुत बढ़ कर था।

३ जून सन् १८९४ ई॰ को वेध करके देखा गया कि ग्रह के दक्षिण ध्रुव पर की खोली ५५ अंश देशान्तर तक ग्रह के पृष्ठ पर फैली हुई है। एक अंश का मान ग्रह के पृष्ठ पर ३७ मील के तुल्य है। इसलिये ध्रुवखोली का दक्षिण ध्रुव पर विस्तार २०३५ मील था। ७ जून को और भी विचित्र दृश्य देख पड़े। अचानचक इस श्वेत खोली में तारे की तरह दो चमकीले स्थान दिखाई पड़े। थोड़े काल तक ये तारे चमकते रहे और उसके अनन्तर धीरे धीरे लोप होने लगे। उसी सन् की १२ वीं अक्टूबर को लोवेन साहेब ने जब १० बजे रात को देखा तो श्वेत खोली का बहुतही थोड़ा हिस्सा रह गया था और बाकी सब लोप हो गया था। उसी दिन फिर साहेब ने १ बजे रात को ग्रह को देखा तो श्वेत खोली को ध्रुव पर ६ अंश फैला हुआ पाया जिसका विस्तार ५० वर्ग मील के लगभग था। १३ वीं अक्टोबर को जब देखा गया तो सुफेद खोली का पता नहीं था। न जाने वह कहां लोप हो गई। इसके पहिले यह श्वेत खोली कभी लोप होती हुई नहीं दिखाई पड़ी थी। सन् १८७७ ई॰ तक यह ७ देशान्तर से ४ देशान्तर तक घटती हुई दिखाई दी

थी और बाद उसके बढ़ने लगी थी। उस समय ज्यों ज्यों श्वेत-खोली घटती जाती थी त्यों त्यों उसके चारों ओर चौड़ी चौड़ी काली धारियां दिखाई देने लगी थीं। इन धारियों में किसी का रङ्ग नीला और किसी का रङ्ग हलका नीला था। धारियों की चौड़ाई जहाँ तक देखी गई वहां तक उनकी चौड़ाई सब स्थान पर बराबर न थीं। कहीं धारियां ज्यादे चौड़ी और कहीं कम चौड़ी थीं। रङ्ग इनका या तो नीला या हलका नीला सब स्थानों पर था। २७० और ३३० देशान्तर के बीच दो बड़ी खाड़ियां दिखाई पड़ीं जिन में पहिले का रङ्ग धारियों के समान गहिरा नीला और दूसरे का नीला था। प्रायः धारियों की चौड़ाई दूसरे दूसरे देशान्तरों में पृथक पृथक थी। उत्तर की ओर जो पहिली खाड़ी थी वह हरे रङ्ग के स्थलों से घिरी हुई थी। नीला रङ्ग जो धारियों का है वह किस वस्तु का है इसकी मीमांसा करने के लिये पहिले ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों ने इसे द्रव कारबोनिक आसिड ग्यास समझा परन्तु पीछे से फ्याराडे (Farday) की युक्ति से यह बात असंभव जान पड़ी। यदी कहीं कारबोनिक आसिड ग्यास का मङ्गलपृष्ठ पर होना सिद्ध हो जाता तो चन्द्र की भांति मङ्गल में भी जल का होना असंभव होता। इसलिये पृथ्वी की भांति मङ्गल के ध्रुव पर भी बर्फ जमी हुई है जो गर्मी और सरदी पाकर गलती और जमती रहती है। इस लिये सिद्ध होता है कि मङ्गल पर अवश्य जल है।

मङ्गल के पृष्ठ का अवयव जानने के लिये लोवेल साहेब ने फ्लागस्टाफ के यन्त्रालय में इस ग्रह के बारह चित्र नवेम्बर सन् १८९४ में उतारे। इन चित्रों के लेने के पहिले श्यापेरेलिम् ने सन् १८८८ ई० में इस ग्रह का एक बहुतही सुन्दर चित्र लियः था। इस चित्र से फ्लागस्टाफ के उतारे हुए चित्रों को परस्पर मिलान करने पर बहुत से विशेष नवीन स्थान मङ्गल पृष्ठ पर विदित हुए हैं। इन बारहो चित्रों का सविस्तर ब्योरा इस छोटे लेख में कथमपि नहीं आसकता है इसलिये लेख में केवल विशेष उपयोगी वस्तुओं ही का सारांश लिखा गया है।

मंगल के दो चित्रों से सिद्ध होता है कि वह पृथ्वी की भांति

पश्चिम से पूर्व की ओर घूमता है। इसके पृष्ठ पर बहुत से ऐसे प्रकाशवान स्थान देखे गए हैं कि जिनके चारों ओर काली धारियां हैं। इन धारियों को जितनी ही सावधानी से वेध कर के देखा गया है उतनीही ये धारियां सुडौल ज्ञात होती हैं। इन धारियों को वेध करने वाले मंगल के पृष्ठ पर की बड़ी बड़ी नहरें बतलाते हैं। ग्रह के मध्य स्थल में पुच्छल तारे की भांति एक डमरूमध्य है। इस डमरूमध्य के चारों ओर भी काली लकीरें हैं जो कि कुछ दूर जाकर दूसरी काली लकीरों से मिल गई हैं। इसी प्रकार मंगल के पृष्ठ पर और बहुत सी काली लकीरें हैं जिनसे कहीं त्रिभुजाकार कहीं चतुर्भुजाकार औरकहीं वृत्ताकार प्रकाशवान स्थल घिरे हुए हैं। कहीं कहीं बहुत सी लकीरें इधर उधर से आकर एकही स्थान पर मिल गई हैं अर्थात् मंगल का पृष्ठ प्रायः चारखाने कपड़े की भांति इन्हो लकीरों से भरा हुआ है। इन काली धारियों के बीच के स्थान कई एक स्थानों पर मैले तांबे के रंग के हैं जिन्हें वेध करने वाले उपजाऊ स्थल अर्थात् उर्वरा भूमि बताते हैं।

ऊपर कहा जा चुका है कि ध्रुव-खोलों के गलने से कभी कभी गहिरा नीला रंग दिखाई देता है। वह जान पड़ता है कि मंगल का ध्रुवीय सागर है जो अधिक सरदी पाकर जम कर बर्फ हो जाता है। ज्योतिषियों और वैज्ञानिकों के मत से अब वह समुद्र नहीं है, चाहे इसके पूर्व वह समुद्र रहा हो। प्रोफेसर पिकरिंगस ने उन गहिरी नीली धारियों को पोलारिसकोप से देख कर यह सिद्ध किया कि उनमें जल नहीं हैं। ३१, मई सन् १८९४ ईसवी में जब कि श्वेत खोलियां बड़ी विस्तृत दिखलाई पड़ी थीं उस समय ध्रुवीय-समुद्र का रंग गहिरा नीला था, जिससे यह ज्ञात होता है कि यदि समुद्र वहां पर है तो वह बहुत गहिरा है; उस समय उसका विस्तार ३५० मील का था जो कि धीरे धीरे देखते देखते लोप हो गया। इस प्रकार इस समुद्र के लोप हो जाने से प्रायः और और स्थान जो पृष्ठ पर इसी प्रकार दृश्य होकर लोप हो जाते हैं उन्हे समुद्र कहना असंभव जान पड़ता है। लोवेल ने सन् १८९४ ईसवी में पहिले पहल यह देखा कि काले स्थान ज्यों के त्यों हैं अर्थात् उनमें कुछ भी परिवर्त्तन न हुआ।

परन्तु थोड़े दिनों के अनन्तर यह देखा गया कि गहिरे काले भाग कम काले और उज्वल भाग अधिक उज्वल हो चले। ज्यों ज्यों उनमें परिवर्तन होता जाता था त्यों त्यों उनके रंग बदलते जाते थे। कभी ये नीले हरे होकर फिर नारंगी के रंग की तरह हो जाते थे। पहिले जो खाड़ियां जान पड़ती थीं अब वे बहुत ही काली दिखलाई देने लगीं। इसी प्रकार उसके पिण्ड पर और कितने स्थान अपना अपना रंग परिवर्तन करने लगे। इस से स्पष्ट है कि रंग के बदलने का मुख्य कारण जल है। यदि जल है तो कहां से आया इसे आगे कहेंगे। बहुतों के मत से केवल जलही रंग बदलने का कारण नहीं है। वे कहते हैं कि गहिरा हरा रंग पत्तियों का है, जो पृथ्वी की पत्तियों की तरह पतझड़ आने तक अपना रंग परिवर्तन किया करती हैं। यही मत प्राय: अब दृढ़ माना जाता है। इस लिये स्पष्ट है कि यदि गहिरा हरा रंग जल का नहीं है तो मंगल पर जल बहुत ही कम है।

मंगल पृथ्वी से छोटा है इस लिये इसके पिण्ड के अवयवों में बहुत शीघ्र परिवर्तन होता है। यद्यपि पृथ्वी के पश्चात् इसका जन्म हुआ है, तथापि यह पृथ्वी से अधिक जर्जर अर्थात् वृद्ध हो गया है। इसका मुख्य कारण यह है कि छोटा पदार्थ अपनी उष्णता शीघ्र ही बाहर निकाल देता है। ज्यों ज्यों यह वृद्ध होता जाता है त्यों त्यों उसके पृष्ठ पर के समुद्र सूखते जाते हैं। और पानी केवल पृष्ठ के नीचे कन्दराओं में रह जाता है। इससे स्पष्ट हैं कि कुछ दिन में मंगल का पृष्ठ भी जल रहित हो चन्द्र के समान मरुस्थल हो जायगा। अभी अवस्था मालव और मरुस्थल के बीच में है अर्थात् समुद्र सूख कर मरुस्थल नहीं हो गए हैं। बहुत से सूखे समुद्र तल अभी आस पास के स्थलों से नीचे हैं जिससे बाहरी पानी उनमें इकट्ठा हो सकता है। जान पड़ता है कि श्वेत खोलियां ही मंगल वासिओं को पानी के लिये एक मात्र आधार हैं। श्वेत खोली जब ऋतु पाकर गलती है तो पानी आकर्षण बल से पूर्वापरीय व्यास की ओर दौड़ता है और इस प्रकार सब स्थानों पर जल पहुंच जाता है।

यदि मंगल पर कोई जीव बसते हों तो विशेष संभव है कि दिन दिन जल के नाश होने से एक दिन जल बिना उन सब जीवों का नाश हो जाय। क्योंकि बिना जल जीव कथमपि नहीं जा सकते। ऐसी अवस्था में जब कि मंगल के पृष्ठ पर जल बहुतायत से नहीं पाया जाता तो वहां के रहने वालों ने अवश्य कोई न कोई युक्ति अपने प्राण बचाने के लिये निकाली होगी। प्रायः पृथ्वी पर जिन स्थानों पर पानी की संकीर्णता रहती है दूर की नदियों से नहर काट काट कर उन स्थानों को सींचते हैं। इसलिये मंगल-वासी भी ध्रुवीय श्वेत खोली से नहर काट कर संपूर्ण उपयोगी स्थानों में पानी ले जाते हों तो कोई आश्चर्य्य नहीं। श्वेत खोली के अतिरिक्त वहां और स्थान में जल की संभावना नहीं पाई जाती। इसलिये कदाचित् नीली धारियां जो संपूर्ण पृष्ठ पर फैली हुई हैं, इन्हीं नहरों की जल रेखा हों, जिन्हें वहां के मनुष्यों ने पानी ले जाने के लिये बनाया हो तो कोई आश्चर्य्य नहीं।

वेध से तांबे के रंग वाली धारियों में देखा गया है कि वे जाल के समान बहुत सी सीधी काली धारियों से भरी हुई हैं, ये काली धारियां गहरे नीले रंग के स्थलों से निकल कर सीधे स्थल देशों के बीचो बीच चली गई हैं जहां पर ये पहुंच कर और और सीधी काली धारियों से मिली हुई हैं। ये धारियां एक स्थान से दूसरे स्थान तक बहुत तो सरल-रेखाकार और बहुत सजातीय वक्र-रेखाकार हैं। देखने से उनकी चौड़ाई भी अधिक नहीं ज्ञात होती है। प्रायः वे ३० मील के लगभग चौड़ी हैं। केवल थोड़ी सी काली धारियां ऐसी हैं कि जिनकी चौड़ाई लगभग १५ मील के है। सब से विचित्रता इन काली धारियों में यह है कि उनकी चौड़ाई एक छोर से दूसरी छोर तक तुल्य है। केवल जहां से ये निकलती हैं वहां पर, कुछ दूर तक ये कुछ अधिक चौड़ी हैं। कहीं कहीं इन काली धारियों की लम्बाई बहुत ही अधिक है। सब से लम्बी का मान ३५४० मील है, इससे छोटी २४०० मील और इस से भी छोटी १४५० मील है। सब से छोटी का मान २५० मील है। इन धारियों में कुछ को छोड़ कर और सब प्रायः वृत्ताकार हैं।

पहिले पहल इन नहरों को श्क्रापेरिली साहेब ने सन् १८७७ ई० में देखा था। इस विचित्रता के प्रकाश करने पर पहिले किसी ने उसका विश्वास न किया। सन् १८७९ ई० में उपरोक्त साहेब ने फिर वेध करके देखा कि पहिले जहां एक नहर देखी गई थी वहां अब दो समानान्तर नहरें हो गई हैं। ऐसी अवस्था एक दो स्थान की न थी पर बीसों स्थानों पर यही दृश्य देखा गया। तब वर्षों तक उपरोक्त साहेब को छोड़ कर दूसरा इन बातों पर विश्वास न करता था। पर इसके पश्चात् बहुत से ज्योतिषियों ने वेध कर साहेब के वाक्य को समर्थन कर पुष्ट किया। नहरों की संख्या फ्लागस्टाफ के वेधालय से १८३ सिद्ध हुई है।

जितना ही सूक्ष्म रीति से नहरों का वेध किया जाता है उतनाही स्पष्ट रूप से यह सिद्ध होता है कि नहरें स्वाभाविक नहीं हैं किन्तु बनाई हुई हैं। क्योंकि यदि ये स्वाभाविक प्रकृति से उत्पन्न हुई होतीं तो —

(१) वे इतनी सुडौल कथमपि न होतीं।

(२) एक ओर की बहुत सी नहरें दूसरी ओर की बहुत सी नहरों से कथमपि एकही स्थान पर न मिलतीं। कभी कभी देखा गया है कि जहां पर पहिले नहरें थीं वहां पर अब कुछ नहीं दिखाई पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि वे किसी ऋतु में देख पड़ती हैं और किसी में नहीं।

वास्तव में इन सब धारियों को पानी की नहरें मानना असंभव समझ पड़ता है। पहिले तो यह कि ये सब धारियां एक ही समय पर अपने रङ्ग का परिवर्तन नहीं करतीं। दूसरे यह कि इतनी चौड़ी नहरें बनाना मनुष्य की सामर्थ्य से बाहर है इसलिये वे सब जल की नहरें कथमपि नहीं हैं। संभव है कि वे बहुत से उपजाऊ स्थल हों जो अपना रङ्ग परिवर्तन कर सकते हैं। और छोटी छोटी नहरें उनके चारो ओर सींचने के लिये कटी हों। यह अनुमान पहिले पहल प्रोफेसर पिकरिङ्ग ने किया था। वास्तव में बुद्धि से भी यही समझ पड़ता है कि वे सब जल की नहरें नहीं हैं किन्तु वे जल की नहरों के समीप के उपजाऊ स्थान हैं। वेध से देखा गया है कि केवल

नहरों के स्थान अपना रङ्ग बदलते हैं पर उनकी चौड़ाई में कुछ भी विकार नहीं होता। उपजाऊ स्थान के समीप जल की नहरें अतिशय कम चौड़ी होने के कारण दूरबीन से देख नहीं पड़ती हैं।

उज्ज्वल स्थान जिनका रङ्ग कुछ पीलो लिए हुए है और जो समस्त मङ्गल की भूमि पर फैला हुआ है, वे सब मरुस्थल जान पड़ते हैं। पृथ्वी पर के मरुस्थल बेल्यून पर चढ़ कर आकाश से देखने से फीके पीले रङ्ग के दिखाई देते हैं। इन स्थानों और नहरों में ऐसा सम्बन्ध है कि जहां ये स्थान है वहां अवश्य दो एक नहरें आकर मिली हैं। इस प्रकार ये नहरें उज्ज्वल और काले स्थानों को मिला देती हैं। जहां पर उज्ज्वल चिन्ह हैं वहां पर नहरें हैं इससे अवश्य है कि इनमें कुछ न कुछ परस्पर संबन्ध है।

जहां केवल एक ही नहर इधर उधर से आकर एक स्थान पर मिलती है वहां पर संयोग-स्थान वृत्ताकार दिखाई देता है। पर जहां पर दो समानान्तर नहरें इधर उधर से आकर मिलती हैं उस स्थान का रूप गोल कोने वाले तारे के सदृश है। बहुत से उज्ज्वल चिन्हों का व्यास १२० मील से लेकर १५० मील तक है और छोटे चिन्हों का व्यासमान ७५ मील के लगभग है। ये चिन्ह भी नहरों की भांति कभी कम और कभी अधिक प्रकाशवान् दिखाई देते हैं। नहरों की तरह इनके रङ्ग के परिवर्तन से यह सिद्ध किया गया है कि मरुस्थल के बीच के ये शाद्वलस्थल (Oasis) हैं।

उज्वल स्थल की भांति मङ्गल के काले स्थलों में भी बहुत से चिन्ह दिखाई देते हैं। ये चिन्ह उज्वल स्थलों की भांति वृत्ताकार नहीं किन्तु त्रिभुजाकार हैं। ये चिन्ह वहां पर देखे जाते हैं जहां से ये नहरें निकलती हैं। ये स्थल जहां से नहरें निकलती हैं पानी के खजाने नहीं हैं कि जहां से पानी निकल कर और स्थानों पर जाता है। परन्तु नहरें अवश्य इस स्थान से होकर जाती हैं और अन्य स्थानों की तरह ये भी उपजाऊ स्थान अथवा बन हैं।

ऊपर यह दिखा चुके हैं कि—

(१) मनुष्य की जीवन संबन्धी सभी उपयोगी वस्तु मङ्गल के

पृष्ठ पर हैं यदि मङ्गल पर मनुष्य हों तो उनके जल का आधार केवल नहर ही हैं ।

(२) इसके पृष्ठ पर बहुत से चिन्ह अर्थात् स्थान हैं जो कि उपजाऊ ज्ञात होते हैं । इस लिये यदि पृथ्वी की भांति वहां पर भी मनुष्य इत्यादि जीव रहते हों तो कोई आश्चर्य्य नहीं ।

मनुष्य शब्द से मेरा यहां पर यह अभिप्राय नहीं है कि सम्यक् प्रकार से वे पृथ्वी पर के मनुष्य के आकार के हों । चाहे पृथ्वी के मनुष्य से उनका आकार कैसाही भिन्न क्यों न हो पर वे अवश्य पृथ्वी पर के मनुष्य की भांति बुद्धि, बल, इत्यादि रखते होंगे ।

भारतवर्ष के ज्योतिष-सिद्धान्त-वेत्ता इसे भौम कहते हैं जिस का पाणिनि-व्याकरण से अर्थ पृथ्वी का पुत्र हुआ । इसलिये भारतवासियों के मत से भी स्पष्ट है कि माता का कुछ न कुछ अंश और स्वभाव पुत्र में अवश्य रहता है अर्थात् पृथ्वी की भांति मङ्गल पर भी मनुष्य इत्यादि जीव और दूसरी वस्तुओं का होना सर्वथा संभव है । जितना ध्यान यूरोप में चन्द्र की ओर व्यर्थ झुका था यदि मङ्गल की ओर झुका होता तो संभव है कि अब तक इस ग्रह के विषय में बहुत कुछ ज्ञान हुआ होता । संभव है कि एक दिन ऐसा आवेगा कि पृथ्वी पर के लोग मङ्गल वासियों से सङ्केत द्वारा वा और किसी प्रकार से बात चीत करेंगे ॥

इतिहास* ।

(पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री द्वारा अनुवादित ।)

कोऽन्यःकाल मतिक्रात नतु प्रत्यक्षतां क्षमः ।
कविप्रजापतींस्त्यक्त्वा रम्यनिर्माणशालिनः ॥†

राजतरंगिणी ।

(१) यह विषय बहुत गंभीर है । इस विषय पर जितना लिखा जाय उतना थोड़ा ही है । क्योंकि प्रथम तो यह विषय आप ही बहुत बड़ा है इसके सिवाय इसके अंग उपांग भी अनेक हैं । वह इस प्रकार कि, इसके लेखक को उचित है कि वह संपूर्ण जगत के इतिहास को हस्तामलकवत् ज्ञात कर लेवे; ऐसा

---

* अब आज कल हमारे यहां पठन पाठन की चर्चा उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है । यह बात हमारे होनहार मंगल एवं कल्याण का पूर्वरूप है । इस दशा में हमारे कृतविद्य लोगों का प्रयत्न यदि एकसा चलता रहेगा तो संभव है कि थोड़े ही दिनों में विद्या से हम लोगों को भी वह फल प्राप्त होने लगेगा जिसे अपर विद्यातत्व-पारदर्शी लोग आज पा रहे हैं ।

आत्मश्लाघा लोलुप तथा स्वार्थी विद्वान् उतने पूज्य और मानार्ह नहीं हो सकते जितने आत्मकर्त्तव्यदक्ष तथा परोपकारी विद्वान् सर्व्वसाधारण के माननीय तथा प्रेमपात्र हो सकते हैं । कई लोग ऐसे विद्वान् होते हैं जो अपने ज्ञान का फल आप ही चखते हैं; और कई लोग ऐसे विद्वान् होते हैं जो अपने ज्ञान का फल दूसरों को भी चखाते हैं । विष्णु कृष्णशास्त्री इनमें से दूसरे वर्ग के विद्वान् थे । अर्थात् आपने अपनी विद्या द्वारा जो ज्ञान प्राप्त किया था उसे आपने अपनी ही भलाई में व्यय नहीं किया, किंतु आपने उसका व्यय इतनी उदारता के साथ किया कि जिसमे प्रत्येक उत्साही मनुष्य लाभ उठा सके । यही कारण है कि आज दिन वह आबाल वृद्ध के प्रातःस्मरणीय हो रहे हैं, और उनसे बढ़ के जो कोड़ियों स्वार्थी विद्वान् हो गए हैं उनका कोई आज नाम तक नहीं जानता ।

भरोसा है कि चिपलूणकर जी के लेख के इस अनुवाद को पढ़ हमारे आधुनिक विद्वानों में से एक दो तो अपनी विद्या द्वारा सर्व्वसाधारण को लाभ पहुंचाने के लिये प्रोत्साहित होंगे ।

† मनोहर (सृष्टि के) निर्माण करने वाले कवि और प्रजापति के सिवाय व्यतीत काल की घटनाओं को प्रत्यक्षरूप से प्रदर्शित करने के लिये अन्य कौन समर्थ है ।

करने से उसे जो प्रधानतः बड़े बड़े सिद्धांत दीख पड़ेंगे उन्हें उसे उल्लिखित करना चाहिए; अनंतर प्रत्येक मुख्य मुख्य राष्ट्र के इतिहास को सविशेष अपने विचार क्षेत्र में लेकर उसे उसका उल्लेख करना चाहिए। उसी प्रकार भूवर्णन और कालक्रम के–कि जो इतिहास के चक्षु कहे जाते हैं–विषय में, देशों की अवस्था विशेष के फलों के विषय में अर्थात् अमुक अमुक देश की रचना अमुक अमुक प्रकार की होने के कारण इस इस प्रकार के परिणाम उत्पन्न हुए; विद्या और कलाओं के विषय में अर्थात् उनकी उन्नति किस किस प्रकार से उत्तरोत्तर होती गई; तात्पर्य्य यह की लोगों की रीति भांति, रहन सहन, चाल चलन आदि छोटी मोटी बातों के विषय में भी इतिहास में उल्लेख होना चाहिए। सारांश; इतिहास अर्थात् इतिवृत्त। आदि से लेकर आजलों जो जो घटनाएं हुई हैं उन सबके विषय में उल्लेख जिस ग्रंथ में पाया जाता है उसका नाम इतिहास है।

(२) इस शब्द की व्युत्पत्ति किंचित् कौतूहलोपादक है अतः प्रथम यहां पर उसका वर्णन करते हैं। यह शब्द तीन शब्दों के मेल से बना है; 'इति ह, आस' इनका अर्थ "इस प्रकार से हुआ" ऐसा है।* तब तो इन शब्दों का अर्थ "पिछली घटनाओं का वृत्तान्त" यही हुआ। पर मूल के और अब के अर्थ में संप्रति यह अन्तर हो गया है। इस शब्द का मूल का अर्थ पुराणांतर्गत उपकथा अर्थात् अप्रधान वार्त्ता था; जैसी कि भिन्न भिन्न प्रसगों पर ऋषियों ने धर्मराज को प्राचीन राज्यों की कथा वार्त्ताएं सुनाई थीं। परन्तु संप्रति इस शब्द का प्रयोग अंगरेज़ी के "हिस्टरी"† शब्द के अर्थ में किया जाता है। इससे यह बात स्पष्टतया निर्धारित होती है कि प्रथम के लिये प्रमाणस्वरूप पुराणांतर्गत ऋषियों के केवल वाक्य ही हैं किन्तु दूसरे के लिये उनसे कहीं अधिक बलिष्ट अनेक प्रमाण अपेक्षित हैं।

* इन शब्दों में "ह" केवल अव्यय है। इसका प्रयोग वेदादि प्राचीन ग्रंथों में पाया जाता है।

† लेखक ने "बखर" शब्द का प्रयोग किया है। मराठी में "बखर" शब्द का अर्थ आधुनिक इतिहास शब्द के ऐसा ही होता है।

(३) ऊपर 'इतिहास' शब्द का जो पुराना अर्थ कहा गया है उससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि अर्वाचीन अर्थ में वह शब्द जिन ग्रन्थों के लिये प्रयुक्त हो सकता है वे ग्रन्थ प्राचीन समय में हमारे यहां नहीं थे अर्थात् ग्रीक और रोमन लोगों में सप्रमाण एवं यथार्थ इतिहास लिखने की जिस प्रकार आगे प्रथा पड़ गई उस प्रकार की प्रथा अपने यहां कभी भी प्रचलित हुई होगी सो नहीं जान पड़ता। एक प्रकार से यह एक बड़ी कौतूहलास्पद बात है। क्योंकि जो प्राचीन हिन्दू लोग उस समय समस्त राष्ट्रों में प्रत्येक विषय में अग्रगण्य थे; जिनके यहां विद्या ने तो मानो पूर्ण रूप से अवतार ही लिया था; उन लोगों द्वारा इसी एक अंग की उपेक्षा होनी क्या कुछ कम आश्चर्य्य की बात है? है सचमुच यह ऐसी ही। तथापि उसके न होने के कारण स्वरूप में, हम समझते हैं यहां पर कतिपय बातों का उल्लेख किया जासकता है। इतिहास का प्रारंभ कब होने लगता है, इस विषय का जब हम किंचित् विचार करने लगते हैं तो यह ज्ञात होता है कि, जिस समय राष्ट्रों में बड़े बड़े युद्ध, बड़ी बड़ी राजक्रांति आदि बड़ी बड़ी घटनाएं होती हैं तभी उसका प्रारंभ होता है। एथेन्स, रोम और इंग्लैंडादि के लोगों में; उसी प्रकार मुसलमान मुगल, और मराठे आदि लोगों में भूतपूर्व घटनाओं के वृतान्त के लिखने की प्रथा ऐसेही प्रसंगों से प्रचलित हुई। अस्तु; यह सब यदि सत्य है, तो प्राचीन हिंदू लोगों के समय में इतिहास ग्रन्थों का अभाव क्यों रहा इसका कारण बहुतांश में ज्ञात हो सकता है। उनके देश की चतुःसीमाएं प्राय: अलंघ्य होने के कारण प्राचीन चीनी लोगों की नांई हमारे पूर्व्वज भी अपने स्थान में ही सुख शान्ति के साथ बने रहे। ग्रीक और रोमन आदि लोगों को जिस प्रकार अपने पड़ोसी लोगों से सदा लड़ना भिड़ना पड़ता था, वैसे यहां के लोगों को लड़ने भिड़ने के अवसर उपस्थित न होने के कारण, प्राचीन हिन्दू लोगों को अपर राष्ट्रों के साथ कभी युद्ध करना ही नहीं पड़ा। अब यह बात सच है कि यहां के राजे रजवाड़ों में परस्पर युद्ध होते होंगे पर वह युद्ध इतिहास रूप से वर्णन करने के योग्य होते होंगे ऐसा कुछ नहीं जान पड़ता। क्यों-

कि उस समय के संस्कृत के जो कुछ ग्रन्थ आज दिन उपलब्ध हो सकते हैं, उनमें ये उल्लेख पाए जाते हैं कि उस समय अनेक राजागण स्वतन्त्रता पूर्व्वक राज्य करते थे; पर उन ग्रन्थों में यह बात कहीं नहीं पाई जाती कि किसी एक राजा ने सब राजाओं को पराजित करके अपने लिये सार्व्वभौमत्व प्राप्त किया हो। सारांश, इस कथन से यही बात निष्पन्न होती सी जान पड़ती है कि उस समय तुमुल युद्ध, बड़ी राज्यक्रान्ति आदि जो इतिहास की सामग्री हैं उनका अभाव होने के कारण इतिहास लिख रखने की प्रथा यहां प्रचलित नहीं हो सकी होगी। इसके सिवाय दूसरा एक बड़ा भारी कारण यह भी जान पड़ता है कि हम लोगों की आसक्ति जितनी निवृत्तिमार्ग की ओर रहती है उतनी वह प्रवृत्तिमार्ग की ओर नहीं पाई जाती। सब जग मिथ्या है, संसार के यावत् व्यवहार अनित्य हैं; यह सब ईश्वरी माया का खेल है।

जग ते रहु छत्तीस ह्वै रामचरण छत्तीन।

ऐसे ऐसे विचारही सदा जिनके मन में विद्यमान रहते हैं, जिनकी चित्तवृत्ति सदा परमार्थही की ओर संलग्न रहती है ऐसे लोगों को रक्तपात तथा राज्यों के हेर फेर आदि के वर्णन कर नर-स्तुति करने की यदि घृणा होगई हो तो इसमें आश्चर्य्यही क्या है? * तात्पर्य्य यह कि हमें अपने देश में इतिहास कर्त्ता न होने के ये दो गुरुतर कारण जान पड़ते हैं।

(४) ऊपर जो यह लिखा जा चुका है कि प्राचीन हिन्दू लोगों में इतिहास लिखने की परिपाटी नहीं थी इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि इस विषय का परिचय प्राप्त करने के लिये हमारे पास कोई साधन ही नहीं हैं। इस लेख के आदि में जो पद्य लिखा गया है उससे हमारे विज्ञ पाठक गण सहजही में जान सकते हैं कि हमारे पूर्वज लोग इतिहास की महिमा को नहीं जानते थे ऐसी बात नहीं है। हां, यह बात भलेही हो कि संस्कृत में इतिहास के अच्छे

---

* कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना। शिर धुनि गिरा लागि पछिताना।

तु० रा० बाल कांड।

ग्रन्थ न हों, पर मूल पूर्व घटनाओं को लिख रखने का हम लोगों को चाव ही नहीं था यह बात सर्वथैव निर्मूल है। इस लेख के आदि का श्लोक जिस ग्रंथ से उद्धृत किया गया है वह "राजतरंगिणी" ग्रंथ ही इस विषय का एक बड़ा भारी प्रमाण है। इस ग्रंथ में काश्मीर देश के राजाओं का वर्णन आदि से लेकर उस देश के अकबर के आधीन होने तक का पाया जाता है। इस इतिहास को भिन्न भिन्न पंडितों ने अपने अपने समय पर्य्यन्त ला पहुंचाया है। संस्कृत के ग्रंथ लेखकों का समय निर्द्धारित करने के लिये यह ग्रन्थ बहुत उपयोगी हो सकता है। उक्त उदाहरण से हमारे विवेकी पाठकगण जान सकेंगे कि हमारे पूर्व्वज लोगों को इतिहास लिखने का चाव नहीं सा था यह बात नहीं हैं। हां यह बात अवश्य रही होगी कि इस ओर उन लोगों की प्रवृत्ति अधिक नहीं रही होगी। पर तो भी उक्त जैसे ग्रंथ प्राचीन काल में कुछ कम नहीं लिखे गए होंगे। आज दिन हमारे वे ग्रंथ काल के उदर में यद्यपि लीन होगए हैं। तथापि संभव है कि उनमें से कुछ ग्रंथ कहीं उपलब्ध हों। हमारा यह अनुमान यदि सत्य भी हो जाय तो भी इससे हम लोगों को तादृश लाभ की संभावना नहीं है क्योंकि आज कल अनुसंधान और आविष्कार करने का ठेका तो हम लोग दूसरों को ही दे चुके हैं!

(५) अपने देश का प्राचीन इतिहास हमें उक्त ग्रंथों से तो ज्ञात होता ही है पर उनके अतिरिक्त और भी साधन हैं जिनके द्वारा हमें वह ज्ञात हो सकता है। प्राचीन ग्रीक लोग बड़े अनुसंधान प्रिय थे; उन्हें हमारे देश का यद्यपि बहुत कुछ ज्ञान नहीं था; तथापि उनके ग्रंथों में हमारे देश के उत्तर विभाग के लेख पाए जाते हैं। वे लेख यहां के प्राचीन इतिहास का परिचय कराने के लिये कुछ सहायक हो सकते हैं। मिश्र देश में टालेमी नाम का एक विख्यात भूगोलवेत्ता हो गया है, उसके ग्रंथों से, उसी प्रकार चीनी लोगों के ग्रंथों से प्राचीन भारत के विषय में बहुत कुछ बातें ज्ञात हो सकती हैं। इसी प्रकार भूतपूर्व्व जयस्तंभ ताम्रपत्र और गुफा मंदिरों द्वारा प्राचीन काल का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। इन के सिवाय "मुद्राराक्षस" "मृच्छकटिक" आदि ऐतिहासिक

नाटकों द्वारा भी प्रसंग विशेष पर प्राचीन इतिहास की कुछ बातें ज्ञात हो सकती हैं। तात्पर्य्य संप्रति हमें अपने देश के इतिहास का परिचय इसी प्रकार की स्फुट सामग्री से प्राप्त हो सकता है। आदि से शृंखलाबद्ध लिखा हुआ इतिहास यदि होता, तो उससे जैसे पूर्ण ज्ञान की संभावना थी वैसी अब बिलकुल नहीं है।

(६) इतिहास का अभाव हमारी प्राचीन विद्या का बड़ा भारी दूषण है। अब नीचे संक्षेप से इस बात का वर्णन लिखा जाता है कि यह शास्त्र प्रथम कहां उद्भूत हुआ और वहां से इसका कहां कहां और कैसे कैसे उत्कर्ष हुआ।

समस्त जग में जो ज्ञान फैला हुआ है उसकी उत्पत्ति के स्थान प्रधानतया दो हैं। एक भारतवर्ष; और दूसरा ग्रीस अर्थात् यूनान देश। पहिला देश जैसे एशिया महाद्वीप का नाका था, वैसे ही दूसरा यूरोप का था। अर्वाचीन काल में यूरोप के सब देशों में जो उन्नति हुई है उसकी मातृभूमि एकमात्र यूनान देश है। अब इधर विद्या कलादिकों की इंग्लैंड प्रभृति देशों में बहुत उन्नति हुई है और उत्तरोत्तर वह बढ़ती जाती है यह बात सच है पर जब हम इन सब के आदिपीठ का अनुसंधान करते हैं तो हम उक्त यूनान देश पाते हैं। सारांश यूरोप में इतिहास लिखने की जो परिपाटी प्रचलित हुई है उसका कारण उक्त यूनान देश ही है। इस देश में जो पहिला इतिहास लेखक हुआ है उसका नाम हिरोडोटस् था। जैसे होमर को लोग आद्यकवि कहते हैं उसी प्रकार इसको आद्य इतिहासकार कहते हैं। यूनानी लोगों का पारसीक लोगों के साथ जिस समय घमासान युद्ध हो रहा था उसी समय इसका जन्म हुआ था। इसने दूर दूर के देशों में यात्रा करके अपने इतिहासोपयोगी बहुत सी सामग्री एकत्रित की थी और प्रथमतः यूनानी भाषा में इतिहास लिखा था। उसके देश में "आलिंपिक् गेम्स" नामक जो पांच पांच वर्ष में सार्वजनिक उत्सव होते थे उनमें से एक में उसने अपने उस इतिहास को अपने देश भाइयों को पढ़ सुनाया था। इस ग्रंथ का विषय देशाभिमान का होने के कारण अर्थात् उसमें यूनानी लोगों के पराक्रम के वर्णन के साथ साथ और भी अनेक कौतूहल की बातें

चतुराई से लिखी जाने के कारण वह ग्रंथ लोगों का बहुत ही प्रेम पात्र हो गया। उन लोगों को वह ग्रंथ इतना प्यारा लगा कि वहां पर एकत्रित हुए लोगों ने अपने यहां की नव विद्याधि देवताओं के नाम से उस ग्रंथ के नव सर्गों को तत्त्वण संयुक्त कर दिया। कहा जाता है कि इसी समय जब हिरोडोट्स अपना उक्त इतिहास लोगों को सुना रहा था, एक दूसरी चमत्कृतिजनक यह बात हुई कि, उस समाज में एक नव वर्ष का लड़का था वह उसके इतिहास को सुनकर इतना द्रवित हो गया कि उसके नेत्रों से आंसू प्रवाहित होने लगे। उस लड़के की उक्त अवस्था को देखकर हिरोडोट्स ने उसके पिता से यह भविष्य कथन किया कि यह तुम्हारा पुत्र बड़ा नामी इतिहासकार होगा। उसकी भविष्यद्वाणी वास्तव में सत्य हुई। वह छोटा बालक आगे यूनान देश का सुतरां समस्त जग का परमोत्कृष्ट इतिहासकार थ्यूसीडाइडीज हुआ। अस्तु; इसी प्रकार यूनान में और भी कई इतिहासकार हुए। उन सब में उक्त दोनो के समान विख्यात तीसरा इतिहासकार साक्रटीज़ का शिष्य ज़िनोफन हुआ। यूनानी लोगों के वीर्य्य और विभव का अस्त होने पर रोमन लोगों का उत्कर्ष हुआ। उस समय उनके यहां भी कई इतिहास लेखक हुए। उनके नाम ये हैं। लिव्ही, सालस्ट, सीज़र, प्लूटार्क, टासिटस् इत्यादि। हज़ार डेढ़ हज़ार वर्ष लों राजलक्ष्मी रोमन लोगों पर प्रसन्न रही पर उसके अनंतर उसने उन्हें छोड़ कर अरब और तुरक लोगों को अपना कृपापात्र बनाया। इन अरबों की शूरता के अतिरिक्त उनकी निज की बातें बहुत कम पाई जाती हैं। इन लोगों ने अपना धर्म यहूदी और ख्रिस्ती धर्म में कुछ न्यूनाधिक करके बना लिया था, उसी प्रकार से हिंदू और यूनानी लोगों की विद्या और कलाओं को लेकर उन्हें अपने नाम से प्रसिद्ध किया था। अन्यान्य बातों के सदृश इतिहास लिखने की परिपाटी भी उन लोगों ने जान पड़ता है यूनान से ही ली होगी। तात्पर्य्य यह कि इतिहास की इस प्रकार यूनान में उत्पत्ति हुई और वहां से वह सब जग में फैला। ऊपर यह बात उल्लिखित हो ही चुकी है कि आधुनिक अंगरेज़ लोगों ने इतिहास लिखने की परिपाटी उक्त यूनानी तथा रोमन लोगों से ही ली है; और संप्रति ये ही लोग विशेष

उन्नत होने के कारण इतिहास लिखने की उक्त परिपाटी इन्हीं लोगों में पाई जाती है। इसके सिवाय दूसरी एक बात यह भी है कि आज कल भूगोल का ज्ञान हो जाने के कारण अपर देशों के इतिहास भी इन लोगों ने लिख रखे हैं।

(८) इस विषय के प्राक्कथन के स्वरूप में जिन जिन बातों का वर्णन होना उचित था उनका यहां लों वर्णन किया गया। अब स्वयं इस विषय के संबंध से विचार करते हैं। प्रथमतः इतिहास से क्या लाभ होता है? आपाततः यह प्रश्न बहुत ही अनुचित जान पड़ता है और साथही यह भी जान पड़ता है कि ऐसा प्रश्न कोई करता ही नहीं होगा। क्योंकि इससे और कुछ लाभ न हुआ तो मनुष्य की निसर्गजात जिज्ञासा की तृप्ति तो होती है। यह क्या कुछ कम लाभ है? इस अंतिम लाभ के सिवाय इतिहास के पठन से और जो जो लाभ होते हैं उनका आगे यथास्थान उल्लेख किया ही जायगा। पर ऐसी अवस्था में भी ऐसे मनुष्य कम नहीं पाए जाते जिन्हें इतिहास में कुछ अर्थ नहीं जान पड़ता, अतः जो उसका तिरस्कार किया करते हैं, जिनके मन को ज्ञान का कभी स्पर्श ही नहीं हुआ, वा वैसा होने देने की ईश्वर की इच्छा नहीं जान पड़ती, वे लोग यदि उक्त जैसी सम्मति प्रकाशित करें तो कोई आश्चर्य्य की बात नहीं। पर कौतूहल की बात तो यह है कि जिन की विचारशक्ति प्रौढ और प्रखर दीख पड़ती है, और जो समंजसता के लिये गण्यमान्य समझे जाते हैं, उनकी भी इतिहास विषयक अरुचि कई बार देखी सुनी गई है। इसके उदाहरण स्वरूप में अंगरेज़ों के परम प्रसिद्ध ग्रन्थकार जानसन् का नामोल्लेख किया जा सकता है। इतिहास के विषय में और विशेषतः प्राचीन इतिहास के विषय में यह सदा अपना तिरस्कार ही प्रदर्शित किया करता। इस विश्वविख्यात ग्रंथकर्त्ता के कई विचार बड़े विलक्षण थे, उसमें यह भी एक उन कई दुराग्रहों में से था जो उसके साथ आजीवन पर्य्यन्त बने रहे थे। अस्तु। हमारे यहां भी यह कहने वाले लोगों का अभाव नहीं है कि हमें पिछली गई गुज़री बातों से क्या करना है? वे लोग गए आए पार पड़े। अब उनकी राम कहानी हमारे किस काम की? बाजीराव ने

दिल्ली को लेलिया, नाना फड़नवीस ने ऐसी चतुराई की, आदि बातों से हमें क्या लाभ ? हमारा मतलब तो आज कल की बातों से है। जिससे हमें न तो कुछ लाभ ही है और न कुछ हानि ही है ऐसी पुरानी बातों को संगृहीत करने, तथा पुराने लेखों के पढ़ने आदि के लिये बिना कारण परिश्रम करने से क्या लाभ ? साहब लोगों को कुछ काम नहीं रहता, उन्हींके ये सब काम हैं ! ऐसे बेमतलब के काम कौन करते बैठे। उनसे लाभ ही क्या होगा ? ठीकही है ! जब लों आयुष्य है तब लों खालेना, पीलेना, दुपहरिया के आराम में अंतर नहीं पड़ने देना, सायंकाल के समय अच्छे कपड़े पहनकर फिरने को जाना, गंधी की दूकान पर जाकर थोड़ी देर बैठना, (उद्धारक वा सुधारकों में अग्रगण्य होना हो तो) पुस्तकालय में जाकर दो चार घड़ी इधर उधर की बातें करके आराम के साथ अपने घर आना; इस श्लाघ्य रीति से जो लोग सदा अपना जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें बाजीराव से क्या मतलब और सिकंदर से क्या मतलब। अपने जीवन का जिस किसी को सदुपयोग करलेना हो उसे उचित है कि वह उक्त जैसे सद्गुरु के चरणों की शरण लेवे; क्योंकि संसार में यदि किसी ने तत्व को जाना है तो इन्होंने जाना है। फिर क्या देर है ? बाबा तुलसीदास जी अपनी रामायण में लिखते हैं।

जनि आश्चर्य्य करै सुनि कोई।
सत संगति महिमा नहिं गोई।
मज्जन फल पेखिय तत्काला
काक होहिं पिक बकउ मराला।

निदान इतिहास का नाम सुनकर भौंह चढ़ाने वाले उक्त दो प्रकार के लोग पाए जाते हैं। एक उक्त दुपहरिया में लेट लगाने वाले। इनकी सम्मति यथार्थ मे किसी अर्थ की नहीं होती, और उन की सम्मति को यदि कोई समादृत न करे तो उससे वह अपना अपमान हुआ सा भी नहीं मानते। उनका सुस्वादु भोजन, दुपहरिया का सोना, सुर्ती का सेवन, और गप शप करना आदि जब लों यथावत् निर्वाहित होता चला जाता है तबलों वह अपर किसी बात

को अणुमात्र भी चिन्ता नहीं करते। यह हुआ एक वृंद और यह है भी बहुत बड़ा। दूसरा वृंद जानसन् जैसे दुराग्रही और हठधर्मी लोगों का है। इनकी सम्मति अपर विषयों पर भलेही समादृत होती हो, पर जिन विषयों पर इन लोगों ने स्वप्न में भी दृक्‌पात नहीं किया, और जिन विषयों का मर्म जानने के लिये इनकी स्थूल बुद्धि स्वभावतः समर्थ नहीं है, उन विषयों पर प्रकाशित हुई उन की सम्मति को अनुचित मानने में कोई हानि नहीं है। बहुतेरे अंगरेज़ कवियों के ग्रंथों की जानसन् की लिखी हुई समालोचनाएं जितनी मान्य हैं वा किसी संगीत के ग्रंथ की, यदि वह आलोचना करता तो वह जितनी मानार्ह हो सकती, उतनी ही मानार्ह उसकी वर्त्तमान विषय की सम्मति भी मानी जा सकती है। तात्पर्य यही है कि इन दोनों वृंदों की आलोचनाएं विचार क्षेत्र में लेने के योग्य नहीं हैं। अब आगे इतिहास के जो जो उपयोग हैं उनके विषय में लिखा जाता है।

(८) एक उपयोग का अर्थात् जिज्ञासातृप्ति का अभी ऊपर उल्लेख होही चुका है। ईश्वर ने इस मनोधर्म को मनुष्य में अधिक प्रबलता रखी है। इसकी वास्तविक शक्ति का यथार्थ ज्ञान उन्नति के समय में नहीं हो सकता। क्योंकि उन्नति के समय में मनुष्य के मन की नैसर्गिक गति उसके शरीर की नांई समाज बंधनों के कारण बहुतांश में रुक जाती है: अर्थात् आदि में जैसी उसकी स्वेच्छा प्रवृत्ति हो सकती है, वैसी सुधार के काल में नहीं हो सकती। विचार का स्थल है, कि गगन मंडल के लोगों से मनुष्य का क्या संबंध है? चाहे पृथ्वी फिरे, चाहे सूर्य्य फिरे, चंद्र चाहे स्वयं प्रकाशित हो, चाहे परप्रकाशित हो, ग्रहमाला का मध्य चाहे पृथ्वी हो चाहे सूर्य्य हो, तारे चाहे जितने हों, इसमें मनुष्य का क्या हिताहित है? अभी कुछ दिनों के पूर्व्व लोग मानते थे कि सूर्य्य फिरता है, पर अब यह माना जाने लगा है कि पृथ्वी फिरती है, तो इससे यह तो हुआ ही नहीं कि रोगी मनुष्य निरुज हो गए हों, वा अकिंचन लोग धनाढ्य हो गए हों,? प्रचंड परिश्रम और अनुसंधान कर दूरवीक्षण यंत्र प्रस्तुत कर, नाना प्रकार के गणित कर, भिन्न भिन्न प्रमाणों को

एकत्रित कर गणक लोगों को वा सर्व्व साधारण को क्या लाभ हुआ ?— सच है। अणुमात्र भी लाभ नहीं हुआ! सब मनुष्यों की अपेक्षा अधिकतर चतुर माने गए साक्रेटीज़ ने यही उपदेश अपने शिष्यवर्ग तथा सब लोगों को किया था। पर ऐसे पंडित प्रकांड के उपदेश को सुनकर क्या लोगों ने तद्विषयक जिज्ञासा छोड़ दी? सूर्य्य के बिंबों का चंद्र ने ग्रास किया, वा शुक्र सूर्य्य के आड़ में आया, कि लोगों में से कोई भारतवर्ष के लिये, कोई कुमर द्वीप (अमेरिका) के लिये, कोई दक्षिण समुद्र के लिये अभी भी दौड़ते हैं वा नहीं? जिज्ञासा से प्रेरित हो कर प्राणपण के साथ भी लोग आकाशयान पर आरूढ़ हो कर मंगल का इतिवृत्त जानने के लिये यात्रा करते हैं वा नहीं? अस्तु; इस कथन से यह निष्पन्न होता है कि मनुष्य मात्र में जिज्ञासा की अत्यंत उच्छृंखलता पाई जाती है। यह स्पष्ट है कि यदि इसका सर्वथैव अभाव होता तो आज दिन संसार की आद्यावस्था में आकाश पाताल का अंतर नहीं होने पाता। सारांश गगन मंडल के दूर दूर के गोलों के विषय में यदि मनुष्य के मन में जिज्ञासा उत्पन्न होती है, तो जिस गोल पर वह रहता है उसके भिन्न भिन्न प्रदेशों में कौन कौन सी घटनाएं हुईं उन्हें जान लेने के लिये क्या वह उत्कंठित नहीं होगा?

(९) इतिहास के जिस उपयोग का ऊपर वर्णन किया गया है वह सब की अपेक्षा यद्यपि प्रथम, सरल और छोटा है; तथापि इतिहास के मूलारंभ का वही बीज स्वरूप कहा जाता है। उससे बढ़िया और दूसरा उपयोग नीतिशिक्षा का है। इतिहास में सज्जनों का जय और दुर्जनों का पराजय यद्यपि निरंतर नहीं पाया जाता, तथापि उनका परिणाम लग भग इसीके पाया जाता है। इसके सिवाय दूसरी यह बात भी लक्षित होती है कि सत्यता के साथ बर्त्ताव करने पर भी जब सदा यह नहीं देखा जाता कि उसका परिणाम अच्छा ही होता हो तो फिर यह तो स्पष्टही है कि दुष्टता के साथ बर्त्ताव करने पर उसका परिणाम कदापि अच्छा नहीं होगा! मनुष्य का सर्वथा यदि हित हो सकता है तो वह इसी मार्ग का अनुधावन करने से हो सकता है; कुमार्ग से उसका संपादित होना

तो सर्व्वतोभाव असंभव है। ऐसे ही घोर आपत्ति के समय भी जिन का धैर्य्यबल डगमगाता नहीं वे महानुभाव विपत्काल में भी जिस सुख का भोग करते हैं वह सुख दुष्ट एवं कुत्सित मन के लोगों को अपनी भाग्योन्नति के समय भी प्राप्त नहीं होता। कहने का तात्पर्य्य यही है कि, इस संसाररूप महानाटक में आज पर्य्यंत कौन कौन से पात्र अपनी अपनी भूमिका को समाप्त कर निष्क्रान्त हो गए इस बात का चित्त पर यदि भली भांति संस्कार हो जाय तो विवेकी मनुष्य को भले और बुरे मार्ग का ज्ञान होने में कुछ देर नहीं लगती। सच्चा सुख, सच्चा समाधान और सच्ची प्रतिष्ठा किस बात में है यह भी उसे ज्ञात होने लगता है। सहस्रों लोगों का अनुभव उसे थोड़े से में प्राप्त हुआ सा जान पड़ने लगता है, उसके योग से उसका विचार क्षेत्र दीर्घ हो जाता है; और वह यदि तादृश बुद्धि एवं दृढ़ निश्चय का हो, तो तुरंत ही किसी को अपना आदर्श मान लेता है और जैसे नाविक लोग ध्रुव नक्षत्र के आधार पर अपनी नौका को चलाते फिराते हैं, वैसे ही वह भी अपने आदर्श पुरुष के चरित को अपने सम्मुख रख तदनुरूप अपनी जीवन यात्रा को संपादित करता है। तात्पर्य्य, इतिहास से इस प्रकार सदुपदेश प्राप्त होता है, यही कारण है कि "इतिहास प्रत्यक्ष उदाहरणों द्वारा प्रदर्शित किया हुआ ज्ञान है"।

(१०) इतिहास से मन को उन्नति और प्रसन्नता भी प्राप्त होती है। अर्थात् उसके निरंतर के पठन पाठन से चित्त शान्त एवं स्थिर रहता है, और साथ ही साथ वह उन्नत भी होता जाता है। इसका कारण स्पष्टही है। किसी विद्वान् ग्रंथकार का वचन है कि "इस संसार में जो जो महा पुरुष होगए हैं उनके जीवनचरितों को इतिहास कहते हैं।" अर्थात् ऐसे पुरुष जो कार्य्य करते हैं उन्ही से इतिहास भरा रहता है उन्हें यदि उससे पृथक् कर दिया जाय तो उसमें रही क्या सकता है? कुछ भी नहीं रह सकता। सारांश आज पर्य्यंत इस धरातल के भिन्न भिन्न देशों में जो पुरुषरत्न हुए हैं उनका सत्समागम यदि सदा प्राप्त हो सके, तो इससे बढ़के और क्या लाभ हो सकता है? यूनान में प्लूटार्क नाम का एक नामी इति-

हासकार था; उसने अपने "श्रेष्ठजन चरितावली" नामक सर्व्व प्रसिद्ध तथा सर्व्वप्रिय ग्रंथ की भूमिका में लिखा है कि इस ग्रंथ में जिन श्रेष्ठ लोगों की उज्वल चरितावली लिखी गई है उसके मनन से मुझे जो लाभ हुआ है वह सर्व्वथैव अनिर्वचनीय है; किसी अनुचित कृत्य की ओर जब जब मेरा मन आकृष्ट होता, वा जब जब मुझे सदाचार विषयक अपना उत्साह कुछ क्षीण हुआ सा जान पड़ता, तब तब मैं इन लोगों के चरित पढ़ता; उनके द्वारा मेरी मनोवृत्ति पुनः पूर्व्ववत् हो जाती। अस्तु; सत्समागम की महिमा ऐसी ही है। हमारे भाषा तथा संस्कृत के कवियों ने इस सज्जन प्रशंसा के विषय में भिन्न भिन्न कथानक तथा दृष्टांतों द्वारा बहुत कुछ लिखा है। इन दृष्टांतों में से हमारे महाकवि बाबा तुलसीदासजी की लोहे पारस की प्यारी उपमा का यहां नामोल्लेख किया जा सकता है। * लोहा देखने में कितना खराब और कम कीमत का रहता है! पर ज्योंही उसका पारस मणि के साथ संघर्षण होता है त्योंही उसे सर्व्वोपरि श्रेष्ठधातु सुवर्ण का यथार्थ नाम प्राप्त हो जाता है! इसी प्रकार से मनुष्य का भला वा बुरा होना बहुधा उसकी उन अवस्थाओं पर निर्भर है जो उसे प्राप्त होती जाती हैं। किसी किसी की तो यह भी सम्मति है कि वह सब उन अवस्थाओं का ही फल है। अनुमान दो सौ वर्ष के पूर्व्व इंग्लैंड में लाक नाम का एक सुविख्यात तत्ववेत्ता था; उसीने यह सम्मति स्थापित की है। † इस सम्मति के पक्षपातियों का कथन यह है कि, मनुष्य का मन आदि में स्वच्छ दर्पण कैसा वा कोरे कागज कैसा शुद्ध रहता है। उस पर प्राक्तन अर्थात् आगे के भले बुरे किसी विकार का संस्कार नहीं रहता। वे आगे अपनी अपनी स्थिति विशेषानुरूप प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त होते हैं और तदनुसार उसका मन भले वा बुरे कामों की ओर आकृष्ट होता है। अस्तु; यह जो हो सो हो। पर इसमें तो अणुमात्र भी संदेह नहीं है कि मनुष्य को आगे जैसी संगति और अवस्थाएं प्राप्त होती जाती हैं वैसे वैसेही बहुधा उसका मन भला वा बुरा होता जाता है। संस्कृत में एक वाक्य है:-

---

* शठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परसि कुधात सुहाई॥

† प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते। भर्तृहरि।

अतृणे पतितो वन्हिः स्वयमेवोपशाम्यति ।

'जहां घांस पात कुछ नहीं हो वहां यदि आग गिर पड़े तो स्वयं बुझ जाती है।' सारांश इसी प्रकार से मनुष्य के अच्छे और बुरे गुणों का पूर्ण रूप से विकाश होने के लिये उस प्रकार की अवस्था के अनुकूल होना उसे परम आवश्यक है। बिचारने की बात है कि संप्रति हमारे यहां शिवाजी वा हैदर जैसे राज्यकर्त्ता क्यों नहीं उत्पन्न होते? अथवा नाना फड़नवीस जैसे राजनीतिज्ञ पुरुष क्यों नहीं उत्पन्न होते? इसका कारण किसी पर अविदित नहीं है। वह यही है कि वैसे गुण यदि किसी मनुष्य में हों तो भी उनका विकाश होने के लिये वर्त्तमान अवस्था में यत्किंचित् भी अवकाश नहीं है। इस प्रतिपादन से यह निष्पन्न हुआ कि किसी गुणविशेष का उत्कर्ष होने के लिये मनुष्य को तदनुकूल स्थिति की नितांत आवश्यकता है। वैसे मनुष्य के सत्समागम का लाभ प्राप्त होना यह भी उक्त स्थितिविशेष में से एक प्रधान बात है। इस धरातल पर जो जो नामी पुरुष हो गए हैं उनको यदि वैसा सत्समागम प्राप्त नहीं होता तो वे वैसे कदापि नहीं होते। अब एक बिलकुल इधर का ही उदाहरण लीजिए। इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध ग्रंथकार जान् स्टूअर्ट मिल को, जिसे हुए अभी बहुत दिन नहीं हुए, यदि उसके पिता का सत्संग प्राप्त न हुआ होता तो यह कब संभव था कि उसकी बुद्धि को इतनी प्रगल्भता प्राप्त हो जाती। निःसंदेह उसकी बुद्धि को इतनी परिपक्वता कदापि प्राप्त नहीं होती। जब कि वह बुद्धिमान् था तब तो वह किसी न किसी प्रकार से निःसंदेहही प्रसिद्ध होता; पर इतनी योग्यता उसे अन्यथा कदापि प्राप्त नहीं होती। इस बात को इस ग्रंथकार ने "आत्मरचित चरित में" स्वयं स्वीकृत किया है। इस ग्रंथ में वह लिखता है कि पच्चीस वर्ष के पूर्व्व जन्म ग्रहण कर के जितना ज्ञान मैं संपादित करता उतना मैंने आज अपने पिता की शिक्षा से प्राप्त कर लिया। अस्तु; इसी प्रकार से प्राचीन काल के शिकंदर, हनिबल, सिपिओ प्रभृति तथा अर्वाचीन काल के अपने यहां के जेठे बाजीराव, टीपू सुलतान आदि का नामोल्लेख किया जा सकता है। तात्पर्य्य संगतिविशेष का फल अचिंत्य होता

है इसका कारण जानने पर विदित होगा कि वह तादृश गहन नहीं है। जन्म लेकर मनुष्य को संसार के जब थोड़े बहुत व्यवहार ज्ञान पड़ने लगते हैं तब उसे कुछ न कुछ कार्य्य अवश्यमेव करना ही पड़ता है। वह संसार में सर्व्वथा निर्व्यापार कदापि नहीं रह सकता। यह यदि ऐसा ही है तो फिर उसे क्या करना चाहिए? निकटवर्त्ती पड़ोसियों की जो बातें वह देखै सुनैगा उन्हेंही वह करेगा। और है भी यह बात ऐसीही। यही कारण है कि लड़के बच्चों के चित्त पर जितना उनके माता पिता के गुणों का संस्कार होता है–उनमें से भी विशेषतः माता के–उतना अन्य के गुणों का संस्कार नहीं होता। तात्पर्य्य अनुकरण की ओर मनुष्य की प्रवृत्ति यदि इस प्रकार स्वाभाविक एवं बलवती पाई जाती है, तो यदि बाल्यावस्था से ही उसे इतिहास और चरित पढ़ने का चाव लग जाय तो न जाने उससे उसे आगे कितने लाभ हों। सज्जन तथा महानुभाव पुरुष के निरंतर के सत्समागम का लाभ सहस्रों मनुष्यों में से किसी एक ही को प्राप्त हो सकता है। अवशिष्ट लोगों को प्रायः इसके विपरीत ही सदा प्रसंग होते हैं। ऐसी अवस्था में यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि ऐसे लोगों के संसर्ग से जो परिणाम हठात् होते हैं, उन्हें नष्टकर चित्त पर सदाचार तथा यथार्थ औदार्य्य को प्रतिबिंबित करने के लिये ऊपर कहे साधन के अतिरिक्त दूसरा और कौन सा साधन है? इसके सिवाय दूसरी एक बात यह भी है कि उक्त जैसे महात्मागण ईश्वर की कृपा से किसी देश में एकही बार उत्पन्न होते हैं। और तब उनके जीवनक्रम को देखकर और और लोग भी उनका अनुकरण कर योग्यता को प्राप्त होते हैं। पर उस काल के बीततेही सब बातें विस्मृति की ओट में होजाती हैं। इतिहास और जीवनचरित लिखने की परिपाटी यदि न रही तो दस पचास वर्ष में उनको जानने वाला एकभी मनुष्य नहीं पाया जाता! तो फिर आगे होनेहार लोगों के चित्त में उत्साह क्यों कर उत्पन्न हो? और देश की प्राचीन श्रेष्ठता क्यों कर रहे? इतिहास की निंदा करनेवाले जिन लोगों का ऊपर वर्णन किया गया है उनसे इतनाही पूछना चाहिए कि इतिहास से और दूसरा कोई लाभ नहीं है तो यही एक

क्या कम लाभ है ? होमर कवि आकिलीस के पराक्रम का यदि वर्णन नहीं करता तो शिकंदर का होना कब संभव था ? व्यास यदि पांडवों के चरित का वर्णन नहीं करते तो यह क्या कभी संभव था कि शिवाजी यवनों से हिंदुओं की राज्यश्री को पीछे लेलेता। शिकंदर का इतिहास यदि उपलब्ध नहीं होता तो सीज़र काहे को उत्पन्न होता ? और सीज़र का इतिहास यदि नहीं होता तो नेपोलियन क्यों कर उत्पन्न होता सारांश अनुकरण का फल बड़ा विलक्षण है। पर उन पुरुषों के अनंतर उनका स्मरण किसी को भी रहता नहीं। इसीलिये इतिहास की आवश्यकता है और वह इसीलिये कि यदि देश की दशा बिलकुलही बदल जाय तो भी, इतिहास को पढ़कर आगे पीछे किसी को न किसी को उससे उत्साह और प्रेरणा प्राप्त होती है। यूनान, रोम, और अब इधर, इंग्लैंड, फ्रान्स आदि देशों के राज्य जो इतने दिन टिके इसका यह निःसंदेह एक कारण हो सकता है। पर कोई कहेंगे कि, रण-शूर तथा राजनीतिज्ञ पुरुष सभी देशों को कहां अनुकूल हो सकते हैं सचमुच अनुकूल नहीं हो सकते। पर इससे क्या इतिहास का उपयोग कुछ कम हो सकता है ? पृथ्वी पर आज दिन सहस्रों और लाखों लोग दूरवीक्षण यंत्र द्वारा गुरु के उपग्रह तथा शनि की कक्षा को बारंबार देखा करते हैं; तो क्या उन्हें यह जान पड़ता है कि यह उपग्रह तथा कक्षादि अपने अधिकार में आ जांयगे नहीं। उपग्रह और कक्षा को देखकर विश्वनिर्म्माता चतुर शिल्पी का वैभव यदि उनके मन पर प्रतिबिंबित हो जाय तो यह क्या लाभ उक्त उपग्रह तथा कक्षा के अधिकार में आजाने की अपेक्षा शतगुणित अधिक नहीं है ? तद्वतही नेपोलियन वा शिवाजी के पराक्रम को पढ़कर यदि उसे जान पड़े कि, देखो मनुष्य की बुद्धि का प्रभाव कैसा है !—कभी कभी एकही मनुष्य के हाथ में कितने लोगों के कल्याण और नाश करने की करामात रहती है ! वह इस प्रकार कि इतना बड़ा यूरोप आधीन हो जाने पर भी उस नेपोलियन की मनस्तुष्टि नहीं ,हुई, और अंत में एक डेढ़ वर्ष के भीतर ही उसकी क्या दशा हुई ! बड़े बड़े राजे जिसके वशवर्त्ती हो थर थर कांपते थे वही दैव दुर्विपाक वश अनंत जलराशि समुद्र के एक भीषण द्वीप में जा पड़ा और जो शरीर जीवित

अवस्था में समूचे यूरोप को अपने आतंक से भय चकित कर डालता था, उसेही एक शिला के नीचे से खोद लाकर उसी की राजधानी में समारंभ के साथ समाधिस्थ करने के लिये उसीके शत्रु की आज्ञा लेनी पड़ी। हा हंत! लाखों मनुष्यों को नष्ट कर उसने क्या प्राप्त किया! इतनी विशाल बुद्धि के साथ उसमें परोपकार की इच्छा यदि अणुमात्र भी होती तो संसार का उससे कितना न हित हुआ होता! अब शिवाजी के चरित को देखिए! बाप ने मा के साथ जब उसे पुनवड़ी में रखा था तब वही दादाजी कोंडदेव ने उसे जो थोड़ा बहुत लिखा पढ़ा दिया था उतनेही ज्ञान से आगे उसने कैसा अकांड तांडव किया! जो लोग पीछे भी कभी प्रसिद्ध नहीं हुए थे और जो आगे शीघ्रही पुनः अप्रसिद्ध हो गए, जिनके न तो डौल डौल से ही कुछ सामर्थ्य जान पड़ता था और न बुद्धि से ही, ऐसे लोगों में अपने को उपयोगी होने वाले गुणों को पहिचान कर उसने अपना परमप्रिय साथी बनाया, उन्हींके बल से हिंदुओं का जो राज्यभानु अनुमान एक हजार वर्ष से अस्ताचलावलंबी हो गया था, मालव के पर्वत पर उसका पुनः अरुणोदय हुआ। समस्त धरातल पर जिस नगर की श्रेष्ठता प्रसिद्ध हो चुकी थी, और जो मुगलों की राज्यश्री का सौभाग्य चिन्ह था, उस नगर को उसने यथेच्छ दो बार लूट लिया। बीजापुर को तो योहीं चुटकी बजाते बजाते उसने पीस डाला, और अभिमान से उन्मत्त हुए मुगलों को उसने ऐसा उच्छाद दिया कि उन्हें यह भासित होने लगा कि न जाने शिवाजी एक है वा दो हैं। बलिहारी है इस सामर्थ्य की। यह सामर्थ्य इसीलिये प्रशंसनीय है कि इसका बहुत सदुपयोग हुआ। तात्पर्य्य विशाल बुद्धि की अपेक्षा सदाचार का प्रेम विशेष हितावह है। मनुष्य के मन का ऐसा कुछ चमत्कार देखा जाता है कि "लाभाल्लोभः प्रवर्त्तते" जैसे जैसे लाभ होता जाता है वैसे वैसे लोभ भी बढ़ता जाता है। ऐसी अवस्था में तो यही ठीक जान पड़ता है कि जितना है उसीसे संतुष्ट होकर रहने वाला श्रमजीवी मनुष्य भी बड़े राजा की अपेक्षा सुखी रहता होगा। इस प्रकार की चतुराई की अनेक बातें यदि उसके मन पर प्रतिबिम्बित हो जायं, तो क्या उसे उच्चपद मिलने

की अपेक्षा अधिक लाभ नहीं होगा? सारांश इतिहास से मन को शांति और प्रगल्भता प्राप्त होती है, यह एक उससे महान् लाभ होता है।

लङ्कापतेः संकुचितं यशोयत् यत्कीर्त्तिपात्रं रघुराजपुत्रः।
स सर्व एवाद्यकवेः प्रभावो न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः॥ *
बिल्हण।

(११) इतिहास का चौथा उपयोग मन का रञ्जन है। भिन्न भिन्न देशों की घटनाओं के वृत्तान्तों को जानने और उनका मनन करने से पूर्व्व लेखानुसार जिज्ञासा वृत्ति की तुष्टि तो होती ही है, पर यदि वह इतिहास तादृश शैली से लिखे हुए हों तो उन के पढ़ने से पाठकों को आनन्द भी प्राप्त होता है। इस प्रकार के ऐतिहासिक ग्रंथ यूनानी लेटिन् और पारसी भाषा में पाए जाते हैं इस प्रकार से अब इधर अंगरेज़ी भाषा में ह्यूम, गिबन् और मेकाले आदि के ग्रन्थ सर्वत्र प्रसिद्ध ही हैं। ऐसे इतिहासों की भाषासरणी, यथायोग्य ग्रन्थरचना, कथानक की गठन, गम्भीर विचार, बीच बीच में भांति भांति की घटनाओं का परिचय देने की विचित्रता, आदि के योग से सब प्रकार के पाठकों को वे मान्य होते है। जिन्हें केवल भाषा ही सीखनी होती है, उन्हें उसका परम रमणीय रूप उनमें मिल सकता है, जिन्हें विषय की विवेचना का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा होती है उन्हें वह उस में से प्राप्त हो सकता है, केवल कथा वार्त्ता के जो प्रेमी होते हैं उन्हें उपन्यासों के सदृश उनमें कौतूहल बोध होता है, जो तत्व-जिज्ञासा प्रिय होते हैं उन्हे परिपक्व तथा गम्भीर विचार उनमें उपलब्ध हो सकते हैं, और जिन्हे चमत्कारिक एवं कौतूहल जनक कथा वार्त्ताओं का संग्रह करने की इच्छा होती है उन्हें उनमें से वह सहज में मिलजाता है। सारांश इस प्रकार से

* लंकापति रावण तथा रघुराज श्री रामचंद्र की थोड़ी बहुत जो कीर्त्ति आज दिन लोगों को ज्ञात हो रही वह सब आदि कवि वाल्मीकि की कृपा का ही फल है। तात्पर्य्य बड़े बड़े राजाओं को भी उचित है कि वे लोग कवि की अवहेलना नहीं करें।

इतिहास भिन्न भिन्न रीतियों से मन का रञ्जन करता है। उपन्यासों को पढ़ती बार जैसे परिश्रम बोध नहीं होता किन्तु उनसे मन बहल जाता है, उसी प्रकार से प्रायः आधुनिक कई उत्कृष्ट इतिहासों से वह बहल सकता है, और यही कारण है कि अब इधर इतिहास के पठन पाठन की प्रवृत्ति अधिकाधिक हो वह सब को सामान्यतः जितना विदित रहता है उतना पूर्व्वकाल में कदापि नहीं रहा होगा। यह बात उभय प्रकार से लाभदायक हुई। प्रथम तो इसलिये कि इतिहास का ज्ञान सर्व साधारण को उपयोगी है; और दूसरे इसलिये कि उनके योग से पहिले उपन्यास और नाटक आदि की ओर ही जो लोगों की रुचि अधिक थी वह कम हो गई। मन बहलाव के लिये दूसरा कोई प्रकार अनुकूल न होने के कारण पहिले लोगों की रुचि उपन्यासों की ओर ही अधिकाधिक आकृष्ट होती थी; और इसके योग से मुख्यतया नवयुवकों को उनसे बहुत हानि पहुंचती थी। क्योंकि उन्हें पढ़ने वाले बहुधा नवयुवक हुआ करते थे, और उनके लेखक भी वैसे ही; फिर क्या देखना है? उस अवस्था में अन्तःकरण की वृत्ति नितांत चंचल रहती है यही कारण है कि अद्भुत एवं असंभव बातों में मन मग्न हो शृंगार वीराादि रसों में जो उनमें अतिशयोक्तियों के साथ वर्णित रहते हैं—तल्लीन हो जाता था। "डान क्विक्सोट*" वा "रासेलस" के ज्योतिषी की जो दशा हुई उसी प्रकार की बहुधा इन पाठकों की दशा होजाना संभव था। अर्थात् विलक्षण कल्पना और चमत्कारिक तरंगों के मन में सदा प्रतिबिंबित होजाने के कारण ये लोग लौकिक व्यवहार के लिये किसी काम के नहीं रहते। इसके

* इस विश्वविख्यात ग्रंथ को स्पेन देश के एक ग्रंथकार ने जब वह दिवानी जेल में था अपने मन बहलाव के लिये लिखा था। इस ग्रंथ के नायक का नाम ही इस ग्रंथ को दिया गया है। इसने "नाइट,, लोगों की कथाएं इतनी अधिक पढ़ीं कि उनके मारे वह पागल होगया और इसके चित्त में वही बात जम गई कि मैं भी इनके सदृश पराक्रम करूं, उन पराक्रमों को करने के लिये घर से निकलने पर उसे जिन जिन आपत्तियों का लक्ष्य बनना पड़ा उनका इस ग्रंथ में वर्णन किया गया है। इसमें हास्य रस चारों ओर ओत प्रोत भरा हुआ है।

सिवाय उपान्यासों के पठन पाठन से मन बिगड़ कर निःसत्व होजाता है। इनके उदाहरण स्वरूप में हिन्दी के कई उपन्यासों का नामोल्लेख किया जा सकता है। इंग्लैंड में सर वाल्टर स्काट के पूर्व्व जो कई उपन्यास लेखक हुए हैं उनमें जो बड़े नामी थे, उनके ग्रंथ भी अश्लील थे। पर इस अश्लीलता की जिसे अंतिम सीमा देखनी हो "हेपट्यामेरान्" और "डिक्यामेरान्" नामक ग्रंथों को देखे पहिले ग्रंथ का रचयिता बोकाशियो नाम का एक इटालियन है और दूसरे को उसीका अनुकरण कर एक फरासीसी बीबी ने रचा है। पहिले ग्रंथ की रचना का समय ध्यानास्थित करने के योग्य है। फ्लारेन्स नाम के नगर में एक समय भीषण महामारी हुई थी। उस समय वहां की सात स्त्रियां तथा तीन युवा पुरुष ऐसे दस जने नगर के बाहर एक बाग में कुछ दिन लों रहे थे। वहां उन लोगों ने परस्पर के मन बहलाव के निमित्त जो कौतूहलोत्पादक कथाएं कहीं सुनीं उन्हीं का संग्रह स्वरूप यह ग्रन्थ है। दूसरे ग्रन्थ की निर्माणकर्त्री तो उक्त कथनानुसार एक ललना ही है, इस ग्रंथ में उसने कई बातें आत्मानुभव की लिखी हैं! अस्तु। इन ग्रंथों का इतना सूक्ष्म परिचय यहां देने से यही अभिप्राय है कि इन दो ग्रंथों द्वारा समस्त सुधार का आगर जो योरोप, अखिल सदाचरण का निधान जो इसाई धर्म्म, अशेष सद्गुणों की खान जो वहां की कुलस्त्रियां वे सब किंचित् हमारे पाठकों के ध्यान में आजायँ! पर यह बात इटालियन और फरासीसी लोगों के विषय में हुई कि जो सब योरोप में बड़े नख़रेबाज़ और कामी माने जा चुके हैं। अब हमारे अंगरेज़ लोग, जो उक्त लोगों को सदाचार और नीति के निधान मानते हैं, इन पुस्तकों को कहां तक तिरस्कृत करते हैं यह देखना है। इसके लिये दोही बातों का प्रमाण बस होगा, पहिला यह कि, उनका आद्यकवि जो चासर है उसीने "डिक्यामेरान् की कई बातों का काव्य के रूप में वर्णन किया है। इससे यह सहज ही में ज्ञात हो सकता है कि उस इटालियन ग्रंथ का सदाचारप्रिय अंगरेज़ लोगों में कितने शीघ्र और कितना अधिक प्रचार हुआ। दूसरी बात यह कि अभी इधर ड्राइडन और पोप ने भी

वही बात की है *। अस्तु; यहां लेखनी बहुत कुछ दौड़ गई, पर हम समझते हैं कि उक्त बातों का ज्ञात होना हमारे किसी पाठक को अनभिष्ट नहीं होगा तात्पर्य्य मन का बिगड़ना यह उपन्यासों से होने वाला एक बड़ा भारी अनर्थ है। दूसरा अनर्थ मन की दुर्बलता है। केवल उपन्यास ही पढ़ने की जिसे एक बार रुचि लगजाती है उसे फिर दूसरे विषयों के ग्रंथ पढ़ने की इच्छा नहीं होती। उपन्यास चट पट पढ़े जाते हैं और उनमें ऐसी कोई बात नहीं रहती कि जिसे समझने के लिये कुछ कठिनता उपस्थित होती हो; अतः पाठक समझने लगता है कि विद्या की सीमा का अंत यहीं है ऐसा समझ कर उच्च श्रेणी के जो शास्त्रीय ग्रंथ होते हैं उन्हें पढ़ने के लिये वह उत्साहित ही नहीं होता। क्योंकि उनको समझने के लिये पाठक को अपना सिर लड़ाना पड़ता है, क्योंकि वे क्लिष्ट और गहन होते हैं; और वह इससे होता नहीं। एक बार ऐसी आदत पड़ गई तो फिर वह टूट नहीं सकती, तात्पर्य्य यह है कि आवश्यकता से अधिक यदि पाठक की उपन्यासों में आसक्ति हो जाय तो वह मन को हानिकारक होती है। उनके निरंतर के सहवास से मन नितांत निःसत्व हो जाता है और फिर उससे परिश्रम के काम नहीं हो सकते।

पर मनोरंजक इतिहासों द्वारा उक्त तीनों अनर्थ दूर हो जाते हैं और साथ ही उपन्यासों का कार्य्य भाग भी सिद्ध होजाता है। उनमें अर्थात् ऐतिहासिक ग्रंथों में केवल सत्यही लिखना पड़ता है, एतावता भूत राक्षस तथा 'नाइट' आदि की विलक्षण एवं अद्भुत बातें उनमें नहीं आतीं, इससे यह अभिप्राय नहीं है कि उनमें अद्भुत रस कहीं फटकने ही नहीं पाता। क्या नेपोलियन जैसे वीरों, बेकन जैसे तत्वज्ञों, और वाट जैसे कल्पकों के चरितों में अद्भुत रस की कुछ ऊनता पाई जाती है? पर हां दोनों में कुछ भेद अवश्य रहता है। और वह भेद कैसा रहता है उसे अब देखिए। उपन्यासों को पढ़-

---

* चासर और ड्रैडन के ग्रंथ सहज में नहीं मिल सकते उनमें भी पहिले के तो ऐसे जटिल और दुर्बोध हैं कि वे सहज में बोधगम्य नहीं हो सकते। एतावता जिन्हें उक्त बातों का प्रत्यय प्राप्त करना हो उन्हे उचित है कि वे पोपके January and May नाम के काव्य को पढ़ें।

कर जैसे कई लोग भ्रमिष्ट होगए वैसे इतिहासों को पढ़कर क्या कोई कभी होंगे? दूसरी बात मन का बिगड़ना है। यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं है कि इतिहास के पठन पाठन द्वारा मन बिगड़ नहीं सकता। तीसरी बात मन की क्षीणता है। इतिहास पढ़ने से मन क्षीण नहीं होता यह तो निर्विवाद बात है। हां उससे यह अवश्य होगा कि उसके पढ़ने की अभिरुचि जैसे बढ़ती जायगी वैसे वैसे पाठक का मन विशाल एवं विचारक्षम होता जायगा। अधिक क्या कहें, पाठक को इसके पढ़ने की अनिवार्य्य रुचि लगगई यह उक्त दोनों का एक बड़ा भारी चिन्ह है। सारांश इतिहास सब प्रकार से हितकारी है। उपन्यासों सदृश उससे किसी प्रकार की हानि होने का अणुमात्र भी भय नहीं है। इसके सिवाय सबसे गुरुतर बात यह है कि इतिहास अक्षर प्रति अक्षर सत्य होने के कारण उसकी बातों का जैसे चित्त पर संस्कार हो सकता है वैसे उपन्यासों की बातों का चित्त पर संस्कार नहीं हो सकता।

(१२) इतिहास से पांचवा उपयोग राजनीतिज्ञ पुरुषों को है। वास्तव में इतिहास का प्रधान उपयोग यही है, एतदर्थ ही इतिहास लेखक पूर्व्ववृत्त लिख रखते हैं। व्यक्तिगत मनुष्य को जिस प्रकार चरित से उपयोग होता है उसी प्रकार राजनीतिविशारद को इतिहास से लाभ होता है। अर्थात् हिंदी में जो कहावत है "अगला गिरा पिछला हुशार" इसके अनुसार भूतपूर्व्व मनुष्यों का अनुभव जैसे भावी लोगों के काम आता है; उसी प्रकार इस धरती पर आज पर्य्यंत जो अनेक राज्य हो गए हैं उनका अनुभव वर्त्तमान लोगों के काम आता है। राज्य की हितसाधक बातें कौनसी हैं, हानिकारक कौनसी हैं, उन पर विपत्ति आजाय तो उनका निवारण किस प्रकार से किया जाय, कलह विरोध किस कारण उत्पन्न होते हैं, प्रजा को प्रसन्न एवं सुखसंपन्न रखने के मार्ग कौन से हैं कायदे कानून किस प्रकार के, रहने चाहिए, आदि सैकड़ों बातें भूतपूर्व्व इतिहास द्वारा वर्त्तमान राजा लोगों को ज्ञात हुई हैं। जैसे कोई बहुत पुराना बड़ का पेड़ जब बहुत बढ़ जाता है और उससे सैकड़ों नई जड़ें लटक लटक कर पेड़ बन जाती हैं और आदि पेड़ के स्थान में हो जाती हैं, उसी प्रकार से

रोम के सुविस्तृत राज्य से योरोप के वर्त्तमान अनेक राज्य उत्तरोत्तर उत्पन्न हुए। भाषा और रहन सहन आदि का मूल जैसे वह राज्य है, उसी प्रकार वर्त्तमान राष्ट्रों की राज्यव्यवस्था की नीव भी वही राज्य है। यह बलिष्ट आधार यदि नहीं होता, तो योरोप की अवस्था आज किस प्रकार की रहती सो कह देना सरल काम नहीं है! विचार का स्थल है कि पंद्रहवीं शताब्दी में यूनानी और रोमन विद्या का पुनरुज्जीवन होकर उसका समूचे योरोप में विस्तार होतेही उस महादेश की समस्त जातियों को सहसा किस प्रकार की शक्ति प्राप्त होगई! तब से हर एक बात में वहां के लोगों का आतंक समस्त धरती पर जो बैठ गया है उसका अनुसंधान करने पर मुख्य कारण यही प्रतीत होता है कि पूर्व्वोल्लिखित प्राचीन राष्ट्रों ने ग्रंथों में जो अमूल्य ज्ञान भंडार एकत्रित कर रखा था सो सहसा उनके हाथ चढ़ गया। राज्यनीति, सैन्यव्यवस्था, शासन और दंडविधि आदि सब उक्त पुराने लोगों के समय में ही पूर्णता को पहुंच चुकी थीं, अतः वे सब आधुनिक लोगों को सुसिद्ध ही प्राप्त हुईं। यह क्या उन्हें कोई सामान्य लाभ हुआ? प्राचीन काल में नवशेरवां नाम के पारस देश के एक राजा ने अपने एक वकील को "भारतवर्ष" में, विशेष कर इसी काम के लिये भेजा। हमारे संस्कृत के हितोपदेश का फारसी भाषा में अनुवाद कराया; रोम की सेनेट स भा ने उसी प्रकार अपने यहां के तीन वकीलों को एथेन्स को भेज वहां से सोलन के कानून मंगवाए, सुनते हैं लैकर्गस भी स्पार्टन लोगों को राज्यव्यवस्था के नियम बना देने के अभिप्राय से एशियामाइनर, मिश्र आदि दूर दूर के देशों से होता हुआ भारत में भी आया था;–तात्पर्य्य राज्यनीति विषयक ज्ञान प्राप्त करने के लिये तत्कालीन लोगों को इस प्रकार के भगीरथ प्रयत्न करने पड़ते थे। और वे लोग उस ज्ञान की योग्यता को जान कर करते थे। फिर अब वर्त्तमान समय की सहस्रों युक्तियों के योग से वही बहुमूल्य ज्ञान यदि सबको सुलभ हो गया है, तो क्या यह कुछ सामान्य लाभ है? पीछे इतिहास के जिन विरोधियों का उल्लेख किया गया है वे इतना भी बिचारा नहीं करते कि, जैसे मूल के बिना वृक्ष की स्थिति नहीं हो सकती, वा जैसे नींव के सिवा घर नहीं ठहर सकता, उसी प्रकार से प्राचीन

स्थिति के बिना किसी जाति के तत्समय की नई अवस्था प्राप्त नहीं होती। ऊपरी बातों का योंही विचार करने वाले की दृष्टि मूल कारण पर्य्यंत न पहुंचने के कारण उसे जान पड़ता है कि, संप्रति जो रूप दीख पड़ता है वह स्वयं सिद्ध ही है; न तो कोई इसका आदिकारण ही है और न कोई इसका आधार स्वरूप ही है। इस मूर्खता को अपने चित्त में धारण कर के ऐसे लोग अपनी अज्ञता को, अपनी अरसिकता को, और अपने आलस को इतिहास के तिरस्कार के आँखे से छिपाना चाहते हैं। अस्तु; तात्पर्य्य यह है कि यदि किसी को किसी जाति के विषय में संपूर्ण एवं साद्यंत ज्ञान लाभ करना हो, तो उसे उस जाति की केवल उसी समय की स्थिति को देखने भालने से वह ज्ञान कदापि प्राप्त नहीं हो सकता आदि से कैसे कैसे हेर फेर होते गए, इत्यादि बातों को जब वह पूर्णतया जान लेगा, तभी उसको उस समय का स्थिति के विषय में यथार्थ, ज्ञान हो सकेगा। वैसेही उसकी भावी अवस्था के विषय में उसे यदि अनुमान करना हो, तो वह भी उक्त संपूर्ण सामग्री के बिना उससे नहीं हो सकेगा।

(१) इतिहास का अंतिम उपयोग मनःपुष्टि है। अर्थात् उसके निरंतर के पठन तथा मनन से मन की भिन्न भिन्न शक्तियां प्रगल्भता को प्राप्त होती हैं। प्रथम स्मरणशक्ति को लीजिए। संवत् मिति, स्थानों के नाम, मनुष्यों के नाम, और पूरा पूरा वृत्तांत, इत्यादि का पूर्ण रूप से स्मरण रखने के कारण यह शक्ति काम में लाई जाती है और इसी से वह क्रमशः बढ़ जाती है। दूसरीकल्पना शक्ति। इतिहास अर्थात् गत घटनाओं का वृत्तांत होने के कारण उसे यथास्थित करने के लिये कल्पनाशक्ति को काम में लाना पड़ता है। जिस समय का, जिस देश का इतिहास पढ़ना हो, उसकी अवस्था विशेष को पूर्णतया ध्यानावस्थित किए बिना वह कदापि समझ में नहीं आता; अतः उसकी प्राप्ति के लिये पाठक की कल्पनाशक्ति बहुत प्रखर होनी चाहिए, यह प्रखर कल्पना और अत्यंत परिपक्व वा सूक्ष्म बुद्धि एकही वस्तु नहीं है। यही कारण है कि जिस प्रकार कविता, उपन्यास और नाटकादिकों का तिरस्कार करने वाले बड़े बड़े बुद्धिमान् भी

पाए जाते हैं, उसी प्रकार पीछे कहे हुए जान्सन् जैसे इतिहास को तुच्छ मानने वाले विद्वान् भी पाए जाते हैं। पर बात यह है कि इस अवहेलना से वे लोग निज की जितनी हानि कर लेते हैं, उतनी उक्त काव्यादिकों के अधिदेवता की हानि नहीं होती! न तो उनके मनोहर सौंदर्य्य में अणुमात्र भी ऊनता आती है और न उनके यथार्थ रसिकों में से किसी एक की भी उनसे लवमात्र भी श्रद्धा भक्ति हटती है। हां इतना अवश्य होता कि यह अवहेलना करनेवाले कल्पना शक्ति में पंगु समझे जाकर वृद्धतरुणी न्याय से उपहास के योग्य माने जाते हैं। पुरूरवा राजा के दृष्टिपथ में उर्वशी के प्रथमतः आतेही उसके निर्म्माता ब्रह्मा को उस राजा ने जो कुछ कहा था वही बात ऐसे पंडितों के विषय में एक निरालेही रूप से चरितार्थ होगी *! अस्तु; सारांश इतिहास का–उस में भी विशेषतः दूर के देश का अथवा काल का–यथावत् ज्ञान होने के लिये, और उसको पूर्णतया अभिरुचि उत्पन्न होने के लिये पाठक की कल्पनाशक्ति को जागृत रहना चाहिए। पाठक की कल्पना शक्ति यदि जागृत नहीं रही तो पाठक इतिहास के पात्र विशेष से न तो तादात्म्यही प्राप्त कर सकता है और न उसे इतिहास की उस घटना विशेष का प्रत्यक्ष सा भासही हो सकता है। अभिप्राय यह है कि यह शक्ति इतिहास बाचने वाले में निसर्गजात होनी चाहिए। वह उसमें रही तो फिर वह इतिहास पठन के साथ साथ वृद्धि लाभ करती जाती है। इतिहास में भांति भांति के देश, पुरुष और प्रसंगों के वर्णन होने के कारण कल्पनाशक्ति को निज के विहारणार्थ यथेच्छ क्षेत्र प्राप्त हो

---

* अस्याः सर्गविधौ प्रजापतिरभूच्चन्द्रो नु कान्तिप्रदः
शृङ्गारैकरसः स्वयं नु मदनो मासो नु पुष्पाकरः।
वेदाभ्यासजडः कथं नु विषयव्यावृत्तकौतूहलो
निर्म्मातुं प्रभवेन्मनोहरमिदं रूपं पुराणो मुनिः॥

भावार्थ–इसको निर्म्मित करने के समय या तो चंद्र प्रजापति हुआ होगा, वा एकमात्र शृङ्गार रस में निरंतर रम्यमाण होने वाला साक्षात् मदन प्रजापति हुआ होगा, वा वसंत प्रजापति हुआ होगा। क्योंकि सदा वेद के पठन पाठन से जिस की बुद्धि को जड़ता प्राप्त हो गई है, और विषयों से जिसकी प्रीति हट चुकी है उस बूढ़े ऋषि (ब्रह्मा) से ऐसे मनोहर रूप की क्योंकर रचना की जा सकती है।

जाता है; और उसके योग से उसको स्वभावत: वृद्धि होती जाती है। और इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि इतिहास की घटनाएं सब अक्षरश: सत्य होने के कारण–क्योंकि जब वह वैसी हों तभी वह इतिहास हो सकता है–उपन्यासों की असत्यता के कारण उनसे मन को जो एक प्रकार का खेद होता है वह इससे नहीं होता। देखिए, "सहस्र रजनी चरित्र" में सिंदवाद के भिन्न भिन्न प्रवासों के वृतान्तों को पढ़ने से मन को बड़ा भारी कौतूहल जान पड़ता है, और साथही कल्पना शक्ति उसमें मग्न हो जाती है पर ज्यों ही उसका पढ़ना पूरा हो जाता है त्योंही यह बात चित्त में आती है कि यह सब वृत्तांत हैं तो वास्तव में बड़े चित्ताकर्षक, पर आदि से अंत लों सब झूठे हैं। पर वहीं कोलंबस के प्रवासों को पढ़िए, और देखिए कि मन की क्या अवस्था होती है। पहिले के प्रवासों को आज लों लाखों मनुष्यों ने पढ़ा होगा, और उसी प्रकार से दूसरे के प्रवासों को भी पढ़ा होगा पर पहिले प्रवासों को पढ़तेही आज ले ऐसा नहीं हुआ कि कोई नौका प्रस्तुत कर सिंदवाद के समान हीरे लाने के लिये गया हो पर दूसरों का परिणाम क्या हुआ सो किसी से छिपा नही है विशेषत: हिंदू लोगों को तो उसका परिणाम जताने की कोई आवश्यकता हीनहीं है। उसी जगत्प्रसिद्ध पुस्तक में अलाउद्दीन के महल का वर्णन है; और इतिहास में ताजमहल का वर्णन है। पर दोनों को पढ़कर पाठक के चित्त में कैसी भिन्न प्रकार की वृत्ति उत्पन्न होती है। इसी प्रकार यक्ष और राक्षस लोगों की अद्भुत कृति का वर्णन भी उसमें लिखा गया है, पर उससे इतनाही होता है कि थोड़ी देर के लिये चित्त बहल जाता है। इससे अधिक और कुछ नहीं होता। अब इधर, वायु के समान चलने वाली रेलगाड़ी, तेल बत्ती बिना जलनेवाले दीप, एक खटका बंबई में तो दूसरा तत्क्षण लंदन में इस प्रकार मनोवेग से काम करने वाली विद्युत्, गजकाय पत्थरों को एक पर एक रच कर बनाए हुए मनुष्यकृत पर्वत–कि जो अब जितने पुराने जान पड़ते हैं उतनेही हिरोडोटस को भीजान पड़े थे,–कोसों लों खोद खोद कर गुफाओं में बनाए हुए विशाल मंदिरपुंज कि जिन्होंने अपनी प्रचंडता के योग से निष्ठुर, मत्सरी और दुराग्रही यवनों को हरा

कर उनसे उनके दुष्ट हठ को छोड़वाया;-इत्यादि मानवी बुद्धि तथा प्रयत्न के अद्भुत प्रभाव जब मनुष्य देखता है, तब उसे उक्त झूठी बातें लड़कपन की जान पड़ने लगती हैं। कहने का तात्पर्य्य यह है कि, मनुष्य के मन को नैसर्गिक सत्य ही प्यारा लगता है, अतः सच्चे इतिहास की ओर उसकी प्रवृत्ति जितनी सहज और जितने प्रेम से होती है उतनी वह कल्पित उपन्यासों की ओर नहीं होगी। यही कारण है कि मनुष्य की कल्पना इतिहास वृत्तान्तों में बड़े चाव के साथ निःशंकतया रममाण होती है; क्योंकि उनमें असत्यता का यत्किंचित् दोष भी न होने के कारण उनमें यथेच्छा विहार करने के लिये उसे आलस्य ही नहीं आता। तद्वत् इतिहास के अधिकांश विषय प्रत्यक्ष इंद्रियगोचर होने के योग्य रहने के कारण उनका चित्त पर जितना उत्तम संस्कार हो सकता है उतना उत्तम वह कल्पित कथाओं के विषयों का नहीं हो सकता। सारांश कल्पना शक्ति का रंजन करने के विषय में उपन्यास और इतिहास में इतना अन्तर पाया जाता है। इससे यह प्रतिपादित हुआ कि इतिहास के पढ़ने से वृद्धि लाभ करने वाली दूसरी मानसिक शक्ति कल्पना है। तीसरी विचार शक्ति है। कहना नहीं होगा कि यह विचारशक्ति इतिहास के ज्ञान से बढ़ती है। और तो क्या, पर इसके विषय में केवल इतना लिखना भी 'सूर्य्य तेजः पुंज है' "पानी में प्रवाहित्व धर्म्म है" इत्यादि वाक्यों के सदृश अत्यंत प्रसिद्ध अर्थ का अनुवाद करने के समान अनुचित जान पड़ता है। तो भी वह क्यों बढ़ती है और क्योंकर बढ़ती है इसके विषय में किञ्चित् विस्तृत वर्णन आवश्यक बोध होता है। पहिली बात तो यह है कि इतिहास में भिन्न भिन्न प्रकार की बातों का वर्णन होने के कारण मन के कोष में बहुतेरी नई नई बातों का संग्रह हो जाता है। यह बातें तर्क लड़ाने या किसी प्रतिपाद्य विषय को विवेचन करने अथवा उसको विशदता देने के काम में बहुत उपयोगी होती हैं। इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि इतिहास में भिन्न भिन्न पात्रों के भिन्न भिन्न गुण दोष, भिन्न भिन्न स्वभाव और भिन्न भिन्न कृति स्पष्टरूप से प्रदर्शित की हुई रहती हैं। अतः मानवी स्वभाव के अनेक प्रकार के चित्रविचित्र रूप पाठकों

के दृष्टिपथ में आकर उनसे उनको व्यवहार में अत्यंत उपयोगी एवं मार्मिक अथच पूर्ण ज्ञान होता है। नाना प्रकार के देशों के लोगों की स्थिति, राज्य व्यवस्था, रीति भांति, रहन सहन और धर्म्मादि विषयक विश्वास का ज्ञान होने से मनुष्य की ज्ञान दृष्टि दूरगामी हो सकती है। उसके योग से बुद्धि की गति बढ़कर वस्तुमात्र के विषय में उसे पहिले की अपेक्षा विशेष रूप से यथार्थ ज्ञान होने लगता है। निरंतर एकही स्थिति विशेष दृष्टि के समीप होने के कारण बुद्धि जो कूपस्कार से संकुचित हो जाती है उसे दूर करने के लिये दोही मार्ग हैं एक तो यह कि नाना देशों में भ्रमणकर पर राष्ट्रों के विषय में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेना; और उससे किंचित् न्यून तथा दूसरा मार्ग यह है कि ऐसा जिन लोगों ने किया है उनसे बात चीत करके वा उनके लेखों को पढ़कर उस ज्ञान को प्राप्त कर लेना। इनमें से पहिला मार्ग और दूसरे की पहिली व्यवस्था बहुत कम लोगों को अनुकूल हो सकती हैं; अतः सर्व साधारण को उपयोगी होने वाला एक यही मार्ग है कि वह इस ज्ञान को इतिहास, देशान्तर वर्णन, और प्रवास वृत्तांतों को * पढ़कर प्राप्तकरें। इनका यथोचित अभ्यास करने से, कूपमंडूक वा गूलर के कीड़े के समान सदा अवस्था रहने के कारण मूर्खता तथा दुराग्रह की जो भावनाएं चित्त में स्वभावतः प्रतिबिंबित हो, कालांतर में मन के साथ कीलित हो जाती हैं, वह दूर हो जाती हैं। संसार में यदि कोई चतुर है तो हमी हैं; संसार में किसी की रीति भांति अच्छी है तो वह हमारी ही है; समस्त सुधारों का शिखर हमारा ही देश है; सच्चा और सदाचरण प्रवर्तक हमारा ही धर्म्म है, दूसरे लोगों के धर्म थोथे और दूसरे लोग भ्रष्ट, हमारी

* आनंद का विषय है कि श्रीयुत ठाकुर गदाधर सिंह जी की कृपा से "चीन में तेरह मास" और डाक्टर महेंदुलाल गर्ग की कृपा से "चीन दर्पण" यह दो प्रवास वर्णन ग्रंथ आज दिन हिंदी में पाए जाते हैं। यह उभय ग्रंथ बहुत योग्यता के साथ लिखे गए हैं। हिंदी का मंगल चाहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह उक्त उभय ग्रन्थों को अवश्य पढ़े। "चीन में तेरह मास" १।) में इस पते से मिल सकता है—श्रीयुत ठाकुर गदाधर सिंह दिलकुशा लखनऊ। और "चीन दर्पण"—१) में इस पते पर मिलता है—डाक्टर महेंदुलाल गर्ग (पल्टन २४) झेलम पंजाब। (डाक्टर साहब का पता इंगलिश में लिखना चाहिये)।

भाषा उत्तम; हमारी विद्या हमारी कलाएं विश्ववंद्य हैं; और कहां लों कहा जाय, हमारे खाने पीने की रीति हमारे कपड़े पहनने ओढ़ने की रीति, हमारी मुंह धोने की रीति सर्वताभाव उत्तम; इसी प्रकार की जो निराधार एवं संकुचित चित्त की बातें होती हैं वह सब नष्ट होकर इतिहास के प्रसाद से निजके विषय में और अपर राष्ट्रों के विषय में पाठकों को यथार्थ ज्ञान हो जाता है। अपनी सुबृहत मानवजाति कि, जो संपूर्ण धरातल पर फैली हुई है, उसका कोई राष्ट्र कितना ही ज्ञानसंपन्न एवं बृहत् क्यों न हो पर वह उसका केवल कोणैक देश ही कहा जायगा, जब सब के साथ उसकी पर्य्यालोचना की जायगी तभी संभव है कि उसका यथार्थ ज्ञान हो सके। मानव स्वभाव के नित्य एवं शाश्वत रूप का, उसके कृत्रिम (बनावटी) अर्थात् देश काल विशेष जन्य रूप से पृथक् करण करने के लिये मन को सब राष्ट्रों का आकलन करना चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि इतिहास मन के क्षुद्र प्रदेश को विस्तृत कर, उसके संकीर्ण विचारों तथा भ्रमों को दूर कर देता है; और निज के तथा अपर के विषय में मन में यथार्थ बुद्धि को उत्पन्न कर दूसरों के साथ मित्रभाव का बर्त्ताव करना यह हमें सिखाता है। यह भी उसके अध्ययन से एक बड़ा भारी लाभ होता है। अंगरेजों का राज्य इस देश में इतने दिन रहा, और आगे भी बहुधा इसी प्रकार चिरकाल लों अबाधित चला जायगा, इसका एक प्रधान कारण उक्त बात के संबंध से यही पाया जाता है कि उनमें और मुसलमानों में जो एक प्रचंड भेद देख पड़ता है उसके सिवाय और कुछ नहीं है। उक्त निरूपण में यह भी लिखा जा चुका है कि इतिहास के योग से राज काज के विषय में विचार शक्ति बढ़ती है। पर वह स्वयं राजकर्त्ताओं के संबंध से ही कहा गया है। अब आगे यह प्रदर्शित करता है कि जिसमें हाथ में थोड़ी बहुत कुछ भी राज्य सत्ता नहीं रहती ऐसे आराम से घर पड़े रहने वाले मनुष्य को भी इतिहास से उस प्रकार का मार्मिक ज्ञान हो जायगा। संप्रति इंग्लैंडादि देशों में ऐसे प्रकार के विचार करने वाले और ऐसे विषयों पर ग्रंथ लिखने वाले लोग सब राजनीतिज्ञ ही होते हैं ऐसा नहीं है।

तो उन्के जैसे विलास प्रिय लोग भी ऐसे विचारों में मग्न रहते हैं। इस से यही निर्द्धारित होता है कि यह विषय केवल राजपुरुषों का ही नहीं है, एक सामान्य मनुष्य के लिये भी वह विचारणीय है। राज्य प्रकरणों में उत्तम कौनसा, अथवा अमुक अमुक देश को कौनसा विशेष लाभदायक है, प्रजावर्ग को राजा ने बिलकुल अपने अधीन रखना चाहिये या उन्हें स्वतन्त्रता देनी चाहिये, यदि देनी चाहिये तो कहां लों; राज्य के हितार्थ अनीति करनी चाहिये या नहीं; यदि अनीति की जाय तो उसका परिणाम क्या होगा; देश की स्थिति विशेष के परिणाम सर्व्वसाधारण के मन पर तथा उन की अवस्था पर क्या होते हैं; राज्य का धर्म्म विभाग से कहां लों संबंध रहना चाहिये; धर्म्म के विषय में राजा को प्रजा पर सखती करनी चाहिये या नहीं; इस प्रकार के शतशः विषय सर्व्वसाधारण से संबंध रखने वाले पाए जाते हैं: अतः इन विषयों पर इङ्गलैंड आदि देशों में निरंतर चर्चा हुआ ही करती है। अठारहवीं शताब्दी के अंत में फ्रान्स देश में जो बड़ी भारी लौट पौट हुई उस समय समूचे यूरोप और अमेरिका में बड़ी हल चल मच गई थी; और जिनके देखिये उनके मुंह से यही बात सुनाई देती थी कि प्रजासत्तात्मक राज्य अच्छा होता है या एक राजक राज्य अच्छा होता है। उस समय उस गुरुतर विषय पर शतशः ग्रंथ लिखे गए; पर वे सब अब काल के उदर में लीन हो गए। केवल विख्यात वक्ता बर्क का "फ्रान्स की राज्य क्रांति पर विचार" नामका एक मात्र ग्रंथ आज दिन सर्वत्र प्रसिद्ध है। यह ग्रंथ उस प्रकांड तत्वज्ञ की विशाल गवेषणा का पूर्ण रूप से परिचय देता है। इस ग्रंथ के संबंध से ध्यान में रखने के योग्य एक विशेष बात यह है कि पिछले इतिहासों के अनुभव से इसमें जो कई भविष्य लिखे गए थे वे आगे ठीक ठीक वैसही हुए। अस्तु, उक्त अन्तिम बात एक ऐसी बात है कि जो इतिहास की गुरुता को सर्व्वसाधारण के चित्त पर पूर्ण रूप से अंकित कर देती है; और साथ ही वह इस बात को प्रदर्शित करती है कि सर्वसाधारण को, और विशेषतः राज्यकर्त्ताओं को इतिहास के ज्ञान से कितना अमूल्य लाभ हो सकता है। कोई

कोई तो निःशंक हो यहां लों कहते हैं कि कुछ काल के अनंतर इतिहासज्ञों के भूत पूर्व्व अनुभवों की सहायता से अमुक अमुक देश की क्या दशा होगी यह भविष्य कथन करने की शक्ति भी प्राप्त हो जावेगी। इसके सिवाय एक और दूसरा भी प्रकार है कि जिसके योग से विचारशक्ति बढ़ती है। वह यह कि, समस्त जग के आदि से आज पर्य्यन्त के इतिहास को सहसा विचारक्षेत्र में लेने से परमेश्वर का वैभव उसमें देख पड़ता है। अत्यन्त प्राचीन राष्ट्रों की आदिम अवस्था कैसी थी और वह आगे धीरे धीरे कालक्रमानुसार कैसी होती गई, और ऐसा होते होते अब जग का किस अवस्था को आकर पहुंच गया इस विषय का जो यथायोग्य विचार करेगा उसे तत्त्वतः ज्ञान हो जायगा कि संसारचक्र की प्रवृत्ति उन्नति की ओर है। इस कथन से, और जंगली लोगों ने रोमन राज्य को मटियामेट कर डाला, ईसा मसीह की जन्मभूमि के निमित्त करोड़ों योरोपियन लोगों ने अपनी जान दे दी पर अन्त में मुसलमानों से परास्त होकर उन्हें पीछे हटना पड़ा, फ्रान्स देश में बड़ीभारी हलचल हुई उसके कारण उसकी और उसके साथ साथ समस्त योरोप की मिट्टी ख़राब हुई, आदि बातों से आपाततः विरुद्धता बोध होती है; पर इन्हीं अनर्थों के आगे परिणाम कैसे हुए इसका जो यत्किञ्चित् विचार करेगा उसे यह तुरंत ही ज्ञान होजायगा कि वह अनर्थ केवल तात्कालिक ही थे। वास्तव में उनसे जग का चिरकालिक कल्याण हुआ है। संप्रति पृथ्वी के उन्नत देशों की जो स्थिति है उसमें और उनकी चार पांच सौ वर्ष के पूर्व्व की स्थिति में आकाश पाताल का अन्तर पाया जाता है ऐसा यदि कहा जाय तो स्यात बाहुल्य नहीं होगा। आजकल एक सामान्य पुरुष को भी ऐसी सैकड़ों बातें और युक्तियां अनुकूल हो गई हैं, जो उस समय एक बड़े बादशाह को भी अनुकूल नहीं थीं। आज कल छोटे छोटे बालकों को कई ऐसी बातें मालूम हैं कि जो उस समय के बड़े बड़े पंडितों तथा तत्वज्ञों को भी विदित नहीं होंगी। प्राचीन काल में पक्षवायु ग्रस्त शरीर के समान देश की दशा थी; अर्थात् एक भाग के सुख दुःख की वार्ता का ज्ञान दूसरे

भाग के लोगों को रोने का बिलकुल कोई मार्ग ही नहीं था। स-साधारण लोग ग्राम के देश एक प्रश्न के विषय में उदासीन रहा करते थे। यूनानी और पारसीक लोगों के युद्ध अनेक बार प्राय पश्चा से हुए; परंतु एक ओर रोमन आदि लोग और दूसरी ओर हिंदू आदि लोग निशान्त निश्चल थे। बहुत ही आलस्य ने रोम के राज्य को हिला दिया, और बौद्ध लोगों ने बौद्ध लोगों को निकाल चीन और लंका में भगा दिया, पर यूनानी लोग अपने स्थान में स्वस्थ ही बने रहे। पर अब जो कौतूहल होता है उसे देखिए। आपस में लोग कलह करते हैं—पुनः मेल कर लेते हैं; और उन के संबंध से पाताल की बंबई के सेठ साहूकार लोग उस उनके कलह के कारण बहुधा राज्याधीश हो जाते हैं और उस कलह के एक दम शान्त होने ही घरों घर दिवाले पटके जाते हैं तात्पर्य्य विद्युत का तार जैसे समस्त पृथ्वी के एक छोर पर हिलाने से वह उसके दूसरे छोर तक हल जाता है, उसी प्रकार से एक भाग का सुख दुख अब तुरंत ही दूसरे भाग को ज्ञात हो जाता है; अथवा ऊपर कही हुई उपमा यदि यहां ली जाय तो जिस भांति मनुष्य के शरीर के किसी अंग को प्राप्त हुआ ज्ञान जैसे तत्क्षण सर्व्वत्र फैल जाता है वैसी यह बात भी होती है। अस्तु; सारांश जब यह सब बातें ध्यान में आती हैं और उससे जब इस बात का बोध होता है कि जग उत्तरोत्तर सज्ञान और सखी होता जाता है तब धर्म्मशील पुरुषों को बहुत कुछ आशा होती है और ईश्वर में उनकी भक्ति सुदृढ़ होती जाती है।

यहां लों इस अथाह विषय का पाठकों को किंचित् दिग् दर्शन कराया गया। इस विषय का यथायोग्य वर्णन करना सामान्य व्यक्ति का काम नहीं है, उसके लिये ग्रंथावलोकन बहुत होना चाहिये, संसार का अनुभव भी बहुत होना चाहिये, और इसके अतिरिक्त विषय प्रतिपादन करने की शैली का भी पूर्ण ज्ञान होना चाहिये। यह सब आवश्यक गुण वर्तमान लेखक में हैं ऐसा उसे विश्वास नहीं होता। यह सब गुण पाठकों के लिये भी आवश्यक हैं। हम नहीं समझते कि आज दिन हमारे पाठक सर्व्वतो भाव

तद्गुणसम्पन्न हो चुके हैं। पाठकों का ज्ञान और उनकी विचार क्षमता किसी जैसी उन्नत होती जाती है उसी प्रकार से उनकी सेवा करने के लिये इस प्रकार के ग्रंथकार भी उत्पन्न होते जाते हैं, अतः जब हमारे यहां के पाठकगण इंग्लैण्ड के पाठकों के सदृश हो जायेंगे तब हमारे यहां बर्क, मेकाले, और मिल के समान ग्रंथकारगण भी अवश्यमेव उत्पन्न होंगे। कहना नहीं होगा कि यह दोनों बातें परस्पर सापेक्ष हैं। सारांश संप्रति की अवस्था के अनुसार हमारे हिंदी के पाठकों के लिये वर्तमान निरूपण बस है ऐसा हम समझते हैं। इस लेख में इतिहास के जिन उपयोग और लाभों का वर्णन किया गया है उन्हें हमारे पाठकों में से यदि थोड़े लोग भी योग्य रूप से समझलेंगे तो हम समझेंगे कि हमारे इस अनुवाद का श्रम व्यर्थ नहीं गया।

रीवां राज्य के एक कवि रामनाथ प्रधान का

जीवनचरित

और

उनकी राजनीति।

(पण्डित भवानीदत्त जोशी बी. ए. लिखित)

प्रायः १४ शताब्दी हुए जब कुछ बघेल वीर क्षत्रिय सन्तान गुजरात राज्य के अधिकारी पूर्व की ओर देशविजय की लालसा और निज क्षत्रिय धर्म का प्रतिपालन करने की अभिलाषा से आए और बहुत काल तक देश प्रदेश जीतते रहे अन्त को उन्होंने बघेलखण्ड में अपना राज्य स्थापन किया। उनके साथ ही कुछ वैश्य लोग आए थे। राज्य में प्रधान लेखक के पद पर रहने और उसका काम करने से उनको "प्रधान" की उपाधि मिली उसी से उनके वंश के लोग जो अब यहां हैं सब प्रधान नाम से प्रसिद्ध हैं। इन्हीं प्रधानों में से एक नन्दराम थे जिनके पुत्र जिन्दारामजी हुए। जिन्दारामजी के पुत्र ठाकुररामजी हुए जो श्रीमान् महाराजा जयसिंह जू देव के समय में उनकी सेवा में अपने पितरों के पद पर नियत थे। इनके सात पुत्र हुए जिनमें से प्रथम ज्येष्ठ दो तो अल्पकाल ही में युवावस्था में परलोकगामी हुए शेष पांचों के नाम क्रम से ये हैं-रामनाथ (कवि) रामलाल जो राज्य के अस्त्रगजादि शाला के खास कलम हुए, श्यामलाल जो राज्यदीवान दीनबन्धु पांडेजी के यहां खास कलम रहे और बलदेव औ। बद्रीप्रसाद। इनमें रामनाथ जी का जन्म संवत् १८५७ में रीवां राजधानी में हुआ।

बचपन में यह ऐसे चञ्चल और अनोखी प्रकृति के थे कि इनके घर के लोग इनसे प्रीति नहीं रखते थे। कुछ अवस्था होने पर इसी भांति जब शिक्षा की ओर इनकी प्रवृत्ति न हुई और मूर्ख बने रहे

तब और भी घर बाहर सब के अप्रिय हुए। इनका शरीर कुछ छोटा तो था पर गठीला और मोटा भी था ऐसे कुछ रूपवान न थे। विवाह इनका रीवा से कुछ दूर व्योहारी गांव में हुआ था। विवाह के पूर्व ही सब लोग इनका तिरस्कार करते थे तब इसके पीछे तो और भी ये बोझ समझे गए जिसके कारण इनके चित्तमें अत्यन्त ग्लानि उपज आई। इनका यह नियम सा हो गया था कि घर में बहुधा कम रहते थे केवल खाने पीने के समय आ जाते थे। जब समाज के लोग इनको तुच्छ दृष्टि से देखते थे तो इन्होंने भी समाज से विशेष सम्बन्ध रखना नहीं चाहा। यहां तक कि यह बहुधा साधु, महात्मा, बैरागी, जो नगर में आता था उसके पास आया जाया करते थे। इनकी प्रवृत्ति इस प्रकार केवल साधु, सन्यासी, सांई, फकीर, की सेवा शुश्रूषा में लगी रहती थी। घर के लोगों ने जो कुछ अन्न दिया सो यही साधुओं को दे दिया करते थे। सब प्रकार से इस काम की ओर इनकी बड़ी रुचि हो गई थी। एक बार यहां एक सिंहलद्वीप के कोई साधू राधिकादास नाम के आए और बहुत काल तक वहीं स्थित रहे उनके पास यह बराबर रहा करते थे और सब भांति अपनी भक्तियुक्त सेवा से उनको प्रसन्न रखते थे। कुछ समय बाद नगरिया में एक साईं जी आए। वे बड़े अच्छे साधु थे। औरों की भांति स्वभावत: यह इनकी शुश्रूषा करते रहे। एक दिन उक्त साईं जी ने आम का अचार (संधा) किसी से मांगा। यह भी वहीं थे। इन्होंने सुना तो घर लाने को आए पर घर में कौन भला इनको प्रसन्नता से देता अतएव यह कहीं से उठा कर साईंजी के पास ले गए और उनको दिया। जब यह बात घरवालों को ज्ञात हुई तो उन्हों ने रामनाथ को बहुत धमकाया घुड़का और बहुत कटु कटु बातें कहकर उनके जी को दुखाया जिससे यह बहुत सन्तापयुक्त हुए। नियमपूर्वक जब दूसरे दिन साईं जी के पास पहुंचे तब उन्होंने इनके खिन्न मन होने का कारण पूछा। यह नहीं बतलाते थे पर जब साईं जी ने जान लिया तो इनसे कहा कि क्यों तुमने इस छोटी सी वस्तु के लिये इतना कष्ट उठाया और कटुवाणी सुनी। साईं जी को अपनी शक्ति से ज्ञात हो गया कि इनके घर के लोगों ने इस हेतु

से इन्हें धमकाया कि यह कमाकर कुछ नहीं लाते और वृथा दूसरे की कमाई पर पुण्य उदारता दिखाते हैं। यह जान कर उन्होंने रामनाथ जी को वरदान दिया कि अब से तुम्हारा सर्वत्र आदर होगा और कमाई स्वयं करोगे। तभी से जब इनकी अवस्था २२ वा २३ वर्ष की हुई ये कविता करने लगे। इनके फुटकर कवित्त बहुत से मिलते हैं जो इस समय के बने हैं। कुछ दिनों में दरबार में यह आने जाने लगे और थोड़े ही समय में मान पाकर कवियों में इनकी गणना होने लगी और महाराज विश्वनाथ सिंह जूदेव ने इनकी नौकरी १) रु० रोज की कर दी। उस समय १) रु० नित्य की नौकरी बड़ी भारी समझी जाती थी। राजा के ८ अमात्य कहे जाते हैं। उस हिसाब से यदि कोई इनके वर्ग का उस पद का अधिकारी था तो यही थे। तब से ये सदा राजमान्य में रहते आए। समय समय पर इनको विशेष प्रतिष्ठा मिलती रही। विशेषतः ये श्रीमान् महाराज रघुराजसिंह के दरबार में उनके युवराजावस्था ही से रहते थे और उनके कृपापात्रों में थे। वैसे इधर उधर के कवित्त तो इन्होंने बहुत लिखे पर सब से प्रथम ग्रन्थ जो इन्होंने रचा वह धनुषयज्ञ है। अभी तक उसकी प्रति मुझे उपलब्ध नहीं हुई इससे उसके गुण दोष के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता। यह भी नहीं विदित हुआ कि वह कब बना और कब समाप्त हुआ।

इनका दूसरा ग्रन्थ रामकलेवा है जो आज दिन सर्वत्र सर्व साधारण में प्रसिद्ध है। सच पूछिए तो इसी ही से रामनाथ जी प्रख्यात हुए हैं। बहुत से इनको न जान कर इनको कोई बड़ा प्राचीन महात्मा समझ रामकलेवा का पाठ करते हैं। ग्रन्थ कुछ बड़ा नहीं है पर इसके ललित भक्तिमय भावों से भरपूर रहने से यह स्तोत्र पाठादि संस्कृत हिन्दी की पुस्तकों के समान सहस्रों बार नाना यन्त्रालयों में मुद्रित हो प्रकाशित हुआ है। इस रामकलेवा को इन्होंने अपनी ४५ वर्ष की अवस्था में बनाया। संवत् १९०२ ज्येष्ठ शुक्ल गंगा दसहरा को श्री अयोध्या जी में बैठकर इसे आरम्भ किया और इसी संवत् के आश्विन की विजया दशमी को समाप्त किया। इसमें श्री राम विवाहोत्सव में पाणिग्रहण के उपलक्ष में

प्राय: जो कलेवा कराए जाने की रीति है उसी का वर्णन है। विशेष कर इसमें चौबोला छन्द ही हैं। वर्णनशक्ति इनकी कैसी सत्य और सुन्दर चित्रित करनेवाली थी वह इसी उदाहरण से जाना जायगा जहां कि उनके वस्त्र आभूषणादि शृङ्गार करने पर रूप और वेष का उल्लेख किया है।

जनक महल की जानि तयारी सेवक सब सुख पागे।
निज निज प्रभुहिं सँवारन लागे लै भूषन बर बागे ॥ १८ ॥
रघुनन्दन सिर पाग जरकसी लसी त्रिभङ्गी बांधी।
तिमि नवरङ्गी झुकी कलंगी रुचि रुचि पेचन साधी ॥ १९ ॥
कनिन कलित अति ललित मनिन की मंजुल मौर विराजी।
सिन्धुर मनि के मजे सेहरा जोहि होत मन राजी ॥ २० ॥
ताके कोर कोर चहुंवोरनि लागीं रतननि पांती।
जगमग जोति होती चहुं दिसि ते लखि अखियां न अघाती ॥ २१ ॥
कुंडल लोलैं हलैं कपोलैं लगी अमोलैं मोती।
जेबदार जगमगहिं जराऊ जुगुल जंजीरन जोती ॥ २२ ॥
जालिम जोर जौहरी जुलफैं जुवतिन जोबन हारी।
छूटी अलकैं दोहुं दिसि झलकैं मनहुं मैन तरवारी ॥ २३ ॥
रतनारी कारी कजरारी अति अनियारी आंखैं।
रसवारी बरबस बसकारी प्यारी प्रानन राखैं ॥ २४ ॥
अति अरवंगी रति रस रंगी चढ़ी त्रिभंगी भौंहैं।
मनहुं मदन की जुग धनु सोहैं जोइ जोहैं तेइ मोहैं ॥ २५ ॥
तिलक रसाल विसाल भाल पर किमि बरनौं छबि ताकी।
जनु नव घन पै रीझि दामिनी नेम लियो थिरताकी ॥ २६ ॥
अरुन अधर बिच दामिनि दुति दर दमकैं दसननि पांती।
सनमुख मुख करि जेहिं दिसि बोलैं अजब छटा छहराती ॥ २७ ॥
जगमगात अति स्याम गात पर जरतारिन को जामा।
ताके कोर कोर चहुं वोरनि गूंथे रतननि दामा ॥ २८ ॥
नील फरिंदा दुपट्टा समेटा कमर लपेटा राजै।
नवल भटू को करन लटू को कंध पटूको भ्राजै ॥ २९ ॥
छोरन लसीं करोरन मोती कोरन लगीं किनारी।

अतिसैं झलकैं लगै न पलकैं लखि ललकैं सुरनारी ॥ ३० ॥
सिंधुर मनि के पड़े चौलड़े मनिन माल बहु सोहैं।
कठुला कंठ बिजायट बांहन देखत ही मन मोहैं ॥ ४१ ॥
बड़े बड़े नग जड़े सुभग अति कनक कड़े कर माहीं।
छबि उमड़े उर अड़े तियन के गड़े मदन मन माहीं ॥ ३२ ॥
मनिमय कंकन सुखप्रद रंकन बंकन करविच बांधे।
जनु पुर जुवतिन मन जीतन को जंत्र वसीकर साधे ॥ ३३ ॥
मनिमय ढ्रालैं बिरचित जालैं कसी सुपुर करवालैं।
कंचन ढालैं बंधी बिसालैं सजी सबुज उरमालैं ॥ ३४ ॥
सरही पीत जरकसी पनहीं मनहीं मनैं सोहाती।
नूपुर पद जुत दिये महाउर देखत देह भुलाती ॥ ३५ ॥
बदन सकल सुख मदन राम को कोटि मदन मद मारै।
दरसत उर बरसत रस सब के जनु तन धरे सिंगारै ॥ ३६ ॥
बीरिनि खात बतात सखन सों जब प्रभु जेहि दिसि बोलैं।
तन मन भूलि जात सब ताको लेत प्रान मन मोलैं ॥ ३७ ॥

पाठकों के हृदय में पूरा प्रभाव होने के लिये इसको पूर्णरूप से उद्धृत कर दिया है। इनकी शेष कविता भी सब इसी ढंग की है, यही लालित्य और पदमैत्री उत्तम कोमल भाव सर्वत्र विकसे हैं। रामनाथजी ने गुरुमंत्र तो रीवां राज्य के राजगुरु से अरवाड़ घाट में लिया था पर यह बड़े वैष्णव सखत्त्व भाव मानने वाले रामोपासक थे यही जान पड़ता है। इस रामकलेवा में क्या प्रायशः सभी ग्रन्थों में उनके सखी भाव से भक्तिमय भाव प्रकाशित हैं। विना स्वयं ऐसे मत को माने यह गाढ़ भक्ति रस पूर्ण भावना की उक्तियां कैसे हृदय से उत्पन्न हो सकती हैं। जनकपुर के स्त्री ललनागण सखीभाव के अधिष्ठाता हो निज प्रिय प्रभु रूप स्वयं श्रीरामचन्द्रजी के वार्त्तालाप में परस्पर सम्बन्ध का निरूपण किया जा रहा है जैसे सिद्धि आदि स्त्रियां यह कहती हैं कि यद्यपि हम स्त्रियों में अर्थात् सखी भावाभिमानियों को दोष बहुत हैं पर स्नेहमय भक्ति से हीन नहीं है।

"हम तिय नीच मीच की मूरति सदा असारहि भाखैं।
पै लगि प्रीति करैं हम जासों तेहि तन मन दै राखैं ॥ ३ ॥
पति पितु बंधु पुत्र परिजन ते रहैं सबन तें न्यारी।
पै कछु बीच न राखहिं तासों बांधहिं जासों यारी ॥ ४ ॥
हमतें नीच न अब जग रघुबर तुम तें ऊंच न कोई।
पै हिय प्रीति जो तौलि लीजिये गरू हमारी होई ॥ ५ ॥
सुनि इमि आरत बैन तियन के तरुन करुन रससाने।
कोमल चित्त कृपाल रघुनन्दन प्रीति रीति भल जाने ॥ ६ ॥
बोले बचन भक्तभयभञ्जन सुनहु तियहु सब कोई।
अब मैं कहौं सुभाउ आपना तुम्सैं न राखहुं गोई ॥ ७ ॥
सिव सनकादि आदि ब्रह्मादिक इनतें और न भारी।
तिन हू तें तुम अधिक पियारी सुनि सिधि राजकुमारी ॥ ८ ॥
जो कोउ प्रीति करै मोरे पर होइ जो ज्ञान अजानी।
प्रान समान सदा तेहिं राखों ऐगुन एक न मानौं ॥ ९ ॥
मेरी है यह बानि लाड़िलो प्रीतिवंत जन जानै।
नतु खोजत थागे मोहि प्रानी करि करि जप तप ध्यानै ॥ १० ॥
जिन जिन प्रेमिन केरि जगत मैं सुनियतु बड़ी बड़ाई।
तिन तिन मैं बिचारि जो देखी सब मैं एक खोटाई ॥ ११ ॥
हिमि तन दहै कहै न कबों कछु पुनि तेहि लखि सुख मानै।
ऐसो दरद कमल के दिल को कहो भानु का जानै ॥ १२ ॥
तरसत रहत दरस बिन पाए नित ताकत तेहि पाहीं।
अस चकोर की प्रीति चन्द्र के नेक चुभी चित नाहीं ॥ १३ ॥
घुमड़ी छटा देखि प्रीतम की नाचत दादुर मोरा।
ताकी ओर तनक नहीं ताकै ऐसो मेघ कठोरा ॥ १४ ॥
पीउ पीउ करि जोन पपीहो प्रान त्याग करि दीन्हो।
पीउ के जीउ दया नहिं आई बर हत्या सिर लीन्हो ॥ १५ ॥
सरबस त्यागि परी तेहि के बस छाड़ति नहिं दिन राती।
ऐसी मीन को देखि भिलाई जल की फाटि न छाती ॥ १६ ॥
जात पतंग समीप दीप के मोहि जोति छबि माहीं।
तेहि तन दाहत मैं कृसान के भई दया कछु नाहीं ॥ १७ ॥

ऐसे बहुत प्रीतिवालेन को देखी बाल अधीरा ।
एक तो प्रान देत वाके पर एक न बूझत पीरा ॥ १८ ॥
अस नहिं प्रीति हमारी प्यारी सुनो सिद्धि सुखधामा ।
अपने प्रीतिवान प्रानी को पल भरि तजौ न ठामा ॥ १९ ॥
कोट मानि मोरे प्रीतम को जो कोउ गरब दिखावै ।
अति सें बड़ो बनाऊं ताको ब्रह्महु माथ नवावै ॥ २० ॥
सिगरे लोकन मांह लाड़िली सबतें तेहि पुजवाऊं ।
ब्रह्मादिक की कौन चलावे मैं तेहि माथ नवाऊं ॥ २१ ॥

*   *   *   *

जो निज मन समेटि सब तरह तें बांधहि मम पद प्रीती ।
ताके साथ दास सम डोलों अस हमार है रीती ॥ २६ ॥

*   *   *   *

ते तुम सबै प्रेम की मूरति सूरति की बलिहारी ।
सिद्धि आदि सब राजकुमारी मोहि प्रानहुं तें प्यारी ॥ ३६ ॥

*   *   *   *

पुनि धरि धीरज अली भली विधि जोरि पंकरुह पानी ।
सिद्धि आदि सब राज कुमारी बोली अति मृदुबानी ॥ १ ॥
धन्य भाग्य हमरो रघुनन्दन हमतें बड़ कोउ नाहीं ॥
बूडत रहीं जगत सागर में राखि लीन गहि बाहीं ॥ २ ॥

इस उपरोक्त उदाहरण से कवि के हृदय के भाव सहज रीति से सुन्दर पदों में प्रकाशित हैं । अनेक दृष्टान्तों से उपासक की अनन्य भक्ति पर उपास्य की दया और अनुग्रहशून्यता दिखा कर यह उसी मिस स्पष्ट कर दिखाया कि रामोपासना में उपासक उपास्य का परस्पर बहुत ही स्नेह सम्बन्ध और उपास्य को अपने उपासक भक्त की यदि वह सत्य हो तो बड़ा ही ध्यान और मान रहता है यहां तक कि स्वयं उपास्य रूप श्री भगवान् रामचन्द्र जी कहते हैं कि "ब्रह्मादिक की कौन चलावै मैं ते ह माथ नवाऊं" । यह विश्वास और दृढ़ भक्ति रूप भ... द्धा रामनाथ जी की है कि जिससे उनके द्वारा यह वचन प्रगट हुए ।

रामकलेवा यद्यपि कोई भारी विषय लेकर नहीं बनाया गया एक साधारण देशरीति के अवसर का वर्णन इसमें है पर यह शृङ्गाररस मिश्रित भक्तिभाव परिपूर्ण सरल शुद्ध ललित रचना का एक लघु ग्रन्थ है। वस्तुओं के वर्णन की शक्ति इनकी राजसभा में सभ्य रहने से बहुत ही विशेष है साधारण कवि ऐसा नहीं कर सकते ॥

तीसरा ग्रन्थ इनका रामहोरीरहस्य है जो रामकलेवा का अनुक्रम कहा जा सकता है। प्रणाली इसकी उसी ढंग की है विषय यद्यपि दूसरा है अर्थात् चौथी चार जो विवाह के अवसर में होती है उसमें सरहज सालियों से जो होली बर आदि होती है उसी रहस्य का रसमय वर्णन है। इसमें पद मैत्री और भी अधिक है और शृङ्गाररस तो अधिक होना ही चाहिए। शिष्ट समाज में किस प्रकार यह रहस्य होता है वा होना चाहिए उसका उल्लेख इसमें देख लीजिए।

"धरि धीरज तहं सिद्धि अमोली मृदु बोली हँसि बोली।
वारि निहारि डारि टोना कहु लाल किया तित भोली ॥ १ ॥
तुम रघुनन्दन बंदन लायक मुददायक अभिरामा।
अञ्चल ओट दृगंचल चोटैं करिहैं चंचल बामा ॥ २ ॥
सरल रह्यो वह शम्भु सरासन ललन दलन जेहि कीनो।
भौंह कमान कठोर तियन की तकत करत बलहीनो ॥ ३ ॥
बड़े २ प्रबलन तुम जीत्यो करि छल बल बहु भांती।
अबलन जीतब कठिन लाड़िले जब लरिहैं द्वै छाती ॥ ४ ॥
सुनि सरहज के बचन सलोने अति रसीले रंगभीने।
मृदु मुसक्याय चाय भरि रघुबर बोले प्रेम प्रवीने ॥ ५ ॥
जौन भौंह धनुष मिलिबे हित सिवधनु किय दुइ टूका।
तन बल रहै जाय की प्यारी तामैं परी न चूका ॥ ६ ॥
बड़े २ बीरन जो जीते तदपि नहीं सुख पाए।
ललित लड़ाई लेन लाड़िली तुम्हरे महल सिधाए ॥ ७ ॥
परम पियारे संभु हमारे जो तुम उर दरसैहैं।
तो कर कमल चढ़ाय लाड़िली करि प्रसन्न बर लैहैं ॥ ८ ॥

रघुनन्दन के बचन श्रवन सुनि सिद्धि कुंअरि मुसक्यानी ।
बोली चन्द्रकला तेहि अवसर परम चतुर मृदुबानी ॥ ९ ॥
लखन लाल यहि काल न बोलहु कैसे रह्यो चुपाई ।
धों बिन काबू देखि कामिनी हिय में गयो डेराई ॥ १० ॥
लखन कह्यौ हंसि सुनहु सलोनी चन्द्रकला तुम नामा ।
हम चकोर रस चाखन चाहैं हर को कहूं न कामा ॥ ११ ॥
बोली कमला सुनहु भरत जी कैसे आप भुलाने ।
कहां परे बनिता मंडल में तुम तो साधु सयाने ॥ १२ ॥
धरि मृगछाला लै कर माला जपौ एकंतहि जाई ।
नहिं तो घेरि घेरि सब भामिनि करिलैहैं निज भाई ॥ १३ ॥
भरत कह्यौ तुमहीं भूलति हो हम तो नाहिं भुलाने ।
बड़े बिरागी सुनि बिदेह को तिन घर कौन पयाने ॥ १४ ॥
हम तुम बैठि एकांतहि प्यारी आसन उचित जमैहैं ।
तुम्हरे उरहिं राखि कर माला जपि जपि रैन बितैहैं ॥ १५ ॥

* * * *

लखि तेहि औरी राज किसोरी लै झोरी उठि दौरी ।
मूठिन चपल गुलाल चलावत घेरि लिये चहुंओरी ॥ २४ ॥
ललकारे पुनि सखन लखन प्रति बहु कुमकुमनि पवारे ।
कोउ के भुज कोउ के कपोल तकि कोउ के कुच बिच मारे ॥ २५ ॥
मूठिन प्रति मूठिन चलाय कै चमकहिं चपल कुमारी ।
चहल पहल भो राजमहल में मची अबीर अंधियारी ॥ २६ ॥
हो हो होरी हो हो होरी बोलहिं हो हो होरी ।
गावन वारी गावन लागीं दै दै हाथ हथोरी ॥ २७ ॥
निरखन आई नगर नागरी ते सब चढ़ीं अटारी ।
लखि कौतुक छज्जन ते छाड़े केसरि रंग पिचकारी ॥ २८ ॥
राजकुमर कुमकुमनि चलावैं पिचकारी सुकुमारी ।
निज पर लखी परै न काहु को मची धूम धुधुकारी ॥ २९ ॥
अबिर अंधेरी घिरी घनेरी कोउ न परत तहं हेरी ।
रंग निसानी धुंधु पटानी दरसी कछुक उजेरी ॥ ३० ॥
तब रघुनन्दन सिद्धि बदन मंह दौरि मल्यौ मृदु रोरी ।

सोउ अति चपल लपटि लालन को गाल गुलाल मलोरी ॥ ३१ ॥
भीगे पागे लटपट बागे लपटि भुअंगनि लागे ।
रंगी अबीर अनोखी अलकें हलकें कुंडल आगे ॥ ३२ ॥
परसि कपोल अमोल राम को प्रेम मगन भै प्यारी ।
बार बार पट सों मुख पोंछति करति प्रान बलिहारी ॥ ३३ ॥
लखि प्रसन्न मुख पान खवावति सरहज प्रान पियारी ।
सुंदरि की आरसी दिखावति बिहंसति अवध बिहारी ॥ ३४ ॥

यक यक गोरी सो २ झोरी मूंठि करोरिन मारी ।
को केहि बूझै नेक न सूझै अस छाई अंधियारी ॥
रामचन्द्र मुखचन्द्र चन्द्रिका तऊ न छिपी छिपाई ।
मनों मांझ सावन घन भीतर जागी जोति जोन्हाई ॥

इन ग्रंथों के अपेक्षा इनके बनाए ये छोटे मोटे ग्रंथ हैं–राजनीति, कलि प्रपञ्च, बारहमास माहात्म्य, और भी स्फुट कवित्त अपने प्रभु राजाओं के तथा और २ विषयों के इनके हैं पर वे कहीं पूरी तौर से संग्रहीत नहीं हैं । राजनीति तथा कलिप्रपञ्च के कवित्तों के पढ़ने से ज्ञात होता है कि इनको संसार का अच्छा अनुभव था वे जिस बात को देखते थे उसको बड़े ध्यान से बिचार कर उसमें गुण दोष विवेचना करलेते थे–यद्यपि यह साधु संतों के बीच अधिक रहते थे पर राज दर्बार में रहने से इनको हर प्रकार के मनुष्यों के चलन व्यवहार को देखना पड़ा जिसे इन्होंने छन्द में लिखकर चिरकाल तक स्थिर कर दिया है—राजकवि होने से ये जैसे तैसे कवियों को कुछ नहीं गिनते थे जैसा कि इस अर्ध कवित्त से विदित होता है ।

"एक तौ प्रधान दूजे बांधोपति दीन्ह्यो मान
तीजे गुनमान कहो कैसे दीन भाखेंगे ।
देखे कवि राउ होत नैा गुनी उराउ जिन्हें
ऐसे उमड़ कवित्त जय भाखेंगे ॥

इनकी मृत्यु सं० १९१७ चैत्र बदी द्वितीया को रीवां ही में हुई । मरने के पहिले ये अयोध्या की तय्यारी कर रहे थे जहां से

इनको विशेष प्रीति थी। यह बहुधा अवसर पाने पर महीनों अयोध्याजी बास करते थे-इनके पुत्र हनुमान प्रसाद जी हुए जिनको भूतपूर्व महाराजाधिराज मिहनी ने अपने राज्याभिषेक में सुवर्ण-पद आदि देकर सम्मानित रक्खा-हनुमान प्रसाद जी के दो पुत्र गोविन्द प्रसाद व जयहर्ष हुए॥

अथ राजनीति कवित्त रामनाथ प्रधान के बनाए।

भूपलक्षण।

देव दुज सेवैं प्रजा प्रान सम पोषैं चूक,
    कीन्हें पर रोषैं ना समोषैं मानि प्यार है।
काहू को न लेखैं न्याव डीलन परेखैं काम,
    काजी पै बिसेखैं काम देखै बार बार है॥
भाखत प्रधान मान चाकर को राखे बिना,
    बिगरे न माखैं कोऊ भाखैं जो हजार हैं।
साजि के समाजे करै ऐसो राज काजे ताहि,
    जानो नरराजे यह राम अवतार है॥ १॥

ब्राह्मन पै माखे प्रीति भाँड़न सो राखैं,
    देत बिस्यन को लाखे नेत भाखे यही सार है।
प्रजा द्वार रोवैं आप दोऊ जून सोवैं बिनै,
    कीन्हे गुसा होय टेह जोवैं बार बार है॥
जाकी नीक नारि जानै ताही को सकोच मानै,
    भाखत प्रधान आनै ये कौन बिचार है।
नीति नहिं पाले चाले याही रीती चाले ताहि,
    जानो महिपाले जम आले जानहार है॥ २॥

देवान लक्षण

राज नीति जानै बड़ो छोट पहिचानै लाभ,
    हानि अनुमानै काज ठानै सावधान है।
तजि कै गुमान बिन्ती सुनै सब लोगन की,
    दीन्हे बिन दीन्हे भूरि राखै सनमान है॥
भाखत प्रधान सेवा सहै नहिं सेवक की,
    रीझि खीझि दोऊ करिवे में जान है।
सांचो स्वाम काजी राखै रैयत को राजी सदा,
    ऐसे कामकाजी पर राजी या जहान है॥ ३॥

साची कहे माखें सील काहू सों न राखे धन,
ठाकुर को चाखें बैन भाखें स्वामकाजी के ।
आठों जाम सेवा लेत मागे मुहुं फेर लेत,
मंत्र मे अचेत हैं निकेत दगाबाजी के ॥
भाखत प्रधान पीर जाने नाहिं रैयत की,
औगुनी गुनी को सदा माने एक ताजी के ।
साचे जालसाजी बने झूठही मिजाजी सदा,
जाहि न सुजान ऐसे पाजी कामकाजी के ॥ ४ ॥
भूपे खुसी राखे तिन्हें देखे अति माखे ते,
उनकी रुख राखें तिन्हें भाखें भले चाल के ।
आप खात गाटें सेर रैइन के काटें रोज,
चाकर को डाटें कहैं नाटें साच ख्याल के ॥
बिन्ती सुने स्वास लेत कहैं खर्च को सकेत,
आपने चुकाय लेत आगे एक साल के ।
स्वारथ के साजी बोलैं स्वाम काजी अस,
देखे बहु पाजी कामकाजी कलिकाल के ॥ ५ ॥

सरदार लक्षण ।

जंग में सुजान बीर बंश में बखान बड़े,
महा मतिमान मंत्र जाने राज कारन के ॥
समै परे माखैं त्रास काहू को न राखैं पास,
साहो को न भाखैं बैन भाखैं नीति धारन के ।
सरन न त्यागैं दान जुद्ध मैं न भागैं कबों,
भाखत प्रधान प्रीति पागैं नाहिं दारन के ॥
स्वामी काज राचे बैन बोले न असाचे कबि,
ऐसे गुन जाचे ठीक साचे सरदारन के ॥ ६ ॥
ख्वानी मद भूले देह भारी देख फूले मानि,
आपको अतूले बाढ़ पोंछे हथियारन के ।
सूधो कहे ऐंठे बात बोलते अचैठै धरे,
रैयत के पैठैं साथ बैठैं मतवारन के ॥

निमकहराम काम स्वामी के न आए कबों,
भाखत प्रधान धाम बाटैं पर दारन के ।
मन के मिजाजी विप्र साधु के अकाजी सदा,
ऐसे गुन राजी दीख पाजी सरदारन के ॥ ७ ॥

मुसद्दी लच्छण ।

लिखैं अंक साचे अनु अच्छर रेख खाचे स्वाम,
कारज में राचे रख जाचे जाम जाम के ।
रैयत हुआब आब राखि के उगाहैं बाब,
चाकर हिसाब खाब देत दाम दाम के ।
सहसा न रोषै बात सब की समोषैं सदा,
भाखत प्रधान पोषैं दुज धाम के ।
गुन के अमद्दी सत्र मान के मरद्दी ऐसे,
चाहिये मुसद्दी राजगद्दी ठिग काम के ॥ ८ ॥
चिट्ठा न चुकावैं राज फाजिल सुनावैं दिनौ,
रासहू धबावैं न देखावैं कछू दाम को ।
घूसे लेइ घूमैं तऊ रैयत पै रूसैं धन,
ठाकुर को लूसैं मूसैं मुलुक तमाम को ॥
झूठे लिखि राखै करै ताहू पर साखै कोटि,
भाखत प्रधान अभिलाखै पर वाम को ।
स्वामी के न काम को करैया बदनाम को सो,
राखिये न पास ऐसे कायथ गुलाम को ॥ ९ ॥

ब्यौहर लक्षण ।

देत ना सकेत पालि पालि कै रिनी ते लेत,
त्यागत न हेत नेत बाधे है जो बान को ।
राजा रंक कूर सूर सबही सो भाखै पूर,
राखै न गरूर निज संपति के मान को ॥
दाम को न भाखै चाब रिनिया की राखै सदा,
भाखत प्रधान अभिलाखत कल्यान को ।
संकट कटैया सदा साकरै सहैया भैया,

लीजिये रुपैया ऐसे व्योहरे सुजान को ॥ १० ॥
कोऊ जो न लेइ ताऊ ठगि के बलाइ देइ,
पठवै पयादा रोज पूजिबे करार के ।
जोरी व्याज बट्टा भूरि चौगुनो बढावै मूर,
कागद बनावै पूर झूठही लिखार के ॥
भाखत प्रधान कान काहू की न राखैं कछू,
काफर कमाई जेठ भाई दगादार के ।
बैरी परवार के लुटैया घर द्वार के,
सो करज न काढौ ऐसे व्योहार गमार के ॥ ११ ॥

पंचलक्षण ।

स्वारथ औ परमारथ माहिं जथारथ बात अहै सब जानी ।
रंक और राउ को एकहीं भाउ निसंक नियाव निपाटहि छानी ॥
संकट प्रान परेहू प्रधान तऊ मुख आन न भाखत बानी ।
कांचन ओर लखै न कबौं अस पाँचन को परमेश्वर मानी ॥ १२ ॥
आवै निआउ न दाउ कछू लहि संपति पांचन में गनि जाहीं ।
राजदुवार लखैं जेहि चार तेही रुख ठारि प्रसंग बताहीं ॥
भाखै प्रधान चलै यहि रीति अनीति अधर्म के मूरति आही ।
पूरि अभागी भई तिन की जिन के घर पाच ये भाखन जाहीं ॥१३॥

बैदलक्षण ।

रोगिन कान सुनै जो कहूँ सहसा निज डीलनही उठ धावै ।
जाय के ताहि भरोस दै भूरि सो नारी निहारि के रोग मिलावै ॥
देत सुधा सम ते रस है मुरदो मुख में परे प्रान जिआवै ।
भाखै प्रधान ये बैद सुजान जो कालहु के करतें धरि ल्यावै ॥ १४ ॥
जाय जो बलावै ताहिं आसन टरकावै देव,
जोग ते जो आवै ना सुनावै रोग नाम है ।
भेद न बतावै तात पानी लै पियावै,
व्रत डेड़ सै करावै कहै ताही में अराम है ॥
भाखत प्रधान सान चौगुनी धनंतर ते,
एक बार देखि के न झाँके तासु धाम है ।

आपु न करै अराम रोगी को कहै निकाम,
ऐसे बैदराज को दूरि तें प्रनाम है ॥ १५ ॥

आंक धतूर धमोइ भरे कखरी पुटकी जग बैद कहावैं ।
जानै नाहीं कछु रोग के लच्छन सीत भये पर माठा पिआवैं ॥
हीसा चहै महा ब्राम्हण सो गुन ताके प्रधान कहां तक गावैं ।
कुत्सित बैदन की करनी यह बैतरनी लैके घर आवैं ॥ १६ ॥
पीठ पिराय तौ पेटहिं टोवहिं पेट पिराय तौ नारी निहारैं ॥
द्वै पुरिया पहिले बिष की पुनि पीछे मरे पर रोग बिचारैं ॥
बीस रुपैया सगुन लै लेहि न देहि जबाब न त्यागत द्वारैं ॥
भाखे प्रधान ये बैद कसाइहि दैव न मारै तौ आपुही मारैं ॥ १७ ॥

नारीलक्षण ।

सीलता भरे हैं नैन भाखती सुधा से बैन,
ऐन काज करें मैं सचैन चपलासी हैं ।
रति मैं बिलासी पति प्रेम की पियासी सब,
भाति तें सुपासी धाम राजती रमासी हैं ॥
रहै न उदासी सदा दासी सम जोरैं हाथ,
भाखत प्रधान परलोक की प्रकासी हैं ।
कीन्हें तप खासी भाग जागे नर जासी ताहि,
मिलती उमासी ऐसी नारि सुखरासी है ॥ १८ ॥
सासु के बिलोके सिंघिनी सी जमहाइ लेहिं,
ससुर के देखे बाघिनी सी मुख बाउतीं ।
ननद के देखे नागिनी सी फुसकारैं बैठि,
देवर के देखे डाकिनी सी डर पाउतीं ॥
भाखत प्रधान मोछा जारती परोसिन के,
खसम के देखे खाउ खाउ करि धाउतीं ।
कर्कसा कसाइनी कुबुद्धिनी कुलच्छनी ये,
करम के फूटे यह ऐसी नारि आउतीं ॥ १९ ॥
रोये रहैं रार करैं घर को न कारबार होत,
भिनसार द्वार द्वार लरि आउती हैं ।

सासु जो बहू के जात नेकहू सिखावैं बात,
तौ वै पीसि पीसि दात दून गरिआउती हैं ॥
भाखत प्रधान या गनै को जेठ देवर को,
खसमै के खान को खत्रीसिन सी धाउती हैं ॥
कुल की कुठारनी उखारनी कुटुम्बन की,
ऐसी नीच नारिनी ते कलहा कहाउती हैं ॥ २० ॥

पाखंडीलक्षण ।

जाति को छुपावै औ पुजावै साधु ब्रामन सों,
त्याग्यो देखावैं मनो सिद्ध झालखंडी के ।
देखैं जहां राजा राउ चौगुनो देखावै भाउ,
झूठे कै प्रेमी नाउ रोवै हेत रंडी के ॥
पूजा पाठहू समेत करें सब लोभै हेत,
आनै उपदेस देत वागै वेष डंडी के ।
मानै है गुमान कैसे मिलै भगवान जैसे,
भाखत प्रधान ऐसे लच्छन पाखंडी के ॥ २१ ॥

दंभीलच्छण ।

धोती सेत हाथे वेत फूंकि फूंकि पाँउ देत,
जग में पुजावै हेत कीन्हे स्वाँग भारी हैं ।
कौडी के गुलाम सदा लौंडी के चटैया चाम,
कहैं हमैं सीताराम छात छातकारी हैं ॥
गुर ना गोविंद बांचे सातौ जातिहू सो जाचै,
भाखत प्रधान मानो साचै उपकारी हैं ।
सिद्धता के बाधे जाल दुनियै देखावै चाल,
दंभिन के ऐसे ख्याल चीन्हत खेलारी हैं ॥ २२ ॥

पढैया के लच्छण ।

काव्य कोस के अरोध जौलौ नहिं आवै बोध,
तौलौ नहिं छांडे सोध जुक्ति लै जनैया की ।
मधुर उचारै रस भावहू बिचारै व्यंग,
पद ते निकारै उक्ति धारै समुझैया की ॥

थोरो देख पावे पंथ सिगरो लगावे ग्रंथ,
ताहू पै प्रधान कीर्ति गावे पढ़वैया की ।
समुझि के बोलैं स्वाल अरथै में राखैं ख्याल,
भाखैं कवि ऐसी चाल चतुर पढैया की ॥ २३ ॥
अरथ न ऊझै ना कथा प्रसंग सूझै कछू,
बाचत अरूझै रीति बूझै ना बुझैया की ।
केतो घोष राखै तऊ आनो तान भाखै जो,
सिखावै ताहि माखै मान राखै समुझैया की ॥
घोखत में सोवै पोथी दोऊ जून टोवै अर्थ,
पूछे मुख जोवै आप खोवै पढ़वैया की ॥
पद में न राखै ख्याल झूठै मूंड़ मोरे गाल,
भाखै या प्रधान चाल चूतिया पढ़ैया की ॥ २४ ॥

गुलाम लक्षण ।

नेह नीच नारिन सो प्रीति विवचारिन सो,
पूछत कहारिन सो भेद धाम धाम के ॥
नैन सैन मारैं घाट बाट में खखारैं इतो,
बोलैं उतै ठारैं और निहारैं अंग वाम के ॥
तररि बनावैं खोरि खोरि फिरि आवैं राति,
दोहा ते सुनावै ते जगावैं बान काम के ॥
गर्वहि गहे ते ऐंठि जात है कहे ते ऐसे,
भाखत प्रधान येते लछन गुलाम के ॥ २५ ॥

साँचे के लक्षण ।

कारज वो कीन्हे आस कोऊ जन आवै पास,
बोलैं ना निरास ताकी बिनै सुन लेत हैं ॥
संपति विहीन दीननिगुनी गुनी प्रवीन,
सब की यकीन राखि साधत सुनेत हैं ।
भाखत प्रधान जौन जौन जाको कहि देत फेरि,
पलटै न हेत सत्य सीलता के सेत हैं ॥
गेह जान देत निज देह जान देत जानहू को,
जान देत ना जोबान जान देत है ॥ २६ ॥

लावर लक्षण ।

आजु जो कहैं तो आठ मास लौं न लागै ठीक,
काल्हि जो कहै तो एक मास लों बलावहीं ॥
पाँच दिन कहैं पाँच बरष बिताइ देइ,
पाख जो कहैं तो लै पचासै पहुँचावहीं ॥
भाखत प्रधान जो या ताहू पै न त्यागे द्वार,
आपु न लजात फेरि बाही को लजावहीं ॥
ऐसे सत्य भाखी सरदार हैं दैवैया जहाँ,
काहे को पवैया तहां जीवत लौं पावहीं ॥ २७ ॥

मीत लक्षण ।

बातै ना सुनावैं करतुति कै देखावैं सत्रु,
आय जो सतावै तौ बचावै राखि पानी सो ॥
औगुन को गाड़ै गुन चाय्यौ ओर माड़ै जाहि,
साकरे न छोड़े सोक आड़े बुद्धिवानी सो ॥
भाखत प्रधान सान राखै परमाथ की,
भाखै ना जथारथ की भाखै राड़ रानी सो ॥
चाहो चातुराई गुन आई जो बड़ाई बड़ी,
करिये मिताई बरिआई इमि मानी सो ॥ २८ ॥

दरबारी लक्षण ।

सबै की सुनीजै बात पूछे ते कहीजै सीख,
बड़ेन सो लीजै काम कीजै सुख सोता है ॥
करै दरबारै रहै ठाकुर को प्यारै सब,
सभा को निहारै औ सम्हारै गूढ़ गोता है ॥
भाखत प्रधान मान राखे रहो सब ही को,
राज के समीपिन को जानिये न कोता है ॥
औगुनी गरूर होय केतौ बेसहूर पै,
या भूप के हजूर को मजूर गरू होता है ॥ २९ ॥
चुगुल लबाई चोग चूतिया चिपोंग खोग,
लावर लपोच लुच्चा लालची लुटेरे हैं ॥

गाडरी गद्दारदार गव्वर गमार गाँडू,
    गप्पई गुलाम गुंडा आदि जे घनेरे हैं ॥
भाखत प्रधान येऊ रहैं दरबार ही में,
    धन के खवैया ये न स्वाम काज केरे हैं ॥
धीर बुद्धिमान लोक बेद में सुजान ऐसे,
    राज के निसान प्रानी मिलत निवेरे हैं ॥ ३० ॥
नकटा निलज्ज औ निपान नीच निराचार,
    निर्दै निंदक लबार नाहट नेवाती हैं ॥
अलसी अधर्मी औ अखोदर गवाज चोर,
    अघटी अवाहिज अलाल आप घाती हैं ॥
भाखत प्रधान जेते कपटी कुचाली क्रूर,
    काफर कलंकी पूर कुमती कुजाती हैं ॥
केतो बड़ि जाँइ राजद्वार अधिकार पाय,
    इनके सुभायेन की चाल नाहिं जाती है ॥ ३१ ॥
फूले फिरें ऐठे गात सूधी बात में रिसात,
    मारे जात लात पै बतात ओहिदारी को ॥
होमौ ते निकाम काम कै कै बिडै ल्यावै दाम,
    साहू में गुलाम ठमा माने पनियारी को ॥
भाखत प्रधान ऐसी पाजिन की बाढी सान,
    कहाँ लौ करै बखान तिनके गमारी को ।
कुटना कलंकी धूत कोरहा कुकर्मी कूत,
    कांगड़ा कूपूत तेऊ मरै बड़वारी को ॥ ३२ ॥
करनी चमारन की सगति गवाँरन की,
    चाल मतवारन की ताही में भुलान है ।
भाखैं मजबूती खात रोजै चार जूती सबै,
    नीच करतूती पै सपूती को गुमान है ॥
भाखत प्रधान ऐसे गीदर गुलाम जेऊ,
    भागि बस पाय जात राजघर मान हैं ।
लालच के मारे चार चूतिया सराहै तिन्हैं,
    सज्जन सुजान लेखैं स्वान के समान हैं ॥ ३३ ॥

आदमी न चीन्हैं यह को है कौन लायक को,
सबही सो बाधे फिरै गर्व ही के बाना है ।
जानै ना गवार जानिबे की चार बातैं झारि,
नाहक बनाये फिरै झूठे महताना है ।
भाखत प्रधान राखे कपटै को हेल मेल,
ऊपर ते आपन औ भीतर बिराना है ॥
जेते जग जाये नर ऐसही सुभायेन के,
कहिबे को मर्द तिन्हैं जानिये जनाना है ॥ ३४ ॥
कौड़ी चार पावै तौ चमारहू की छाहैं नाहिं,
जाति को चोखाई चाह्यो ओरनि जगावहीं ।
भंगी मतवार खासे नंगा साहिझार आगे,
पीछे नब भार द्वार द्वार नित धावहीं ॥
भाखत प्रधान ऐसे नकटा निलज्जन को,
सज्जन सुजान सब भाँतिन बचावहीं ।
चलनी को चाम और चोरे की लगाम ऐसे,
सदा के गुलाम काम काहू के न आवहीं ॥ ३५ ॥
एक एक कौड़िन को फेरैं मूड द्वार द्वार,
दिनौ रात दौरैं गमी सादी न बचावहीं ।
लेत लेत यहन कुदान ना अघान कबौं,
बरषी सराध खान हेत रोज धावहीं ॥
भाखत प्रधान याही भांति धन जोरैं खूब,
अब तो मिजाज बड़े लोगन देखावहीं ।
चालतो गँवारी डौलि राखैं सरदार पै,
हूकै भिखारी बड़आरी कहाँ पावहीं ॥ ३६ ॥
बड़ेन सो यारी छड़ी बात पै तयारी चाल,
चलैं पनियारी परनारी ना पतीजिये ।
साधुन सो मित्रता अमित्रता असाधुन सो,
विद्या में बिचित्रता देखाय मानि लीजिये ॥
भाखत प्रधान सान चाहो जो सुजानन में,
तजिके गुमान पाँव याही पंथ दीजिये ॥ ३७ ॥

बिप्रबंस रावन गनायो गयो राछस में,
छत्री बंस कौसिक कहायो बिप्र जाती है ।
दासी पूत बिदुर ते लेखे गये साधुन में,
भई जुरजोधन की पापिन में ख्याती है ॥
भाखत प्रधान भई कुब्जा पटरानिन में,
गनी गै कसाइन में कंस की जमाती है ।
ऊंच नीच जाती होय कोन हू वे पाँती पै,
या करनी बिकाती है ना जाति गनी जाती है ॥ ३८ ॥

ठाकुर के लक्षण ।

चोरेन में तोषै चूक कोटिन समोषै दान,
मान में अदोषै सदा पोषै सेवकान को ।
सहसा न माखै आब आपदा में राखै जकै,
देत में न लाखै चूकि भाखै न जुबान को ॥
छोट औ बड़े की दर जानै पहिचानै चाल,
भाखत प्रधान उर आनै न गुमान को ।
धनको न धान को न राखी मोह प्रान को,
पै कबहूं न त्यागी ऐसे ठाकुर सुजान को ॥ ४९ ॥
चोरन में रोषै एक बाँधे रहैं दोषै कबों,
सेवा में न तोषै चूक घोषै लरकाई की ।
बिन्ती किये माखै खान पान को न झाखै आब,
समै में न राखै सान भाखै ठकुराई की ॥
झूठें कहैं हाजिर हैं ताके पर राजी सदा,
भाखत प्रधान सिरताजी है ढुठाई की ।
बेतो जाहिरै वा होति केतन की के वा तहां,
करिये न सेवा ऐसे ठाकुर कसाई की ॥ ४० ॥

चाकर के लक्षण ।

बोलै न बेकाज सदा सेवै राखि कै इलाज,
देखिकै मिजाज काज करै नित स्वामी को ॥
जैसो रुख जानै तहाँ तैसो काम ठानै गुन,

सभा में बखानै नहिं आनै लोन्ह रामी को ॥
गरब न ल्यावै बात बिगरी बनावै सदा,
भाखत प्रधान त्यों बचावै बदनामी को ॥
देके मान बार बार राखी प्रान ते पियार,
कबहूँ न त्यागी यार ऐसे अनुगामी को ॥ ४१ ॥

देखै कुकाम न काम कछू बिनती सब जाम करै अति माखी ॥
ठाकुर को न ठिकान गुनै नित आपनो स्वारथ के अभिलाखी ॥
भाखै प्रधान ये कूर कुसेवक काम की दार तरेरहिँ आँखी ॥
काकर से कमकैं हिय में अस चूतिया चाकर को नहिं राखी ॥ ४२ ॥

खीझि के काम करैं नित ही नहिं रीझि की बात कबों बनि आई ॥
ठाकुर ते जो करैं बिनती जनु ऊपर बाघ पर्यौ बिरुझाई ।
रोज लरैं दरबारिन सों गुन ताके प्रधान कहां तक गाई ॥
बैठि सभा फुसकारहिं साँप सो यों सठ सेवक को न टिकाई ॥ ४३ ॥

भंडारी के लक्षण ।

सावधान आठो जाम स्वामी को सरेखै काम,
देखै न कुकाम काम करै न गवारी को ॥
धनी मन जानै बड़ो छोट पहिचानै लाभ,
हानि अनुमानै काज ठानै होसियारी को ॥
भाखत प्रधान पालै प्रान के समान कोस,
सुन्दर सुजान छान करहिं लिखारी को ॥
बनै औ बिगार कोष भार राखै बार बार,
दीजिये भंडार ऐसे सुघर भंडारी को ॥ ४४ ॥

स्वामी को न देखै काम सोवै परे आठो जाम,
निमकहराम बाना बांधे मतवारी को ॥
संपति भंडार को न करत सँभार एको,
रचिकै सिँगार बेष धरै सरदारी को ॥
भाखत प्रधान खान पान में सयान बड़ो,
निपट नियान मान राखै ऐंठदारी को ॥
गरबी गँवार करै प्रभु को न कारबार,
दीजे न भंडार ऐसे भडुवा भंडारी को ॥ ४५ ॥

गवैया के लक्षण ।

स्वामी औ सभा को सब जानै जहाँ जैसी रीति,
तैसो गान ठानै देखि सुन्दर समैया को ॥
ऐसो सुर गावै कान परते छकावै सब,
लोगन रिझावै जौन मूरख जनैया को ॥
लेत जब तानै तुम्बुरै को लघु मानै गुन,
भाखत प्रधान जस गानहि देवैया को ॥
सुन्दर सुजान सीलदार सरदार प्यार,
राखो दरबार ऐसो चतुर गवैया को ॥ ४६ ॥
गुनी न सराहै गान आपै रंग में भुलान,
सभा महं ठानै तान मान के जनैया को ॥
राग जो अलापैं गदहा के सुर ठापैं सुनि,
मानो कान चापैं मूड चढ़त सुनैया को ॥
भाखत प्रधान पावै केतहू इनाम दाम,
तऊ बदनाम नाम करत देवैया को ॥
गरबी गँवार सरदार को न प्यार ऐसो,
राखो दरबार में न गँडुआ गवैया को ॥ ४७ ॥

पंडित के लक्षण ।

विद्या को निधान लोक वेद में सुजान बड़ो,
मतिमान मोद दायक गुनीन को ।
काहू पै न माखै स्वाम काज अभिलाखै पक्ष,-
पात नहिं राखै सत्य भाखै लै यक़ीन को ॥
भाखत प्रधान बे प्रमान की सुनै न बात,
करहि समान यत्न दीन औ अदीन को ।
दीजे बेस वास कबौं कीजे ना निरास ताहि,
राखो निज पास ऐसे पंडित प्रवीन को ॥ ४८ ॥
धरम बिहीन काम क्रोध के अधीन सदा,
मूढ़ मति हीन डसा राखे है प्रवीन को ।
धर्म को न लेस धर्म मान को बनाये वेस,
भाखैं मनो सेस उपदेस लै मुनीन को ॥

लीने बिना लांच कबों सभा में न बोले सांच,
भाखत प्रधान गुन खंडत गुनीन को।
लीन औ अलीन को विचारै न अकीन को,
सो राखिये न पास ऐसे पंडित मलीन को ॥ ४९ ॥

ज्योतिषीलक्षण।

कौन करतार लिख दीनी है लिलार अंक,
ताको कै विचार करि देत भलो ज्ञान को।
सागर सुखाय धू सुमेर टरि जाय पै या,
बचन न जाय जो न बोलहि प्रमान को ॥
भाखत प्रधान जानै सास्त्र के निदान सबै,
करहि बखान भूत भावी वर्तमान को।
दीजै दान मान को न कीजे अपमान को,
सो राखौ निज पास ऐसे जोतसी सुजान को ॥ ५० ॥
सास्त्र को न जानै सार जैसो जहां देखै चार,
ताहीं अनुसार भाखै राखै न विचार को।
लाभ कहै हानि होत हानि कहै लाभ होत,
ताहू पै उदोत चाहै राजदरबार को ॥
भाखत प्रधान कबौं धोख्यो न फुरी जबान,
नाहक गुमान ठानै आपु करतार को।
खात नेग चार को न जानै जोग बार को,
सो राखिये न पास ऐसे जोतषी लबार को ॥ ५१ ॥

कविन के लक्षण।

व्यंग औ भाव कढ़ैं पद तें मृदु अत्तर मीठे लगैं श्रुतिमाहीं।
नूतन उक्ति अनूपम जुक्ति सुकाव्य के अंग समेत सुहाहीं ॥
भाखै प्रधान भरे सब भूषन दूषन देत कोऊ तेहि नाहीं।
यों कविता चतुरै कवि की कवि लोग सुनै बिन मोल बिकाहीं ॥५२॥
अर्थ न चोखो कटै पदते कटु लागै सुनै बरनै मृदु वाही।
उक्ति ते हीन न जुक्ति नवीन कबीन के रीति ते हीन सदाही ॥
भाखै प्रधान भरे सब दूषन कोऊ सुनै ना गुनै तेहि काहीं।
यों कविता कवि मूरख की कवि कौतुक मानि हसैं चहुंपाहीं ॥५३॥

काहू को अर्थ नीको पद ना जुरत ठीको,
काहू को पदहि नीको अर्थ सुख नाहीं है ।
काहू को अर्थ पाठ दूनो में तरंगी न ताई,
काहू को सच्चताई दूनो में लखाई है ॥
भाखत प्रधान कवितान के अनेक भेद,
जानत सुजान स्वाद गनै ना सिराही है ।
केरा सम पेस सम दाख औ दरीमा सम,
आम के बदाम के समान ते सुहाही है ॥ ५४ ॥

कपूत सपूत के लक्षण ।

बाप की रजाय राखैं गारिहू दिये न माखैं,
कबहूं न भाखैं बैन निज करतून के ।
देत में न रोषैं चारि सब की समोषैं परवार,
निज पोषैं भले तोषैं एक सूत के ॥
भाग्य बढ़ावैं गुन गर्व ना देखावैं बिप्र,
साधु ना सतावैं मन भावैं सब भूत के ।
रच्छन अपच्छन के तच्छन करैया काज,
भाखत प्रधान ऐसे लच्छन सपूत के ॥ ५५ ॥
बाप को कछू गनै न बोलत तरेरे नैन,
गुरहू सो भाखे बैन कपट कुसूत के ॥
आप पेट पोषे परवार को न तोषैं सीख,
दीन्हें पर रोषैं चूक घोषैं सब भूत के ॥
गर्व भरी आखैं सूध काहू सो न भाखैं प्रीति,
पाजिन सो राखैं रस चाखैं संग कूत के ॥
हीन करतूत के मवासी छली भूत के,
सो भाखत प्रधान ऐसे लच्छन कुपूत के ॥ ५६ ॥

चोपदार लक्षण ।

देसी परदेसी की सभा की समै जानै सबै,
ताही अनुसार पेस राखै दरबार में ॥
जैसो रुख जानै तहां तैसो काम ठानै छोट,

बड़ो पहिचानै सनमानै बड़े प्यार में ॥
भाखत प्रधान सावधान रहैं आठौ जाम,
स्वामी को मिजाज मान जानै बारबार में ॥
सुमति सुजान सीलदार सरदार प्यार,
ऐसो चोपदार सदा चाही राजद्वार में ॥ ५७ ॥
जिन्हैं कहैं रोकैं तिन्हैं जात में न टोकैं जिन्हैं,
कहत न रोकैं तिन्हैं टोकैं बार बार में ॥
जिन्हैं न बोलावैं तिन्हैं सभा में ले आवैं,
जिन्हैं भूपहू बोलावैं न जनावै सरकार में ॥
भाखत प्रधान जानै स्वामी को मिजाज नाहिं,
कुकुर से भोंकि धावैं देखत दुवार में ॥
गरबी गँवार सरदार को न प्यार ऐसो,
पाजी चोपदार को न राखौ दरबार में ॥ ५८ ॥

वैराग के लक्षण ।

संपति तीनहुं लोकन की जिनने मन ते मल मूत सो त्यागी ।
कानन में बिचरै सुख सों मुख सों हरि नामहि की रट लागी ॥
छूट गई जग की दुविधा तन मानै मुधा बसुधा बड़भागी ॥
खासे निहंग असंग बिहंग से भाखे प्रधान ये सांचे बिरागी ॥ ५९ ॥

भक्त के लक्षण ।

देखैं चराचर में हरि रूप सुरंक और भूप बराबर जानै ॥
बैरिहु को दुख देत नहीं अरु अपने को तिन ते लघु मानै ॥
रामकथा सुनि कै हरषैं बरषैं जल नैन तजैं तन भानै ॥
प्रेम असक्त विषै ते बिरक्त तेई हरिभक्त प्रधान बखानै ॥ ६० ॥

ज्ञानिन के लक्षण ।

ब्रह्म सरूप अहै सिगरो जग ब्रह्म ही है सब पौन औ पानी ॥
मैं अरु मोर औ तोर अहै यह माया को रूप लियो पहिचानी ॥
जैसे रहै मति तैसे परै निज देह अनित्य लिखे दृढ़ मानी ॥
है सब थान में मोह महान सुभाकै प्रधान ये पूरन ज्ञानी ॥ ६१ ॥
ऊपर साधु को वेष किये अरु भीतर नीच विषै अभिलाखी ॥

ध्यान कहैं सत मारग को नहिं मानत बेद पुरान की साखी ॥
चोरिन कोटिन पाप करैं बचै कोउ ताही तरेरहि आँखी ॥
ज्ञान के पापिन की यह चाल प्रधान पुरान जथारथ भाखी ॥ ६२ ॥
धोरो सुधर्म करैं न कबौं नित झूठे सुकर्म सभा में सुनावैं ।
ज्ञान कथै जग झूठो सबै तिय के हित भूषन रोज गढ़ावैं ॥
दान के लेहु कहैं सब सों एक कौड़िहु आप न देहि देवावैं ।
बातन ही के बनैं फिरं साधु प्रधान येई ठग भक्त कहावैं ॥ ६३ ॥

हिन्दी का पहिला नाटक।

(बाबू राधाकृष्ण दास लिखित)

यह नाटक जो आगे दिया जाता है हिन्दी का प्रथम नाटक है। इसके रचयिता पूज्य भारतेन्दु जी बाबू हरिश्चन्द्र जी के पिता श्रीकवि गिरिधर दास प्रसिद्ध नाम बाबू गोपालचन्द्र थे। भारतेन्दु जी जब ९ वर्ष के थे तब यह नाटक बना था। अतएव सन् १८४१ ई० में यह बना था। इसके पहिले जो कई ग्रंथ नाटक के नाम से प्रसिद्ध थे, जैसे ब्रजबासीदास का प्रबोधचन्द्रोदय नाटक या नेवाज का शकुन्तला नाटक, ये सब काव्य के ढङ्ग पर थे। पात्र प्रवेश आदि नाटक के नियम इनमें नहीं बरते गए थे।

इस नाटक की पूरी प्रति का कहीं पता नहीं लगता, केवल प्रथम अङ्क कविवचनसुधा के पहिले वर्ष के एक अङ्क में संयोग से रद्दियों में मिल गया। उसे पाठकों के विनोदार्थ प्रकाशित करता हूं।

कवि का जीवनचरित अलग भारतेन्दु जी के जीवनचरित में विस्तार के साथ प्रकाशित हो चुका है इसलिये उसका यहां देना आवश्यक नहीं है।

नहुष नाटक।

महाकवि श्री गिरिधरदास

(उपनाम बाबू गोपालचन्द्र) कृत।

(प्रस्तावना)

दो०। नागर नट पट-पीत-धर, जिमि घन विज्जु विलास।
भव आतप को भय हरत, होत सुखी सब दास॥ १॥

(मङ्गलाचरणान्तर नान्दी)

कबित्त। मेचक बरन बर जीवन निवास घर
बकुलनि की लसति सुन्दर परम दाम।
सहित पर भंजन की गति धरै अम्बर
बिराजै प्रगटावै तिय तन काम॥
हिय हरषित महा सारंग धनुस धरै
बरसत सर पर पूरै जन अभिराम।
गिरिधरदास देखि नीलकंठ नृत्य करैं
ऐसो बसो आय मेरे मन कोऊ घनस्याम॥ २॥

(अपिच)

सवैया। नित गावत सेस महेस सुरेस से
पावत वांछित भृत्य औ भृत्या।
स्रुतिकीरति बिस्रुत जासु महा
जग पातक वृन्दनि पातक कृत्या॥
भव तारन को गिरिधारन जा मधि
आपुने सों अधिकी धरी सत्या।
वर आनंद-धाम सुदाम गुनाकर-
स्याम को नाम हरै सब हत्या॥ ३॥

(नान्द्यन्ते सूत्रधारः)

सूत्र—सब कोऊ मौन ह्वै हमारी बात सुनो। विविध बिबुध वृन्दारकवृन्द—वन्दित वृन्दाबनवल्लभ ब्रजबनिता बनजवनी विभाकर बंसीधर विधुवदन-चकोर चारु चतुर चूडामणि चर्चित चरण परमहंस प्रसंसित मायावाद—विध्वंसकार श्री मत् वल्लभाचार्य वंस अवतंस श्री गिरिधर जी महाराजाधिराज ने मोको आज्ञा दीनी है। सो मैं गिरिधरदासकृत नहुष नाटक आरम्भ करौं हौं।

(तब आगे बढ़ि हाथ जोरि कै)

इहां सब सुभ सभ्य सभाध्यच्छ अपने अपने पच्छन के रच्छन मैं परम विचच्छन दच्छ हैं इनके समच्छ इह ढिठाई है तथापि कृपा करि सब सुनो।

छप्पय । जदपि मातु पितु भ्रात विश्व गुन-गन अधिकाई ।
तदपि तोतरे बोल सुनत सिसु के मन लाई ॥
जदपि प्रकासक आप सूर जग और न दूजा ।
तदपि भक्त जो दीप देत तेहि मानत पूजा ॥
तिमि जदपि सबै पंडित सुघर गुन बिनु कोउ न लेखिए ।
यह तदपि हमारो नाट्य-विधि चित दैके अब देखिए ॥ ४ ॥

(तब पारिपार्श्वक)

(भाव) अहो तुमारी बात सों मेरे गात में आनन्द नहीं समात है । तासों कौन श्री गिरिधर जी महाराज हैं सो बतावो ।

सूत्रधार । (सानन्द) अहो तुमने नहीं जाने ।

(तब सामुहे देखि के)

वह सिंहासन पर सूरज समान तेजमान चन्द्र समान सीतल सुभाव मंगल समान मंगल नाम बुध समान बुध गुरु समान गुरु कवि समान कवि सप्तम ग्रह सों रहित विराजैं हैं ।

छप्पय । श्रुति उद्धारक मीन कमठ निरजर कुल जयकर ।
महि उद्धरन बराह भक्त भय हर नर नाहर ॥
असुर मोह कर बटुक दुष्ट मद हरन परसुधर ।
धरम धीर रघुबीर सीरधर ब्रज जन प्रियवर ॥
बुध सदा अहिंसा रति धरन कलकी कलि कलमस हरन ।
गिरिधर सम दस वपु धर प्रगट गिरिधर लाल कृपा करन ॥ ५ ॥

पारिपार्श्वक । तुमने जैसे कृपा करि श्री महाराजाधिराज को दरसन करायो तैसे कृपा करि नाटक हू दिखायो चाहिए ।

सवैया । थावर जंगम सृष्टि रची विधि-
न्यारी करी सबहीन की रीतै ।
तामैं सिरोमनि मानवहू को तन
देवहु गावत जा गुन गीतै ॥
विद्या बनी सिगरी इहि हेत
विचारिके जा सुखसार प्रतीतै ।

सोई घरी अहै कंचन की धन
ओ रस की चरचा मधि बीतै ॥ ६ ॥

सूत्रधार। घर सों सुघर घरनी कों बुलाइकै मैं यामैं प्रवृत होउ हैं।

(यह कहि नेपथ्य की ओर देखि के कह्यौ)

अरी यहां आउ।

(तब प्रविसि कै नटी)

आर्यपुत्र, कहा आज्ञा।

सूत्रधार। दोहा। जा बिधि राजा नहुष नैं कियो स्वर्ग कों राज।
सो नाटक चाहत करन हुकुम कियो महराज ॥ ७ ॥

नटी। जो आज्ञा।

सो तू सावधान होय कै कारज कों साधि।

(इतने में नेपथ्य में)

अरे शैलूषाधम

सवैया। जथा श्रुति मैं बरन्यो बिसतार
तथा हयमेध करै सतबार।
हजारन पुन्य के पाप दहै
गिरिधारन पूजै अनेक प्रकार ॥
मिलै तब आसन इन्द्र को स्वर्ग मैं
आइ करै सुर वृन्द जुहार।
कहै तेहि बैठि है मानव क्षुद्र
अरे नट पापी गंवार लबार ॥ ८ ॥

सूत्रधार। (कान दै कै)

सवैया। गौर सरीर अबीर से लोचन
मस्तक मैं कसमीर बनाए।
सीस किरीट नफीस लसै
बिबिकुण्डल कानन रत्न जराए ॥
श्री गिरिधारन के बल सों
बधि वृत्रासुरै सब दैत नसाए।

मो बतियां सुनि कोप भरो
सुरनायक आवत बज्र उठाए ॥ ९ ॥

दोहा । यह हम सों सब बिधि बड़ो निरजर कुल को छत्र ।
अब इत रहनौ उचित नहिं तासों चलु अन्यत्र ॥ १० ॥

(यह कहि दोऊ निकरे)

इति प्रस्तावना

प्रथम अङ्क ।

स्थान—राजभवन

(तब प्रविस्यो इन्द्र)

अरे शैलूषाधम (यह कहत फिरन लाग्यो)

(इतने मैं नेपथ्य मैं)

सवैया । देखहु तौ बिपरीतता काल की जो करतार हू अग्यता ठानै ।
ऊंचो सिंघासन देर अघी कहं धर्म धरै तेहि दारिद सानै ॥
माथ बलौ गिरिधारन की जिहि नैन महत्तन सों पहिचानै ।
काटिकै ब्राम्हन मस्तक कों यह आपुने कों धरमातमा मानै ॥ ११ ॥

इन्द्र । (सभय कान दै कै)

कवित्त । भलो हू करत आय बिपति परत सीस
यह बिपरीत रीति बिधि की कुचालो सी ।
लोक सोक हस्यो हरि असुर को आसु तऊ
कढ़ी ब्रम्हहत्या दीह साँस लेत व्यालो सी ॥
मेरे जान मेरी जान लेन पाछे आवति है
सूल लिए कोप भरी प्रलय कपाली सी ।
कुमति कलंकिनि कुचालिनि कुचैल क्रूर
काल सी कराल काल रात की सी काली सी ॥१२॥

(यह कहि चल्यो) (तब इन्द्र आत्मगत)

दोहा । एक बार मार्‌यो गुरुहिं तब बिधि मार्‌यो ताप ।
अब दूजी हत्या लगी हा ! किमि जै है पाप ॥ १३ ॥

(यह कहि निकस्यो । तब प्रविसी ब्रह्महत्या)

ब्रह्महत्या । अरे निज मुख निज प्रसंसक नृसंस, ब्राह्मन बध करने वारे, कहाँ भाग्यो जाय है ।

(यह कहत खलित नृत्य कियो । फेरि निकरी)

(तब प्रविसे जयंत, कार्तिकेय)

जयंत । सवैया । मैं जननी घर बैठो हुतो
तित दूत ने आय हवाल उचार्‌यो ।
नर्मदा तीर भयो अति संगर
काल ने दानव देव सँहार्‌यो ॥
श्री गिरिधारन के परताप सों
बासव वृत्र को प्रान निकार्‌यो ।
जानत ताकहँ आप अहो सो
कहौ किमि तात महा रिपु मार्‌यो ॥ १४ ॥

कार्तिकेय । (साचरज)

दोहा । सुरपति सुर यह बचन सुनि अचरज मोहि बिसाल ।
कहा न तुम रन में रहे जो पूछत हो हाल ॥ १५ ॥

जयंत । सवैया । जा दिन सों अरि की भय भागि कै
त्याग कियो घर मेरे पिता नें ।
ता दिन सों जननी ने तज्यो सब
धारे हिये गिरिधारन ध्यानें ॥
सेवन तासु लियो हम प्रीति सों
सामा प्रसून फलादिक आनें ।
संगर में नहिं संग रहे
कछु तासों न ताके हवालहिं जानें ॥ १६ ॥

कार्तिकेय । जब वृत्रासुर के भय सों सूर सब भागे तब छीरनिधि के निकट जायके यह कहन लागे ।

---

* यहां से मूल प्रति में अङ्क गड़बड़ हो गए हैं। उसमें यहां १७ का अङ्क दिया है

छप्पय । जै रमेस परमेस सेस साँई सुरेस हरि ।
जै अनंत भगवंत संत बन्दित दानव अरि ॥
जै दयाल गोपाल प्रतिपाल गुनाकर ।
जै अनन्य गति धन्य धरमधुर पंचजन्यधर ॥
वृन्दारक वृन्द अनन्दकर कृपाकन्द भव फन्द हर ।
हरबंध्य मनोहर रूप धर जै मुकुन्द दुःख दुन्द दर ॥ १७ ॥

जयंत । (सानन्द) तब कहा भयो ।

कार्तिकेय । जब देवतान ने ऐसे बीनती करी तब आकासबानी भई ।

दोहा । सब सुर जाहु दधीच पै मांगहु तिनको गात ।
तासु अस्थि को कुलिस रचि करहु वृत्र को घात ॥ १८ ॥

जयंत । (सानन्द) तब कहा भयो ।

कार्तिकेय । यह सुनि प्रनाम करि सब देवता दधीच पैं आय हाथ जोरि कहन लागे ।

दोहा । जय मुनि मंडन धरम धर पर उपकारक आर्ज ।
दीनबन्धु करुना सदन साधहु सुर को कार्ज ॥ १९ ॥

जयंत । तब तब ।

कार्तिकेय । ऐसे सबके बचन सुनि दधीच बोले ।

बरवै । जो मोसों जाचत सुर सहित सनेह ।
तो मन इच्छित देहों मम व्रत एह ॥ २० ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । ऐसे मुनि के बचन सुनि प्रसन्न होय देवता बोले ।

दोहा । वृत्रासुर भय भीत हम मांगत तुमरो गात ।
वज्र बिरचिकै अस्थि को करिहैं ताको घात ॥ २१ ॥
जदपि देह बल्लभ सबहिं चहत यासु जग श्रेय ।
तदपि धरम धुर धरन को नहिं कछु अहै अदेय ॥ २२ ॥

जयंत । तब तब ।

कार्तिकेय । ऐसे देवतन के बचन सुनि खिन्न मन होइ कै बोले ।

सवैया । देखहु तो जग जब की रीतिहिं

आपुने ही हित सों हित ठानैं।
देवहु भूल रहे इहि मैं
तब और की बात कहा कहि छानैं ॥
का करतव्य निसेध कहा
गिरिधारन कोऊ नहीं पहिचानैं।
स्वारथ में मन दौरि रह्यौ
परमारथ तासों अकारथ जानैं ॥ २३ ॥

दोहा। निज अरि कारन हेतु तुम अस्थि चहत मम देव।
कैसा दुख मोहि मरन को सो नहिं जानत भेव ॥ २४ ॥

जयंत। (चिन्ता सहित) तब तब।

कार्तिकेय। तब देवता सब उदास होय कै यह बोले।

दोहा। जिमि तब गात बिनास दुख गुनत न हम निज स्वार्थ।
तिमि न तुमहुं मम दुख गुनत समुझहु बिप्र जथार्थ ॥ २५ ॥

जयंत। तब तब।

कार्तिकेय। ऐसे देवतान के बचन सुनि मुनि मन मैं विचारन लागे।

सवैया। बिधि देह रची सब की गढ़ि भूतन हैं जहं जन्म बिनास प्रकार।
जगती महं जाहिं जन्यो जननी वह जैहैं हन्यौ जम सों ब्यवहार ॥
गिरिधारन भक्ति करै मम ह्वै यह संसृति रोग को है उपचार।
स्रुति चार बिचार कियो निरधार अहै उपकारहि जीवन सार ॥२६॥

(ऐसे सोचिकै प्रसन्न ह्वै बोलत भए)

दोहा। सब देही को देह यह जदपि परम प्रिय एव।
तदपि मुदित चित स्याम हित तुम कहं दैहैं देव ॥ २७ ॥

सोरठा। इमि कहि मुनि मति पीन हरहिं ध्याइ मूंदे दृगन।
भए ब्रह्म मैं लीन गात पात पुहुमी भयो ॥ २८ ॥

जयंत। (सानन्द) तब तब।

कार्तिकेय। दोहा। तब लै आए अस्थि सुर गावत मुनि गुन गाथ।
बिसुकरमा बज्रहिं बिरचि दियो देवपति हाथ ॥ २९ ॥

जयंत। (सानन्द)।

सवैया । सोइ धर्मनिधान सुजान महा गिरिधारन मैं रति जासु भई ।
पर को उपकार रुचै मन मैं परमारथ की वर राह लई ॥
पितु मातु कृतारथ ताके सदा जिनके सुत ने जस बेल बई ।
वह धन्य दधीच मुनीस अहैं जिन अन्य के कारन देह दई ॥३०॥

कार्तिकेय । सत्य सत्य ।

जयंत । तब तब ।

कार्तिकेय । सवैया ।

ध्याय कै पाय रमावर के उर पूजि घनी बिधि विप्र समाजा ।
आसिष लै गुरुदेव को प्रेम सों मंगल मै बजवाय कै बाजा ।
(गिरिधारन*) रव (दै जा) चक पैं सुभ सोधि मुहूरत आनंदसाजा ।
जंग के काज उमंग भरो सित रंग मतंग चल्यौ सुरराजा ॥ ३१ ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । चलत देखि सुरपतिहि चली सुर सैना भारी ।
कोटिन मत्त मतंग तुरग स्यन्दन पद चारी ॥
कहि न जाय अति भीर तीर तरवार चमक्कैं ।
फरहराहिं बहु केतु वीर धह धह यह बक्कैं ॥
जम जलपति धनद दिनेस ससि अस्विनिसुत बसु रुद्रगन ।
सिखि साध्य जच्छ किंनर मरुत चले सबहि बढ़ि रन करन ॥ ३२ ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । आवत सुनि सुर सैन कों वृत्र बली असुरेस ।
सजग होहु सब वीर मन ऐसो दियो निदेस ॥३३॥

छप्पय । प्रमुचि नमुचि सत नयन संकुसिर द्विसिर अनर्वा ।
सकुनी हेति प्रहेति विप्रचित्ती वृषपर्वा ॥
अंबर उत्कल कपिल बाजिमुख इल्वल संबर ।
असिलोमा अतिनाम रिसभ बल्वल बल बलधर ॥
इन आदि अनेकन असुर वर निज निज सैना सजि चले ।
तिनके मधि वृत्रासुर लसै जाहि देखि सुर खनभले ॥ ३४ ॥

---

* मूल ग्रन्थ में केवल "रव चक पैं" पाठ है। जान पड़ता है कि "गिरिधारन" और रव के पीछे "दै जा" यह छापेवालों के भ्रम से छूट गया था।

जयंत । (चिन्ता सहित) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । तब दुहुं दिसि के सुभट बढ़ि करत भए संग्राम ।
तुमुल शब्द सुनियत श्रवन जासों लय छन छाम ॥ ३५ ॥

छप्पय । तबै घोर संघट्ट मच्यो सुर असुर भट्ट सों ।
भिरे समर चौहट्ट सबै धस मारु रट्ट सों ॥
सूल सक्ति असि पट्ट गदा सर परिघ टट्ट सों ।
श्रोनित सरित प्रगट्ट भई दुहुं दिसिन भट्ट सों ॥
बहु कवच कुंड कुंडल मुकुट सिर पद कटि कटि गिरे ।
असुर बाजि बाजन बलो युद्ध थलो सोहहिं थरे* ॥ ३६ ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । तब जम धनद प्रहारसों बिमुख भई पर सैन ।
कोपि सूल गहि† भिरत भो वृत्रासुर सुर जैन ॥ ३७ ॥

जयंत । (चिन्ता सहित) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । इमि निज सैन विनास लखि सहसनैन बल ऐन ।
वृत्रासुरहिं प्रचारिकै भिरत भए अरि जैन ॥ ३८ ॥
सक्र चाप टंकारिकै हने अनेकन पत्र ।
तिनहिं सहत दौरत भयो महाकाल सम वृत्र ॥ ३९ ॥

छप्पय । तब सुरपति गहि गदा असुर दिसि भए चलावत ।
ताहि पकरि कर वाम तजो लखि कै ऐरावत ॥
तासों ह्वै कै बिकल भयो गज भूतल आवत ।
चेत खोय बल गोय तुरत गिरि पर्यो महावत ॥
सुरनाथ महा सम्भ्रम सहित उतरि समर ठाढ़े भए ।
सो लखि अमरन हा हा कियो उर अतिही चिन्ता मए ॥ ४० ॥

जयंत । (सकम्प) तब ।

कार्तिकेय । दोहा । तब मातलि लायो सुरथ सुन्दर अर्व लगाय ।
तापै बैठ सुपर्वपति भिरे वृत्र सों जाय ॥ ४१ ॥

---

* यहां से फिर अङ्क गड़बड़ हुआ है यहां ४१ का अङ्क दिया है ।

† मूल प्रति में कुछ अक्षर छूट गए थे, मैंने पाठ ठीक करने के लिये "कोपि सूल ग" इतना बढ़ा दिया है ।

जयंत । तब तब ।

कार्तिकेय । अरिल्ल । वृत्रासुर सह कोप सूल कर धारिकै ।
धायौ सुरपति ओर घोर ललकारिकै ॥
सुनासीर रनधीर वीर तिहि डाटिकै ।
कुलिस त्यागि सह सूल दियौ भुज काटिकै ॥ ४२ ॥

जयंत । (सानन्द) तब तब ।

कार्तिकेय । दोहा । तब दूजे कर परिघ गहि हन्यो बासवहि भूमि ।
ता प्रहार सों हाथ सों कुलिस गिर्‍यो रन भूमि ॥४३॥

सोरठा । लाज सहित सुर राज वज्र उठावन नहिं चहे ।
तबहिं दनुज सिरताज बिहंसि बचन बोलत भयो ॥ ४४ ॥

छप्पय । देह करम आधीन चलै ताके अनुसारहि ।
तासों बरबस जीव लहै सुख दुख संसारहि ॥
और चाह अनुसरै काज तहं औरहि जोवे ।
कोटि जतन कोउ करौ जौन होनी सो होवै ॥
ह्वै करत जहां संगर तहां इक जीतत इक मरत ध्रुव ।
यह गुनि बुध इहि चिन्तत नहीं अति असार व्यवहार भुव ॥ ४५ ॥

कवित्त । जेते जग भोग जामैं भूलि रहे लोग ते
करहिं सब रोग कहि सोग कै बताइयै ।
करम को गेह पंच भूत मई देह
नासमान गुनि एह नेह काहे को बढ़ाइयै ॥
गिरिधर दास कोऊ काहू को न सगो स्वास
करि बिसवास वृथा त्रास उपजाइयै ।
दारा सुत बित्त अहै सबहिं अनित तासों
गुनि निज हित चित स्याम पद लाइयै ॥ ४६ ॥

दोहा । तातैं तुम भय लाज तजि बज्र उठावहु हाथ ।
जो भवितब सो होय है समर करहु मम साथ ॥ ४७ ॥

जयंत । (सादरज) वाह वाह ।

कार्तिकेय । दोहा । वृत्रासुर के बचन सुनि चकित होय सुर राय ।
सत्रुहिं बहुत प्रसंसि कै कहत महत हरखाय ॥४८॥